देवराज सुराणा :: अभयराज नाहर
अध्यक्ष मन्त्री
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)



मुद्रक :
भंवरलाल शर्मा
गजानन्द प्रिन्टिंग प्रेस,
शाह मारकेट,
ब्यावर.

:: दानदाता की शुभ नामावली ::



श्री मज्जैनाचार्य शांतमूर्ति स्वर्गीय श्री खूबचन्दजी म० के गुरु भ्राता स्व० व्याक्ची पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म० के सुशिष्य श्रमण संघीय जैनागम तत्त्वविशारद पं० रत्न मुनि श्री हीरालालजी का सं० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर केन्टोन्मेन्ट में श्री वर्ध० स्था० जैन श्रावक संघ की आग्रह भरी विनती से मोरचरी तथा सपींग्सरोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित एवं हृदयस्पर्शी होते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सर्व साधारण के सदुपयोग में लाने के लिए श्रीमान् धर्मपालजी मेहता द्वारा संकेत-लिपि में लिखवाए गए और उन व्याख्यानों का संपादन हो जाने पर "हीरक-प्रवचनादि" पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाने के लिए सांवत्सरिक महापर्व के समारोह की खुशी में निम्नलिखित उदार महानुभावों एवं महिलाओं ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए सहयोग प्रदान किया:—

:: मानद् स्तम्भ ::

१००१) श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूकड़,
चिकपेट बैंगलोर २

:: माननीय सहायक ::

४०१) श्री सेठ जसराजजी भंवरलालजी सियाल, चिकपेट ,, २
३००) श्री गुप्तदान (एक बहिन की तरफ से) मामूली पैंठ ,, २
२५१) श्रीमती मंजुला बहिन C/o एम०एस० मेहता, वौरटन शौप
महात्मा गांधी रोड़, बैंगलोर १

२५१) श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूनिया,
मोरचरी बाजार, बैंगलोर १
४०६) ,, महिला समाज की ओर से बैंगलोर
१५१) ,, गुप्त दान (एक सज्जन की ओर से) हलसूर
१०१) ,, सेठ किशनलालजी फूलचन्दजी लूनिया,
दीवान सुरापालेन, बैंगलोर २
१०१) ,, ,, मिश्रीलालजी पारसमलजी कातरेला,
मामूली पैंठ बैंगलोर २
१३१) ,, ,, घेवरचन्दजी जसराजजी गुलेछा,
रंग स्वामी टेम्पल स्ट्रीट, बैंगलोर २
१०१) ,, ,, मगनभाई गुजराती, गांधीनगर बैंगलोर २
१०१) ,, ,, गुलाबचन्दजी भंवरलालजी सकलेचा,
मलेश्वरम बैंगलोर २
१०१) ,, ,, भभूतमलजी देवड़ा, बेनी मिल्स रोड़ बैंगलोर २
१०१) ,, ,, पन्नालालजी रतनचन्दजी कांकरिया,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, ,, उदयराजजी भीकमचन्दजी खींवसरा,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, ,, पुखराजजी मूथा, सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, ,, गणेशमलजी लोढ़ा, सपींग्स रोड बैंगलोर १
१०१) ,, ,, नेमीचन्दजी चांदमलजी सियाल,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, ,, भंवरलालजी घीसूलालजी समदड़िया,
सपींग्स रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, ,, हीराचन्दजी फतहराजजी कटारिया,
केवेलरी रोड़ बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा,
मारवाड़ी बाजार बैंगलोर १

१०१) ,, ,, दुलराजजी मोहनलालजी बोहरा,
अलसूर बैंगलोर ८

१०१) ,, ,, अमोलकचन्दजी लोढ़ा, तिमिया रोड़ ,, ,,

१०१) ,, ,, जवानमलजी भंवरलालजी लोढ़ा, ,, बैंगलोर १

१०१) ,, ,, मिट्ठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड़
तिमिया रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, मोतीलालजी छाजेड़ ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, भंवरलालजी बांठिया ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, जेवतराजजी भंवरलालजी लूनिया,
भारतीनगर बैंगलोर १

१०१) ,, ,, लक्ष्मीचंद C/o मोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी
नं० ३२ D. अरुनाचलम मुदलियार स्ट्रीट बैंगलोर १

१०१) ,, ,, पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नि श्रीमती गजरा बाई
चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) ,, ,, जी० नेमीचन्दजी सकलेचा
ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, लखमीचन्दजी खारीवाल स्वस्तिक इलेक्ट्रिक
हनुमान बिल्डिंग चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) श्री गुप्तदान (एक सज्जन की ओर से) शूले बाजार बैंग०

२०२) ,, सेठ मंगलचन्दजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) ,, ,, रामलालजी मांडोत ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, पुखराजजी मांडोत, ब्लौक पल्ली ,, १

१०१) ,, ,, पुखराजजी पोरवाल,
चिक बाजार रोड़ शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ अम्बूलालजी धर्मराजजी रांका,
एलगुण्ड पालियम बैंगलौर १
१०१) ,, ,, चम्पालालजी रांका ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंग० १
१०१) ,, ,, भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा,
नगरथ पैठ बैंगलोर २
१०१) ,, ,, शान्तिलालजी छोटालाल, एवेन्युरोड़ बैंगलोर २
१०१) ,, ,, हिम्मतमलजी माणकचन्दजी छाजेड़,
अलसूर बाजार बैंगलोर
१०१) ,, ,, घीसूलालजी मोहनलालजी सेठिया,
अशोका रोड़ मैसूर
१०१) ,, ,, मेघराजजी गादिया, अशोका रोड़ मैसूर
१०१) ,, ,, गुलाबचन्द कन्हैयालालजी गादिया आरकोनम् मद्रास
१५१) ,, ,, केसरीमलजी अमोलकचन्दजी आछा, कांजीवरम
१०१) श्रीमती सरस्वती वहिन C/o मणिलाल चतुरभाई
नवरंगपुरा एलोस ब्रिज बस स्टेन्ट के सामने, अहमदाबाद
१२१) श्री सेठ जुगराजजी खींवराजजी वरमेचा मद्रास
१०१) ,, ,, मिश्रीलालजी लूकड़ त्रिवल्लूर ,,
१०१) ,, ,, मानमलजी भंवरलालजी छाजेड़
पलुमर रोड़ उरगम के० जी० एफ०
१०१) ,, ,, पुखराजजी अनराजजी कटारीया आरकोनम
१०१) श्रीमती अ०सौ०कंचनगोरी धर्मपत्नी श्री नवलचन्दजी डोसी
C/o बोम्बे आपटीक्लब १७ सी ब्रोडवे मद्रास १
१०१) श्री सेठ हेमराजजी लालचंदजी सीववी
नम्बर ११ वड़ा वजार रायपेट मद्रास १४
१०१) ,, ,, अमोलकचन्द भंवरलाल विनायकीया
१ D२/१३६ माऊन्ट रोड़ थाऊजेन्ट लाईट मद्रास ६

:: हीरक प्रवचन—एक मूल्यांकन ::

हीरक प्रवचन का यह द्वितीय भाग हमारे सामने है, जिसमें प्रवचनकार ने अनेक विषयों पर अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं, विचारों को व्यक्त करने की शैली अत्यन्त सरल है, सुबोध है, कहानियों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है। एक-एक प्रवचन में अनेक विषय होने पर भी प्रवचन बड़े ही सरस हैं, जीवन को स्पर्श करने वाले हैं। सहज ढंग से प्रस्तुत किये गये ये प्रवचन बहुत ही सहज पाठ्य हो गये हैं। भाषा व विषय की सरलता से सर्व साधारण पाठकों के लिये उपयोगी हैं।

प्रस्तुत प्रवचन संग्रह में सात प्रवचन हैं जो सप्तर्षि की
शा में चमक रहे हैं। "सन्तोषी सदा सुखी" प्रव-
के महत्व पर विचार किया गया है और "दुष्कर्म
१०१) वरजीव ...क प्रवचन में दुष्कर्म के कटुफल को बतलाकर
होने की प्रेरणा दी गई है। "रोगोत्पत्ति और
१०१) श्री खिंव रुग्ण होने के कारणों पर प्रकाश डाला गया है
से बचने के लिए सचेत किया गया है। चतुर्थ प्रवचन में "जैसा कर्म वैसा फल" का चित्रण किया गया है और पांचवें प्रवचन में "मानव जीवन की सार्थकता पर सुन्दर विचार रखे गये हैं। छठे और सातवें प्रवचन में क्रमशः पुरुषार्थ और कुसंगति की विकृति पर विवेचना की गई है। इस प्रकार ये सभी प्रवचन रोचक हैं। आशा है पाठकगण इससे लाभ उठायेंगे। किं बहुना।

पीपलिया बाजार,
जैन स्थानक
१-७-१९६०
ब्यावर (राज.)

मंत्री पुष्कर मुनि

:: आभार ::



"हीरक प्रवचन" का दूसरा भाग पाठकों के कर-कमलों में उपस्थित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। कुछ ही समय पूर्व पहला भाग प्रकाश में आ चुका है। पाठकों ने उसे सहर्ष अपनाया है और इसी कारण आगे के भाग प्रकाशित करने का उत्साह हमें प्राप्त हो सका है। आशा है अगले भाग यथा सम्भव शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुँच सकेंगे।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उनके प्रति अतीव आभारी हैं। पं० र० मुनि श्री हीरालालजी म० का, जिनके यह प्रवचन हैं, कहां तक आभार माना जाय ? आप तो इसके प्राण हैं ही। वे सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके आर्थिक सहयोग से हम इस साहित्य को प्रकाशित कर सके हैं।

पं० र० मंत्री श्री पुष्कर मुनिजी म० ने कृपा करके भूमिका लेखन का कष्ट उठाया है। अतएव वे भी हमारी श्रद्धा के पात्र हैं।

अन्त में निवेदन है कि धर्म प्रेमी पाठक इन्हें स्वयं पढ़ें, दूसरों को पढ़ने के लिए दें और अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक बनें। इति शम्।

देवराज सुराणा — *अध्यक्ष,*

अभयराज नाहर — *मन्त्री,*

जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर

* विषयानुक्रम *







॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

:: संतोषी सदा सुखी ::

नित्योदयं दलित मोह महान्धकारम्,
गम्यं न राहु वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्पकांति,
विद्योतयज्जगद पूर्व शशांक बिंबम् ॥

卐

जीवन में सुख-शांति प्राप्त करने के लिए संतोष गुण का आना परमावश्यक है। जब तक जीवन में संतोष नहीं आता तब तक वास्तविक सुख प्राप्त नहीं हो सकता। दुःख का कारण ही तृष्णा है। यदि जीवन में मेरु पर्वत जितने असंख्य सोने के पहाड़ भी प्राप्त हो जायें परन्तु जब तक तृष्णा राक्षसनी का आपके जीवन में निवास रहेगा तब तक वास्तव में सुखी नहीं कहला सकते। आप सदैव जीवन में दुःख का ही अनुभव करते रहेंगे। आपके हृदय में इस तृष्णा वृत्ति के कारण सदैव अशान्ति बनी रहेगी। इसके बावजूद यदि आपके पास साधारण सा मकान रहने के लिए और जीवन निर्वाह के लिए मामूली साधन उपलब्ध ही क्यों न हों परन्तु जीवन में यदि संतोषी हैं, तो वास्तव में आप सुखी हैं। शास्त्रकारों ने इसीलिए कहा है कि

"संतोषी सदा सुखी" अर्थात् संतोषी मनुष्य गरीब होते भी सुख एवं शांति का अनुभव करता है और तृष्णावान् धनवान होने पर भी दुखी है।

भगवान् तीर्थङ्कर भी जगज्जीवों को धर्मोपदेश देने से पहिले जीवन में संतोष को धारण करते हैं। वे तृष्णा राक्षसनी को गला घोंट कर अपने मानस से निकाल बाहर करते हैं। वे भूले भटके लोगों को सुखी बनाने के लिए संतोष का उपदेश देते हैं। स्वयं जीवन में संतोषी बन कर जब दूसरों के समक्ष उपदेश दिया जाता है तो वह उपदेश भी श्रोता के हृदय पर सचोट असर करता है और तृष्णा के दुख से घबराए हुए लोग जीवन में संतोष को धारण कर वास्तव में सुख को प्राप्त कर लेते हैं।

उक्त काव्य के १८ वें श्लोक में आचार्य श्री मानतुंग अपने परम संतोषी भगवान तीर्थङ्कर ऋषभदेव के गुणानुवाद करते हुए कह रहे हैं कि हे भगवन्! आप तीनों लोक में चन्द्रमा के समान निर्मल एवं शीतल हैं यद्यपि भगवन के लिए यह उपमा भी उपयुक्त नहीं है परन्तु इससे बढ़ कर दूसरी उपमा भी एक भक्त के पास भगवान् को देने के लिए शब्दों में नहीं है। अतएव आत्म संतोष के लिए भगवान को वह इसी उपमा से उपमित करता है। लोगस्स के पाठ में भी आप भगवान की स्तुति में कहते हैं कि—"चंदेसु निम्म-लयरा" अर्थात हे भगवन्! आप चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल हैं। क्योंकि द्रव्य चन्द्रमा में कई दोष विद्यमान हैं। प्रथम दोष तो यह है कि वह चन्द्रमा तो उदय होकर अस्त भी हो जाता है जबकि हे भगवन्! आपका निर्मल केवल ज्ञान रूपी चन्द्रमा उदय होने के पश्चात कभी भी अस्त नहीं होता। दूसरे चन्द्रमा को तो राहू भी ग्रसित कर लेता है और उसका प्रकाश धुंधला सा प्रतीत होने लगता है। परन्तु भगवान का ज्ञान रूपी चंद्रमा किसी कर्म रूपी मेघ से

ग्रसित होने वाला नहीं है। तीसरे उस द्रव्य चंद्रमा के प्रकाश को तो मेघ भी आच्छादित कर देते हैं परन्तु आपके ज्ञान रूपी चंद्रमा को कोई बादल भी नहीं ढांक सकता। चौथे वह द्रव्य चन्द्रमा तो इसी मानव लोक को ही प्रकाशित करता है जबकि हे भगवन्! आपका केवल ज्ञान रूपी चन्द्रमा तो तीनों लोक के प्राणियों के मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने वाला है। पांचवें उस द्रव्य चन्द्रमा में तो कलंक भी है परन्तु आपका ज्ञान परम निष्कलंक है। आपका केवल ज्ञान निर्मल रूप होने से मानव हृदय को भी निर्मल बनाने वाला है। हे भगवन्! आपके निर्मल एवं निष्कलंक ज्ञान रूपी चद्रमा की शीतलता में काम, क्रोध, मद, लोभ तथा विषयाग्नि से व्यथित जो भी प्राणी विश्राम कर लेता है वही परम शांति को प्राप्त कर लेता है। तो भगवान को चन्द्रमा की उपमा देने का आचार्य श्री का यही प्रयोजन है कि जैसे चंद्रमा प्रत्येक के नेत्रों को शीतलता प्रदान करता है उसी तरह तीर्थङ्कर भगवान भी अत्यन्त शीतल थे और कर्म संतप्त आत्मा को अत्यन्त शीतलता प्रदान करने वाले थे और हम भी भगवान की स्तुति, गुणानुवाद या कीर्तन इसीलिए करते हैं कि हमारी आत्मा में निमित्त पाकर के कषायाग्नि प्रज्वलित हो उठती है वह भगवान के ज्ञान रूपी शीतल चन्द्रमा की किरण से शान्त हो जाय और हृदय का अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाय। तो ऐसे निर्मल एवं शीतल ज्ञान रूपी चंद्रमा के धारण भगवान ऋषभदेव थे और उन्हीं भगवान को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

उन्हीं तीर्थंकर भगवान ने जगज्जीवों के जीवन में संतोष की लहर पैदा करने के लिए धर्मोपदेश दिया। और उन्हीं उपदेशों का संग्रह समीपवर्ती गणधर भगवान या आचार्यों ने सूत्र रूप में किया। जो कि आज हम लोगों के कल्याण के लिए बत्तीस सूत्रों के रूप में विद्यमान है।

मैं आपके समक्ष ग्यारवें अंग विपाक-सूत्र के सुख रूप दस अध्ययनों का वर्णन सुना चुका हूँ। अब दुख—विपाक-सूत्र के दस अध्ययनों का आद्योपान्त वर्णन सुनाने जारहा हूँ। यद्यपि मेरा विचार किसी दूसरे सूत्र को सुनाने का था परन्तु कुछ भाइयों का अत्याग्रह होने से दुख-विपाक ही आपके सामने रख रहा हूँ। आशा है आप लोग चित्त को समाधि में रख कर सुनने का प्रयत्न करेंगे जिससे आपके हृदय में वैराग्य भावना का प्रादुर्भाव होगा और आप जीवन में दुखों से मुक्त होने का प्रयत्न कर सकेंगे।

मैं आपको दुख विपाक-सूत्र सुनाऊं उससे पहिले उसके सम्बन्ध में भूमिका रख देना आवश्यक समझता हूँ। तो एक समय वह था जब कि श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी पावापुरी नगर में अपने अंतिम चातुर्मास काल में निर्वाण शैय्या पर विराज रहे थे। उस समय उन्होंने अपने प्रथम गणधर भगवान गौतम स्वामी को अपने सन्निकट बुलाया। जैसे मृत्यु शैय्या पर पड़ा हुआ एक पिता अपने पुत्रों को जीवन में उन्नत बनने की सद् शिक्षाएं देता है उसी प्रकार भगवान महावीर ने अपने परम शिष्य गौतम स्वामी को संबोधन करते हुए सभी को ग्रहण करने योग्य उच्च शिक्षाएं दीं। उस समय भगवान महावीर ने पचपन कल्याणकारी और पचपन पापकारी अध्ययन फर्माए। तथा छत्तीस अध्ययन उत्तराध्ययन सूत्र के फर्माए। और सैंतीसवां अध्ययन फर्माते हुए भगवान महावीर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए। भगवान के मुखार्विन्द से फर्माए हुए उन एक सौ दस अध्ययनों में से आज वर्तमान में केवल बीस ही अध्ययन विद्यमान हैं। उन बीस अध्ययन में से दस अध्ययन तो सुख-विपाक रूप में आप सुन ही चुके हैं। और शेष दस अध्ययन दुख-विपाक रूप में हैं जो आपके सामने में रखने का प्रयत्न करूंगा।

भाई ! आज का वर्तमान काल अवसर्पिणी कहलाता है। अवसर्पिणी काल से विपरीत उत्सर्पणी काल कहलाता है। दोनों ही काल को भगवान तीर्थङ्करों ने छः छः हिस्सों में विभक्त कर दिया है। इनमें से पहिला हिस्सा (आरा) सुखमासुखम कहलाता है। यह चार क्रोडा-क्रोड सागरोपम का होता है। दूसरा हिस्सा सुखम है और यह तीन क्रोडा-क्रोड़ सागरोपम का होता है। तीसरा हिस्सा सुखम-दुखम के नाम से पुकारा जाता है जिसका समय दो क्रोडा-क्रोड सागरोपम का है। चौथा हिस्सा दुखम-सुखम के नाम से विख्यात है और यह एक क्रोड में बयालीस हजार वर्ष कम का माना गया है। पंचम हिस्सा वर्तमान काल का दुखम इक्कीस हजार वर्ष का है। और भविष्य में आने वाला षष्ठम काल दुखमा-दुखम का है। वह भी इक्कीस हजार वर्ष का माना गया है। इस प्रकार एक अवसर्पिणी काल दस क्रोडा-क्रोड सागरोपम का होता है और एक उत्सर्पिणी काल भी इतने ही समय का होता है। और एक पूरा काल-चक्र बीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम का होता है।

तो यहां काल तो अवसर्पिणी का समझना चाहिए और समय वह था जब कि यहां चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव और नौ प्रतिवासुदेव इस भारत भूतल पर अवतरित हो चुके थे। तो प्रथम आरे में कोई नहीं हुआ। दूसरे में भी कोई नहीं अवतरित हुआ। तीसरे आरे में भगवान ऋषभदेव अवतरित हुए। और बाकी के तेईस तीर्थङ्कर चौथे आरे में हुए परन्तु चौथे आरे के जब पचहत्तर वर्ष और साढे आठ महीने शेष रह गए थे तब कुन्डनपुर नगर में राजा सिद्धार्थ के यहां महारानी त्रिशला की कुक्षि से भगवान महावीर अवतरित हुए। भगवान का जन्म-महोत्सव इन्द्र, देवता तथा नरनारियों द्वारा बड़े धूम-धाम से मनाया गया। जब वे आठ वर्ष के हुए तो उन्हें विद्याध्ययन के लिए

कलाचार्य के पास भिजवाया गया। अल्पकाल में ही भगवान ने शिक्षा प्राप्त कर ली क्योंकि तीर्थंकर भगवान गर्भ काल में ही तीन ज्ञान लेकर आते हैं। मति, श्रुत और अवधि ज्ञान होने के बावजूद भी तीर्थङ्कर भगवान समस्त सांसारिक व्यवहारों में भाग लेते हैं। वे अपने ज्ञान का दुनिया में प्रदर्शन नहीं करते हैं कि मैं तो जन्म से ही ज्ञानी हूँ। परन्तु पूर्ण भरे हुए घडे के सदृश अपने जीवन में गंभीर बने रहते हैं।

जब भगवान महावीर युवावस्था में प्रविष्ट हुए तो इनका शुभ-विवाह एक राजघराने की सुन्दर, सुशील एवं समवयस्क राजदुलारी से कर दिया गया। सांसारिक भोग भोगते हुए इनके यहां एक कन्या ने जन्म दिया। उसका विवाह जामाली के साथ कर दिया गया। जब अट्ठाईस वर्ष की अवस्था हुई तो भ० महावीर के माता-पिता स्वर्ग सिधार गए। अब इनके गर्भकाल में की गई प्रतिज्ञा के पूर्ण होने का समय आ चुका था। इन्होंने अपने बड़े भाई नंदीवर्धनजी के समक्ष दीक्षा ग्रहण करने के भाव प्रदर्शित किए। परन्तु बडे भाई के अत्याग्रह से आपको दो वर्ष तक और गृहस्थाश्रम में रहना पड़ा परन्तु अचित्त जल का ही सेवन करते रहे। दो वर्ष पूर्ण हो जाने के बाद भगवान ने स्वयमेव पंचमुष्टि लोचन करके भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली। भगवान ने चारित्रावस्था में मौनी रहकर साढे बारह वर्ष पर्यन्त घुट कर घोर तपाराधना की। भगवान ने अपने त्रिकट साधना काल में अनेकों भीषण परीषहों को शांति एवं धैर्यावस्था में रहकर सहन किये। इस प्रकार संतोषी जीवन में तप-संयम की आराधना करते हुए आपके जीवन में वैशाखी दशमी को वह सुनहरा सूर्य उदित हुआ जिस दिन आपने ऋजुबालिका नदी के किनारे ग्राम नामक गाथा पति के खेत में शालि वृक्ष के नीचे ज्ञानीवर्णीय

दर्शना वर्णीय मोहनीय अंतराय कर्म को संपूर्ण रूप से नष्ट करके केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन की प्राप्ति की।

सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही आपने देशना फर्माई। भगवान महावीर की प्रथम देशना देवताओं के मध्य हुई जो कि निष्फल गई। क्योंकि देवता लोग अपने जीवन काल में त्याग ग्रहण नहीं कर सकते। इसके बाद भगवान का द्वितीय धर्मोपदेश पावापुरी में हुआ। उस देशना से प्रभावित होकर भगवान के चौदह सौ चम्मालीस शिष्य बने। तो यहां काल तो अवसर्पिणी का और समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समझना चाहिए।

तो उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। वह यथा नाम तथा गुण वाली भी थी। उस नगरी का जैसा उल्लेख शास्त्रों में किया गया है वैसा उल्लेख तो यद्यपि वर्तमान में नहीं मिलता है परन्तु जमीन वही है और गंगा नदी उसके निकट ही बह रही है जिसका पांच मील का चौड़ा पाट है। वहां बाग-बगीचे बहुत हैं। वहां की उर्वरा भूमि होने से पैदायश फसलों की अच्छी होती है। मैं अपने कलकत्ता के विहार काल में उक्त चम्पानगरी को पैरों से चलकर देख आया हूँ। उसे देखने से ज्ञात हुआ कि पुराने इतिहास की सारी बातें भूकम्प के कारण प्रायः नष्ट भ्रष्ट सी हो गई हैं। तो उस नगरी की शोभा अवर्णनीय थी। नगरी की शोभा अधिक जल राशि होने से होती है। क्योंकि जहां जल की अधिकता होती है वहां तरह तरह के फल-फूल, धान्यादि की पैदावार अधिकता से होती है। और जहां पैदावार प्रचुर मात्रा में होती है वहां के लोग भी प्रायः समृद्धिशाली होते हैं। लक्ष्मी की अटूट कृपा उन्हीं लोगों पर होती है। परन्तु इसके विपरीत जो शुष्क भूमि होती है जल की कमी होती है तो उस नगर की शोभा भी नहीं होती। सो

वह चम्पा नगरी उक्त गुणों से संयुक्त थी। उस नगरी की लम्बाई चौड़ाई आदि परिधि का वर्णन उववाईजी-सूत्र में विस्तार से किया गया है।

उस नगरी के उत्तर पूर्व के भाग में ईशान कोण में पुण्य भद्र नाम का उद्यान था। यहां ईशान कोण को ही क्यों महत्व दिया गया है इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा जाता है कि ज्योतिष शास्त्र में चार दिशाएं और चार विदिशाएं मानी गई हैं। उनमें से ईशान भी एक विदिशा है। इस दिशा की ओर काल का वासा नहीं होने से यात्री को मृत्यु का भय नहीं रहता। वह सुख शान्ति पूर्वक अपनी यात्रा पूर्ण करता है।

तो उक्त ईशान कोण में स्थित पुण्य भद्र नाम के उद्यान में छहों ऋतुओं के फल फूल उत्पन्न होते थे। वह बड़ा ही रमणीय एवं मनमोहक उद्यान था।

एक समय उस नगरी के बाहर उक्त उद्यान में श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी के बड़े शिष्य गणधर गौतम स्वामी और पट्टधर, पंचम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी अपने पांच सौ शिष्यों के साथ अन्य जनपदों में सुखे-समाधे विचरण करते हुए पधारे।

भगवान सुधर्मास्वामी के नाम के पहिले आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है। इस आर्य शब्द का प्रयोग देश, जाति, कुल और व्यापार शब्दों के पहिले भी किया जाता है तो इनमें से बहुत सी बातें अणगार सुधर्मा स्वामी में कही जाती हैं। इनके नाम के पहिले अणगार शब्द का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि ये आगार रहित थे इनके कोई घर बार नहीं था। और वे जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न और बल सम्पन्न भी थे। उनमें ओध बल और वचन बल भी था।

वे यशस्वी भी थे। इस प्रकार भगवान् आर्य सुधर्मास्वामी के उक्त गुणों का सविस्तार वर्णन श्रीमद् भगवती-सूत्र में किया गया है। श्रोता उक्त सूत्र में उनके गुणों का वर्णन देख सकते हैं।

इस प्रकार चौदह पूर्वधारी और चार ज्ञान से सहित आर्य सुधर्मास्वामी अपने शिष्यों सहित उद्यान में बागवान की आज्ञा लेकर बिराजमान हुए। भगवान् के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही नगर निवासी अपने भगवान के दर्शनार्थ आए। भाई! जिसका जिसके प्रति आकर्षण एवं धर्मानुराग होता है वह बिना बुलाए ही हर्ष सहित खिंचा हुआ चला आता है। फिर चाहे वह निकट रहता हो या दूर परन्तु लोह चुम्बक की भांति खिंचा हुआ आ ही जाता है। तो कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, कोई रथ में बैठ कर या कोई पैदल ही चलकर भगवान के समोसरण की ओर आ रहा है। वे सब अपने अपने दिलों में उत्साहित होकर आरहे हैं। दर्शनार्थ आई हुई जनता ने भगवान को विधि सहित तीन बार उठ बैठ कर वंदन किया नमस्कार किया, गुण गान किए और भगवान का धर्मोपदेश श्रवण करने के लिये यथा स्थान बैठ गये।

आर्य भगवान सुधर्मा स्वामी ने आई हुई परिषद् को धर्मोपदेश दिया। सभी श्रोताओं ने भगवान के उपदेशामृत का तन मन से आस्वादन किया, उसे हृदय में धारण किया, मनन किया और भगवान से त्याग पच्चक्खाण लेकर, वन्दन नमस्कार करके अपने अपने स्थान को लौट गये।

नगर निवासियों के अपने अपने घर लौट जाने के पश्चात् आर्य सुधर्मा स्वामी के सुशिष्य आर्य जंबू स्वामी जिनका गौरवर्ण था, समचतुस्त्र संस्थान था और अनेक गुणों से युक्त थे तो वे विचारों

में मग्न थे और ज्ञान में रमण कर रहे थे। सहज भाव में उनके हृदय में श्रद्धा, संशय और कौतूहल के भाव प्रस्फुटित हुए। वे उत्तरोत्तर बढ़ते गए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में मतिज्ञान होता है। उसके चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। तो जब उन्हें विचार उत्पन्न हुए और कोई नवीन बात जानने की जिज्ञासा हुई तो वे अपने स्थान से उठ कर जहां भगवान विराजमान थे उनके सन्निकट आए और भगवान को तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन किया प्रदक्षिणा दी, गुणग्राम किए—"कल्याणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि" आदि शब्दों द्वारा गुण स्तुति करके भगवान से हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक प्रश्न करने लगे।

यहां मैं यह स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि शास्त्रों में तिक्खुत्तों का पाठ 'पज्जुवासामि' तक ही वर्णित है। और मैं सौराष्ट्र भी भ्रमण करके आया हूँ तो वहां मालुम हुआ कि वहां तिक्खुत्तों के ग्यारह ही पद बोले जाते हैं। वे 'करेमि' और 'मत्थएण-वंदामि' पद नहीं बोलते हैं। तो यह भी अपने अपने देश की अलग अलग परिपाटी है। 'करेमि' 'मत्थएण वंदामि' वगैरह ये सब शारीरिक चेष्टाएँ हैं। और यहां एक शब्द आया है "पज्जुवासामो" तो उसका अर्थ है सेवा करता हूँ। सेवा भी तीन प्रकार की है मन की सेवा, वचन की सेवा और काया की सेवा। तो यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि हम मुनिराज की मन वचन और काया से किस प्रकार सेवा कर सकते हैं? इसके स्पष्टीकरण में कहा जाता है कि यहां काया की सेवा का अर्थ है कि गुरुदेव के समक्ष दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुका कर बैठना ही काया की सेवा है। वचन की सेवा वह कहलाती है कि गुरु महाराज जैसा प्रश्न करें वैसा ही विनीत भाव से प्रत्युत्तर देना। और मन की सेवा का अर्थ है कि मुनिराज की वाणी सुनकर वैराग्य में रमण करना।

तो जंबू स्वामी ने विनय पूर्वक भगवान सुधर्मा स्वामी से पूछा कि भगवन ! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने निर्वाण होते समय ग्यारहवें अंग विपाक सूत्र के विषय में जो भाव निरुपण किये हैं कृपा कर फर्माइये।

अपने शिष्य जंबू स्वामी के मुख से जिज्ञासा भाव से किये गए प्रश्न के प्रत्युत्तर में फर्माया कि भगवान महावीर ने निर्वाण समय में विपाक सूत्र दो हिस्सों में कहा है सुख और दुख रूप में। पहिले हिस्से में सुख का फल और दूसरे हिस्से में दुख का फल बताया गया है।

तब फिर जंबू स्वामी ने फर्माया कि भगवन् ! आपने कृपा कर सुख विपाक सूत्र के भाव तो फर्मा दिये हैं अब कृपया दुख विपाक के भी भाव फर्मा दीजिये। यह सुन सुधर्मा स्वामी ने फर्माया कि हे जंबू ! भ० महावीर ने दुख विपाक के भी दस अध्ययन फर्माये हैं। उनमें से प्रथम मृगापुत्र, (उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन में जो मृगा पुत्र का वर्णन आया है वह दूसरा है और यह मृगा पुत्र दूसरा समझना चाहिये) का, दूसरा उज्झित कुमार का, तीसरा अभग्नसेन का, चौथा सगड़ी कुमार का, पांचवा बृहस्पति कुमार का, षष्ठम नंदी कुमार का, सप्तम उमादत्त कुमार का, अष्टम शौर्यदत्त कुमार का नवमां देवदत्ता रानी का, और दसवां अंजुकुमारी का अध्ययन कहा गया है।

तब जम्बू स्वामी ने भगवान से प्रथम मृगा पुत्र के अध्ययन के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो आर्य सुधर्मा स्वामी ने फर्माया कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में मृगा नाम का नगर था। उसके बाहर उत्तर-पूर्व में ईशान-कोण में चन्द पायप्प

नाम का उद्यान था। उस उद्यान में षट् ऋतुओं के ही फल-फूल पैदा होते थे। यही नहीं परन्तु विना मौसम के फल भी प्राप्त होते थे। उसके मध्य में सुधर्मा नाम के यक्ष का यक्षायतन था। वह बहुत प्राचीन मन्दिर था। इसके अतिरिक्त उसका सारा अधिकार उववाई-सूत्र में जैसे पुण्यभद्र उद्यान का किया गया है तदनुरुप ही समझ लेना चाहिए।

उस सुधर्म नाम के यक्ष ने अपनी प्रतिष्ठा सत्य के द्वारा स्थापित की थी। उसके यक्षायतन पर एक ध्वजा लगी हुई थी जो उसकी सत्यता प्रमाणित करती थी। उसके आश्रित बहुत से निर्धनों की आजीविका चलती थी। उसकी मान्यता करने वालों की मनोकामनाएं भी पूर्ण होती थी। क्योंकि देवता और मनुष्य दोनों ही संसारी प्राणी है।

भाई! संसार चार प्रकार का है—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इनमें निवास करने वाले संसारी कहलाते हैं। तो इस तरह देवता और मनुष्य दोनों ही संसारी हैं। अब इस मानव लोक में हम देखते हैं कि यहां गरीब और अमीर दोनों ही प्रकार के मनुष्य अपने अपने कर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। जब एक निर्धन व्यक्ति को अपनी कन्या का विवाह करना होता है तो वह विवाह कार्य की सम्पूर्णता के लिए एक धनवान व्यक्ति के पास जाता है और उससे बड़ी मिन्नतें या खुशामदें करने के पश्चात सेठ को खुश करके एक बड़ी रकम दया के रूप में लाता है और उस रकम से वह अपनी लड़की का विवाह धूम-धाम से कर देता है। ठीक इसी प्रकार संसार के सभी मानव किसी न किसी रूप में अपने अपने इष्ट से आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त होने के लिए उनके चरणों में गिरकर, भावना सहित पुकार करके उनसे प्रार्थना करते हैं। जब

कमजोर की गिड़गिड़ाहट उस इष्ट देव के कान तक पहुँचती है तो वह अधिक बलवान इष्ट देव अपने कमजोर भक्त पर प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण कर देता है। एक याचक की याचना दाता के द्वारा पूर्ण करदी जाती है।

तो उक्त देव ने भी सत्य के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा जमा रखी थी। क्योंकि यह अटल सिद्धान्त है कि दुनिया में सत्य के द्वारा ही दूसरे के हृदय पर श्रद्धा और विश्वास जमाया जा सकता है। इसके विपरीत असत्य से जमा हुआ विश्वास भी उठ जाता है। तो देवता हो या मनुष्य सबकी प्रतिष्ठा सत्य पर ही अवलम्बित है। और सभी को जीवन में अपनी प्रतिष्ठा का खयाल रहना चाहिए। चूंकि वह देव इस स्थान पर पूजा जाता था अतः उसमें सत्यवादिता भी थी। ऐसे तो चार प्रकार की भाषाएं शास्त्रकारों ने बताई है-सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा। परन्तु इन चारों में से प्रतिष्ठा का ताल्लुक सत्य भाषा से है न कि असत्य से। तो वह यक्ष भी सत्य से अपनी प्रतिष्ठा कायम कर चुका था।

आगे बताया जाता है कि उस मृगा नगर का विजय क्षत्रिय नाम का राजा था। वह सर्व गुण सम्पन्न राजा था। क्योंकि नीतिकारों ने मनुष्य की शोभा उसके गुणों से मानी है न कि उसकी सम्पन्नता से। हां! जिसमें गुणों के साथ साथ रूप भी हो तो वहां सोने में सुगन्ध आजाती है। परन्तु दुनिया में सभी गुणों से ही युक्त नहीं होते और न सभी रूप से ही युक्त होते हैं। प्रायः देखा जाता है कि किसी में गुण होता है तो रूप नहीं और रूप है तो गुण नहीं। किसी-किसी में गुण और रूप दोनों ही पाये जाते हैं तो किसी-किसी में गुण और रूप दोनों की ही हीनता देखी जाती है। परन्तु वह राजा गुण और रूप दोनों से युक्त था। वह स्वयं राज्य मर्यादा का

पालन करता था और अपनी प्रजा से भी मर्यादा पालन करवाने में कुशल था। उसने प्रजा की भलाई के कार्य करके प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। वह एक लोकप्रिय राजा के रूप में प्रजा पर शासन कर रहा था। उस राजा के मृगा देवी नाम की महारानी थी। वह भी गुण निष्पन्न एवं रूपवती थी। उस समय में वर्ण व्यवस्था के मुताबिक ही विवाह कार्य सम्पन्न होते थे।

भाई! वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के समय से हुआ है। इससे पहिले वर्ण व्यवस्था नहीं थी। क्योंकि वह अकर्म भूमि का काल था। अर्थात् उस समय किसी को कोई कार्य नहीं करना पड़ता था। उन लोगों की मनोकामनाएं दस प्रकार के कल्पवृक्षों द्वारा पूर्ण हो जाती थीं। इसलिए वर्ण व्यवस्था की आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई।

परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों कल्पवृक्षों में इच्छित वस्तुएं प्राप्त होनी बन्द होती गई। अब सब के सामने जीवन-निर्वाह का प्रश्न सामने आ गया। और यहां से कर्म भूमि का समय प्रारंभ हो गया। यानि कर्म किए बिना जीवन-निर्वाह होना मुश्किल हो गया। तब देवताओं ने मिलकर नाभि कुलकर के पुत्र भगवान ऋषभदेव को उस जनता का राजा घोषित किया। उन्होंने प्रजा से कहा कि आज से ये तुम्हारे राजा हैं और जो कुछ भी जीवनोपयोगी कार्य हो उसे अपने राजा से अर्ज करना। ये तुम्हारी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति में मदद करेंगे। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव को राजा बनाकर देवता चले गए।

कर्म भूमि काल में कुछ समय तक तो सब लोग सन्तोष एवं शान्ति पूर्वक जीवन यापन करते रहे। उनमें आपस में किसी तरह

के झगड़े नहीं हुए। परन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया और इन लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं त्यों-त्यों उनमें तृष्णा भी बढ़ने लगी। तृष्णा बढ़ जाने से उनमें आपसी मनमुटाव तथा झगड़े-फिसाद भी खड़े होने लगे।

जब भगवान् के पास आए दिन उनकी शिकायतें आने लगीं तो भगवान ने सबको असि अर्थात् शस्त्र विद्या, मसि अर्थात् लेखन कला और कृषि अर्थात् खेती करके अन्न उत्पन्न करने के कर्म सिखाए इस प्रकार भगवान ने प्रजा के हित के लिए तीन कर्मों का शिक्षण दिया। जिन्होंने देश रक्षा के लिए शस्त्र विद्या सीखी वे क्षत्रिय कहलाए। जिन्होंने स्वयं ज्ञान सीखने और दूसरों को सिखाने का कार्य स्वीकार किया वे ब्राह्मण कहलाए। ब्राह्मण अर्थात् जो ब्रह्म आत्मा को जान लेता है वह ब्राह्मण कहलाता है। जिस आत्मा को स्व और पर का ज्ञान हो जाता है वहां लड़ाई-झगड़े का नामोनिशान भी नहीं रहता। जिसने कृषि कर्म को यानि खेती करके अन्न उत्पन्न करने का, उस संचित अन्न को दूसरे स्थान पर पहुंचाने का, क्रय-विक्रय करने और अपनी संस्कृति तथा प्रामाणिकता की छाप अन्य देशवासियों पर डालने का कार्य लिया वे वैश्य कहलाए और जिन्होंने अपने शरीर से तीनों वर्णों की सेवा करने का कार्य स्वीकार किया वे शूद्र कहलाए। परन्तु वर्ण व्यवस्था हो जाने के बावजूद भी चारों वर्णों में भ्रातृ-भाव में कोई कमी नहीं आने पाई। वे एक दूसरे को अपना भाई समझ कर प्रेम से वार्तालाप करते साथ-साथ बैठकर भोजन करते और विवाह भी आपस में करते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया त्यों-त्यों आपस में घृणा भाव भी बढ़ने लगा।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के पच्चीसवें अध्ययन में इसी वर्ण भेद के ज्वलंत प्रमाण स्वरूप बताया गया है कि जय घोष और

विजय घोष दोनों सहोदर भाई थे। वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनमें से जयघोष वैराग्य भावना सहित साधु बन गया। विजयघोष अपने कुल की रीति के अनुसार याज्ञिक कर्म करता रहा। एक समय की बात है कि जब विजयघोष ब्राह्मण यज्ञ करवा रहा था। तब जयघोष मुनि भी विचरते हुए उसी नगर में आ गये। वे भिक्षा के लिए उसी स्थान पर पहुँच गये जहां विजयघोष यज्ञ कर्म करवा रहा था। उस समय भिक्षा सामग्री होने के बावजूद भी जयघोष ने अपने भाई विजयघोष मुनि को भिक्षा नहीं दी। परन्तु उसकी भर्त्सना की और उसके प्रति घृणा भाव प्रकट किए।

अपने भाई के प्रत्युत्तर में मुनि ने कहा कि देखो एक ब्राह्मण होने के नाते तुम्हें किसी से नफरत करना जायज नहीं है। क्योंकि जितने भी वर्ण हैं वे कर्म से हैं न कि जन्म से। अपने अपने कर्म के द्वारा ही प्रत्येक मानव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र कहलाता है। कोई भी जन्म लेते ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं हो जाता। इतना समझाने पर विजय घोष के हृदय से घृणा भाव नष्ट होगया। उसने आदर पूर्वक मुनिराज को भिक्षा दी।

तो यह वर्ण व्यवस्था फिर भी भगवान महावीर के समय तक ठीक ढंग से चलती रही। उसमें इतनी विकृति नहीं आई थी जितनी कि हम वर्तमान समय में देख रहे हैं। आज तो जमाना ही बदल गया है। पहिले वर्ण तो था परन्तु वर्णवाद नहीं था। परन्तु आज तो वर्णवाद का युग आगया है। पहिले एक वर्णवाले की लड़की आपस में ली दी जाती थी। परन्तु आज लड़की का लेना देना तो दूर की बात है, आपस में भोजन व्यवहार भी नहीं किया जाता। एक दूसरे को पास में बैठाना भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। वर्ण भेद होने पर संसार का लेन देन भी चल पड़ा। यह भेद

विक्रमादित्य राजा के गादी पर आरूढ होने के पश्चात आरंभ हुआ और जब आपसी झगड़े उनके पास आने लगे तो उन्होंने शाति स्थापन के लिये प्रजा में कानून बना दिया कि ब्राह्मण ब्राह्मण में, क्षत्रिय क्षत्रिय में, वैश्य वैश्य में और शूद्र शूद्र वर्ण वाले में ही विवाह करे। इसके पश्चात् संवत दो हजार सोलह तक एक एक वर्ण में से कई जातियों ने जन्म ले लिया। और आज तक भारतवासी हजारों जातियों में विभक्त हो चुके हैं। भविष्य के लिये कुछ कहा नहीं जा सकता कि और कितनी जातियां उत्पन्न हो जायेंगी।

इस जातिवाद के भूत सवार हो जाने से प्रत्येक के हृदय में अभिमान की मात्रा बढ़ गई है। हरेक अपने आपको बड़ा और दूसरे को छोटा समझने लगा है। वह सोचता है कि मैं तो बीसा हूँ और यह दस्सा है। मैं पांचा हूँ और यह ढाया है। और मेरी लड़की का विवाह दस्सा के लड़के के साथ कैसे हो सकता है? इस प्रकार ओसवाल जाति अपने पूर्व गौरव को खोती जारही है और जात्याभिमान के कारण अपनी संख्या घटाती जा रही है। परन्तु आज आप अपनी ओसवाल जाति पर जितना नाज कर रहे हो अभिमान कर रहे हो परन्तु आपको पता नहीं कि आपकी जाति की उत्पत्ति से पहिले एक भी ओसवाल नहीं था। अरे! अनेकशः धन्यवाद है आचार्य रत्न प्रभ सूरीश्वर को, जिन्होंने ओसिया नगर में एकत्रित विभिन्न जाति समूह के बीच धर्मोपदेश देकर आप लोगों के पूर्वजों से चार प्रतिज्ञाएँ करवाई कि कोई मांस नहीं खायेगा, शराब नहीं पिएगा, रात्रि में भोजन नहीं करेगा और कंद मूल नहीं खायेगा। इस प्रकार चार प्रतिज्ञाएँ करवाकर उस जन समूह को श्रावक बनाया और उस संगठित जनसमूह को ओसवाल जाति से घोषित किया। तो आप लोगों को जो ओसवाल जाति पर फख्र है वह जाति ओसिया नगर के नाम से विख्यात हुई है। इसी प्रकार कोई जाति

गांव के नाम से, कोई प्रान्त के नाम से, कोई अपने पिता के नाम से और कोई जाति अपने पेशे के नाम ईजाद हुई है। जैसे सोने चांदी के जेवर बनाने वाली सुनार जाति और कारीगर, नाई धोबी आदि कहलाए।

परन्तु इस जातिवाद ने जन्म लेकर मानव-मानव को छिन्न-भिन्न कर दिया। मानव में से मानवता को निकाल बाहर किया और मानव में घृणा, द्वेष, नफरत के भाव पैदा कर दिए। जो किसी समय निकट रहते थे उन्हें ले जाकर बहुत दूर फैंक दिया। तो भारतवासी कभी मानवता के रूप में रहे, तदन्तर वर्णों में विभक्त हुए परन्तु आज तो वर्णवाद और जातिवाद के कारण हजारों जातियों में विभक्त हो गए। परन्तु भाई! जितना आनन्द संगठन और प्रेम में है उतना विभक्त होने में नहीं है। विभक्त रहने में हमेशा बरबादी होती आई है और संगठन में आबादी है।

परन्तु आज के युग ने फिर से अंगड़ाई ली है। आज के विचारकों के मस्तिष्क में सब कुछ खो देने पर भी पुनः प्राप्त करने की भावना जागृत हुई है। उनके हृदय में जोश उत्पन्न हो गया है। उन्होंने पुनः उत्कट इच्छा पैदा की और इस बात की आवश्यकता महसूस की कि टूटे हुए हृदय फिर से मिलें, बिखरी हुई जातियां पुनः संगठित हों और समय के साथ मानवोचित व्यवहार किया जाय और इसके लिए कहा गया कि अलग-अलग रहने से अपने अस्तित्व को ही खो बैठोगे। यदि अपना और अपने देश का पुनः उत्थान चाहते हो तो सब इन वादों के पचड़े से निकल कर अपने आपके जीवन को एक सच्चे भारतीय के सांचे में ढाल दो।

आज के स्वतन्त्र युग में तो जातिवाद एक अभिशाप के रूप में है। इस समय तो सभी जातियों को अपना विलीनीकरण करके

अपने आपको भारत का सच्चा नागरिक बन जाने की आवश्यकता है। वर्तमान सरकार के कर्णधार भी यही चाहते हैं कि जातिवाद का नामोनिशान भी न रहे और इसे मिटाने के लिए हर तरह से प्रयत्नशील हैं। अरे! भारत स्वतन्त्र होने के कुछ दिनों बाद ही हमने इस जातिवाद रूपी भूत के करिश्मे देख लिए हैं। इसी जाति वाद ने भारतवर्ष को टुकड़ों में विभक्त किया—भारत पाकिस्तान के रूप में, और भाई ने भाई के खून से दिल खोलकर होली खेली। यद्यपि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस देश में भाई-भाई की तरह रहते आए हैं परन्तु इस जातिवाद के भूत ने भाईयों के हृदय में क्रूरता पैदा कर दी और भाई-भाई को दुश्मन समझ कर पाशविक अत्याचार करने पर मजबूर कर दिया गया। परन्तु पुरानी कहावत है कि :—

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुध लेय।

यदि इसी नीति पर भी भारतवासी कायम हो जाते हैं और जो बीत चुकी है उसे हृदय से निकाल कर भविष्य में उन्नत एवं समृद्धिशाली बनने के लिये इच्छुक हैं तो उन्हें इस जाति वाद के जहरीले वृक्ष को जड़-मूल से काटना होगा। इसे नष्ट किए बिना हमारी स्वतन्त्रता कायम रहना दूभर हो जाएगी। तो भारतवर्ष को भविष्य में और टुकड़ों में विभक्त होने से बचाने के लिए आप और हम सबका कर्तव्य हो जाता है कि हम मानवता को अपनाएं और उसी रूप में अपना और अपने देश का उत्थान करें।

आज भारतवर्ष में एक नहीं, दो नहीं परन्तु अनेक वादों का तांता लगा हुआ है। जिधर दृष्टिपात करो उधर ही नए २ वाद छलनी के छेदों की तरह इस देश में दिखाई दे रहे हैं। वर्णवाद और जाति वाद तो मानव जाति को पीड़ा पहुँचा ही रहे हैं परन्तु सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद और न जाने कितने वाद जन्म ले चुके हैं।

इस सम्प्रदायवाद ने एक दूसरे के हृदय में घृणा पैदा की है। एक सम्प्रदाय दूसरी सम्प्रदाय को घृणा की दृष्टि से देखने लगी है। जिसका जिसके प्रति राग भाव है वह तो मान्यता प्राप्त कर लेता है। भले ही उसमें कितने ही अवगुण क्यों न हों परन्तु वह एक गुणवान पूज्य की दृष्टि से देखा जाता है और इसके बावजूद दूसरी सम्प्रदाय वाला गुणी होने पर भी द्वेष भाव के कारण घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। तो इस सम्प्रदायवाद ने भी एक गुणवान पुरुष को आदर प्राप्त करने से वंचित कर दिया है। वह समष्टि का पूज्य न होकर एक सम्प्रदाय विशेष का ही पूज्य बनकर रह गया है।

दूसरे अभी कुछ समय से प्रान्तवाद ने नया ही जन्म धारण कर लिया है। इसने भी देश को बहुत नुकसान पहुँचाया और देश को टुकड़ों टुकड़ों में विभाजित कर दिया। उस प्रान्तवाद के प्रवेश कर जाने के बाद एक प्रान्तवाला दूसरे प्रान्त वाले को घृणा की दृष्टि से देखने लगा और एक दूसरे की जान लेने पर भी उतारु हो गया। परन्तु ज्ञानी पुरुषों का तो कहना है कि मनुष्य-मनुष्य तो सब समान हैं तब फिर आपस में लड़कर झगड़कर अपने देश को क्यों कमजोर बनाते हो? सभी को भाई चारे के साथ रहना चाहिए।

और इस भाषावाद ने तो नया तूफान खड़ा कर दिया है। इसने भी मानव को मानव से अलग कर दिया है। इन वादों के झमेले में पड़कर मानव अपनी मानवता को भी खो बैठा। तो आज इन वादों की तो देश में बाढ़ सी आ चुकी है। शायद ये सब मिलकर देश की स्वतंत्रता को छीनना चाहते हैं। इस वाद में फंसकर मनुष्य अपने कर्तव्य को भी भूल गया है, आत्मा को और परमात्मा को भी हृदय से निकाल चुका है। उसे यहां जन्म लेकर करना क्या था और करने लगा है कुछ और ही! परन्तु आज के युग में इन

वादों को मिटाना होगा और तभी हम सब मिलकर भारत के नवनिर्माण में सहयोगी बन सकते हैं और भविष्य में इस शुभफल का आनन्द उठा सकेंगे।

तो मैं आपके समक्ष मृगा पुत्र के जीवन के सम्बन्ध में कहने जा रहा था परन्तु भूमिका में इससे ताल्लुक रखने वाली सभी बातों पर प्रकाश डाल देना भी आवश्यक समझता था। इससे आपको मालूम होगा कि मृगा पुत्र कौन था, किस प्रकार दूसरों को दुःख देकर अपने आपको दुःख के सागर में डाल दिया और शुभ संयोग प्राप्त होने पर साधुवृत्ति धारण कर हमेशा के लिए दुःख से मुक्त हुआ।

हां, तो महारानी मृगादेवी भी सुन्दर सुशील और शरीर के सभी अंगोपांगो से पूर्ण थी।

वह स्त्री की चौंसठ कलाओं में निष्णात थी और पतिपरायणा महारानी। इस प्रकार राजा और महारानी अपने दाम्पत्य जीवन में सांसारिक सुखोपभोग करते हुए बड़े ही आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। अब कालान्तर में उनके जो मृगा पुत्र होगा उसके शरीर के अवयवों का वर्णन किया जाएगा। वह किस प्रकार महान दुःखों का सामना करते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करेगा यह सब कुछ आगे सुनने से मालूम होगा।

:: ऋषभ भवन्तरी ::

अब हम आपके सामने भगवान ऋषभदेव के पूर्वभव के सम्बन्ध में कहते जा रहे हैं। भगवान के पूर्व भवों में सुख और दुःख दोनों ही आए हैं। परन्तु उनकी महान आत्मा ने जीवन में संतोष

रखा। उन पहाड़ के समान दुखों को भी उन्होंने सन्तोष पूर्वक सहन किए और धैर्य को नहीं जाने दिया। उसी के फल स्वरूप उन्होंने तीर्थङ्कर पद का उपार्जन किया और आदिनाथ कहलाए।

हां, तो भगवान ऋषभदेव अपने नवमें भव में जीवानन्द वैद्य के रूप में अत्यन्त कारुणिक एवं अनुकम्पा भाव से तपोधनी मुनिराज के शरीर को निरोग बनाने के लिए तत्पर हो गए। उनके पांचों मित्रों ने सेठ से तीन अमूल्य औषधियां लाकर सौंप दी है।

जीवानन्द वैद्य ने मुनिराज को निरोग बनाने के लिए दवा तैयार कर ली। उसने सर्व प्रथम मुनिराज के शरीर पर तैल का मर्दन किया। तदान्तर उनके शरीर पर रत्न कम्बल को ढांक दिया। तैल के मर्दन करने से मुनिराज के शरीर के कीड़े बाहर निकल आए और उन्होंने शरीर के रक्त मांस को खाना छोड़ कर उस तैल को खाना प्रारम्भ कर दिया। उस तैल को खाने के पश्चात् वे कीड़े उक्त कम्बल पर चिपक गए। कुछ समय बाद जब कीड़े कम्बल पर चिपक गए तो वैद्यराज ने धीरे से उस कम्बल को मुनिराज के शरीर पर से उठाया और उन कीड़ों की रक्षा के लिए उन्हें एक मृत शव के शरीर में डाल दिए। इससे वे कीड़े भी मरने से बच गए। इस प्रकार उन्हें भी जीवनदान मिल गया और मुनिराज के शरीर से कीड़े भी निकल गए।

भाई! दवा के साथ २ दिमाग की भी आवश्यकता होती है। कोई-कोई बीमारी ऐसी भी है जो दवा के सेवन करने पर भी अच्छी नहीं होती परन्तु बिना दवा के ही दिमाग से सोचे हुए उपाय से अच्छी हो जाती है।

मैं आपके सामने एक सच्ची घटना रखने जा रहा हूँ। उसे पढ़कर आपको ज्ञात होगा कि किस प्रकार बिना दवा के भी सरलतम उपाय द्वारा असाध्य बीमारी दूर की जा सकती है।

यह राजकोट की बात है कि वहां एक बहिन के दोनों हाथों में शून्यता आ गई थी। वे क्रिया रहित हो चुके थे। उसके घर वालों ने बड़े बड़े डाक्टरों से उसका इलाज करवाया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। जब इलाज कराते कराते बहुत दिन हो गये तो एक डाक्टर के दिमाग में एक तरकीब आई। उसने उसके संरक्षकों से कहा कि यदि आप मेरी बात मानें और मेरे कथनानुसार व्यवस्था करें तो शायद बिना पैसे ही बहिन का इलाज। हो सकता है और वह दवा है—"तीर नहीं तो तुक्का ही सही"। अर्थात् वह तरकीब कामयाब हो गई तब तो उस बहिन के सवा सोलह आने इलाज हो जायगा अन्यथा कोई बात नहीं है। उसके घर वालों ने डाक्टर साहब के प्रस्ताव को मंजूर किया। उन्होंने पूछा कि अब हमारे लिए क्या आज्ञा है? तब डाक्टर ने कहा कि देखो! एक दिन निश्चित करके अपने सभी कुटुम्बी जनों को एक स्थान पर भोजन के लिए आमन्त्रित करें। और उस मौके पर मैं भी उपस्थित हो जाऊंगा। फिर जो कुछ भी उपाय मुझे करना होगा करूंगा। वे सब लोग अपने घर चले आए।

कुछ दिन बाद उस बहिन के घर वालों ने ऐसा ही प्रोग्राम बनाया और निश्चित तिथि पर सभी कुटुम्बी जन वहां एकत्रित हो गए। जब सब लोग जमा हो गये तो उन सबके बीच में उस बहिन को बिठा दी गई। उक्त डाक्टर भी ठीक समय पर वहां उपस्थित हो गया। उसने उपयुक्त समय देखकर उस बहिन से खड़े होने के लिए प्रार्थना की। जब वह अपने स्थान पर खड़ी हो गई तो डाक्टर ने बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने चाकू से उसने पेटी कोट का नाड़ा काट दिया।

ज्यों ही उस बहिन ने देखा कि सारे कुटुम्बियों के बीच मेरी इज्जत लुट जायगी तो उसे बचाने के लिए उसने झटके के साथ अपने दोनों हाथ नीचे किए। उसके दोनो हाथ नीचे होते ही उसमें रक्त का संचार हो गया और सारी बीमारी रफा हो गई। अब उसके दोनों हाथ कार्य करने लगे।

कहिए! जो बीमारी उस बहिन को बड़े बड़े डाक्टरों के इलाज करवाने पर भी नहीं गई वह एक छोटी सी सूझ-बूझ से ही चली गई। इसको कहते हैं "तीर नहीं तो तुक्का ही सही"। तो कहने का तात्पर्य है कि कभी-कभी बिना पैसे के ही इलाज लागू हो जाता है।

तो उस जीवानन्द वैद्य ने भी दिमाग से काम लिया और तैल मर्दन के द्वारा उन कीड़ों को शरीर से बाहर निकाल लिए। उसने यह प्रक्रिया दो तीन बार की। अब मुनिराज के शरीर में एक कीड़ा भी शेष नहीं रह सका। इस उपाय से उसने दो पुण्य कमाए। यानि मुनिराज के शरीर को भी शान्ति पहुंचाई और कीड़ों की भी रक्षा करली। इस प्रकार तीन बार प्रयोग करने के पश्चात् उसने उन महात्मा के शरीर पर बावना चन्दन का लेप किया। ऐसा करने से मुनिराज के घावों की जलन मिट गई और उन्हें गहरी निद्रा आई। गहरी निद्रा तभी आती है जबकि मनुष्य के शरीर में पूर्ण रूप से निरोगता होती है। अब मुनिराज का शरीर बिलकुल निरोग हो चुका था।

भाई! यह शरीर तो रोगों का भंडार है। जब तक साता वेदनीय कर्म का उदय रहता है तब तक शरीर में कोई व्याधि का उपद्रव नहीं होता। परन्तु ज्यों ही असाता वेदनीय का उदय होना प्रारम्भ हो जाता है त्यों ही एक साथ नाना प्रकार के रोग निमित्त

प्राप्त होते ही उठ खड़े होते हैं। और वे ही रोग पुनः साता वेदनीय के उदय होते ही निमित्त पाकर उपशान्त हो जाते हैं। तो इस आत्मा के साथ अनादिकाल से ये साता और असाता वेदनीय कर्म लगे हुए हैं और जब यह आत्मा वेदनीय कर्म का संपूर्ण रूप से अन्त कर देती है तो यही आत्मा अव्याबाध सुख को प्राप्त हो जाती है। यही अक्षय सुख का खजाना है।

तो उक्त मुनिराज के तो साता वेदनीय के उदय का समय आ चुका था। उनके तो शारीरिक रोग के उपशान्त होने का योग था और जीवानन्द वैद्य के द्वारा दवा का निमित्त मिल गया अतएव उनका शरीर निरोग हो गया।

भाई! शास्त्रकारों ने जो दस प्रकार के सुख बताए हैं उनमें सबसे प्रथम सुख-शरीर का निरोग अवस्था में रहना बताया है। क्योंकि मानव शरीर धर्मसाधना करने के लिए है। तो जब तक यह शरीर निरोग रहेगा तब तक धर्मसाधना भी अधिक मात्रा में होती रहेगी। परन्तु जब शरीर में रोग व्याप्त हो जाएगा तो शारीरिक वेदना के कारण मन भी धर्म ध्यान में नहीं लग सकेगा। ऐसी परिस्थिति में आप धर्माराधना से वंचित हो जाएँगे। तो धर्माराधना करने के लिए शरीर का निरोग अवस्था में रहना परमावश्यक है।

श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र के आठवें अध्याय की छत्तीसवीं गाथा में शास्त्रकारों ने फर्माया है कि—

जरा जाव न पीडइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥

अर्थात्—जब तक शरीर में वृद्धावस्था नहीं आई है, जब तक शरीर में व्याधि उत्पन्न नहीं हुई है और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल

नहीं हुई हैं तब तक यदि धर्माचरण करना हो तो करलो। अन्यथा वृद्धावस्था आजाने पर भी धर्म ध्यान नहीं कर सकोगे। इसी प्रकार शरीर में जब तक निरोगता है तब तक ही धर्माराधना कर सकते हो। बीमारी का प्रकोप हो जाने पर भी धर्माचरण से वंचित रह जाओगे और इंद्रियों में शिथिलता नहीं है तब तक जो भी धर्म प्रवृत्ति करना चाहो कर सकते हो। क्योंकि जब इंद्रियां ही काम नहीं करेगी तो धर्म-कार्य भी कैसे कर सकोगे। तो धर्माचरण केवल निरोग शरीरमें ही किया जा सकता है।

जैसे कोई व्यक्ति असाध्य बीमारी के प्रकोप से खाट पर पड़ा पड़ा कराह रहा है। यदि ऐसी परिस्थिति में कोई सज्जन, व्यक्ति उसे कहता है कि चलो। अपने शहर में मुनिराजों का शुभागमन हुआ है अतः दर्शन कर आओ। परन्तु उस समय वह व्यक्ति यही उत्तर देगा कि तुम्हें तो दर्शनों की पड़ी है और मुझे तो अपने शरीर की चिंता है। कहिए! क्या वह व्यक्ति ऐसी हालत में कभी दर्शन लाभ ले सकता है? कदापि नहीं। यहां तक कि घर पर दर्शन देने के लिए पधारे हुए मुनिराज को भी वह सविधि वन्दन नहीं कर सकता। अरे, जब इन्द्रिएं ही काम नहीं करती तो वह धर्म लाभ कैसे ले सकता है? तो अनन्त तीर्थङ्करों ने भव्य प्राणियों को यही धर्मोपदेश दिया कि हे भव्यात्माओं! जब तक तुम्हें बुढ़ापा नहीं आया है, व्याधि उत्पन्न नहीं हुई है और इन्द्रियें बराबर काम कर रही हैं तब तक यदि इस मानव शरीर से धर्माचरण करना चाहते हो तो कर लो। अरे! निरोग शरीर में रहते हुए और धर्माचरण करते हुए तुम स्वर्ग ही नहीं परन्तु मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हो। यह निरोग शरीर ही तुम्हें मोक्ष मन्दिर तक पहुँचा सकता है। अस्वस्थ शरीर से कोई भी धर्माचरण नहीं हो सकता। अतएव शरीर का निरोग रहना अत्यावश्यक है।

श्रीमद् ठाणांगजी सूत्र में भी दस प्रकार के सुखों का वर्णन करते हुए शास्त्रकारों ने प्रथम सुख निरोग शरीर का होना बताया है। शरीर की निरोगता के साथ साथ मन की निरोगता भी होनी चाहिए। क्योंकि जब मन निरोग होगा तभी दानादि क्रिया हो सकती है। मन की अस्वस्थता में आप किसी को कितना ही देने के लिए आग्रह कीजिए परन्तु मनस्ताप वाला कभी कुछ नहीं दे सकता। क्योंकि उसे मन का रोग नहीं देने के लिए विवश कर रहा है। इसीलिए तीर्थङ्कर भगवान ने फर्माया कि ऐ मानव! पहिले तुझे शरीर और मन के रोग से स्वस्थ होना आवश्यक है। और जब शरीर तथा मन की निरोगता नहीं है तो आपके लिए धन भी किस काम का है! क्योंकि शरीर की निरोगता के बिना उसका उपभोग भी नहीं किया जा सकता।

दूसरा सुख शास्त्रकारों ने 'घर में माया' के बदले लम्बा आयुष्य होना बताया है। क्योंकि यदि आप लम्बा आयुष्य लेकर नहीं आए और जन्मते ही मर गए या बचपन में ही कलिका के खिलने से पूर्व ही तोड़ लिए गए तब भी मनुष्य शरीर की प्राप्ति का लाभ नहीं उठा सके–धर्माचरण नहीं कर सके। इसलिए मनुष्य जीवन पाने के साथ साथ धर्माचरण करने के लिए लंबा आयुष्य प्राप्त होना दूसरा सुख माना गया है।

तीसरा सुख रिद्धि की प्राप्ति का होना माना गया है। क्योंकि जीवन निर्वाह के लिए मकान, वस्त्र, जेवर, अन्न, बर्तनादि आवश्यक वस्तुओं की जरूरत होती है। जब ये चीजें प्रचुर प्रमाण में होती है तो मनस्ताप नहीं रहता और धर्म ध्यान करने में भी मन लगता है। यदि एक भूखे मनुष्य को कहा जाय कि धर्माचरण कर तो वह फौरन यही प्रत्युत्तर देगा कि–"भूखे भजन न होय गोपाला, यह लो कंठी

यह लो माला"। अर्थात्–धर्म ध्यान करने से पहिले भूख का मिटना आवश्यक है। तो सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होना तीसरा सुख माना गया है।

चौथा सुख दो इन्द्रियों की पूर्णता का माना गया है। यानि श्रोतेन्द्रिय (कान) और चक्षुरिन्द्रिय (आंख) की पूर्णता भी मानव शरीर के लिए आवश्यक मानी गई है। यदि कान होंगे और श्रवण शक्ति होगी तो आप मुनिराजों के द्वारा फर्माए हुए तीर्थङ्करों के उपदेश को सुन सकेंगे और रेडियो, फोनोग्राफ, संगीत या दूसरों के शब्द सुन सकेंगे। और आंखें सही हालत में काम करती होंगी तो आप त्यागी महापुरुषों के दर्शन कर सकेंगे और सिनेमा, नाटक, या देश-विदेश को देख सकेंगे। इनकी अपूर्णता में आपकी इच्छा होने पर भी आप कुछ भी नहीं देख सकेंगे। तो दो इंद्रियों की प्राप्ति होना भी सुख माना गया है।

पांचवां सुख तीन इंद्रियों की अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) रसनेन्द्रिय (जीभ) और घ्राणेन्द्रिय (नाक) की प्राप्ति और पूर्णता मानी गई है। इन तीनों इन्द्रियों के द्वारा खाने, पीने, सूंघने और आठ प्रकार के स्पर्श का अनुभव किया जा सकता है। इनके अभाव में उक्त सुख का अनुभव नहीं किया जा सकता। तो तीनों इन्द्रियों की प्राप्ति और पूर्णता को भी सुख माना गया है।

भाई ! दो इन्द्रियों के सुख को काम और तीन इन्द्रियों के सुख को भोग शास्त्रकारों ने कहा है और इन पांचों इन्द्रियों के मिलजाने से काम भोग बन जाता है।

अब इन पांचों सुखों की प्राप्ति हो जाने पर भी यदि कोई मानव हाय-हाय करता फिरे और जीवन में सन्तोष नहीं माने तो

भी जीवन का आनन्द अधूरा ही रह जाता है। अतएव इन सब सुखों के साथ २ जीवन में सन्तोष भी आना चाहिए।

और जीवन में सन्तोष की प्राप्ति होना शास्त्रकारों ने छठा सुख माना है। जब तक जीवन में सन्तोष नहीं आएगा तब तक वह तृष्णा की आग में जलता रहेगा और जीवन में अन्य सुखों की अनुभूति नहीं कर सकेगा। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि—

सन्तोषी सदा सुखी, दुखियो तृष्णावान।
भावे तो गीता पढ़ो, भावे पढ़ो पुरान ॥

अर्थात्—जिस मानव के जीवन में सन्तोष आगया है वह आपको स्वर्ग लोक के देवता से भी अधिक सुखी मानता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के पास लाखों करोड़ों की सम्पत्ति भी है परन्तु रात दिन वह यदि तृष्णा की आग में जलता रहता है और अधिक से अधिक दुनिया के धन को बटोर कर अपने तहखाने में भर देना चाहता है तो ज्ञानी पुरुषों ने उसे वास्तव में सुखी नहीं मानकर संसार का सबसे बड़ा दुःखी मनुष्य करार दिया है। तो इसीलिए ज्ञानी पुरुष जगत के प्राणियों को सुनाते रहते हैं कि यदि आप जीवन में सच्चा और वास्तविक सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो अपने जीवन में सन्तोष धारण करें। सन्तोष में ही आपको सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है। अरे पागल ! तू जीवन में हाय-हाय किस लिए करता फिरता है ? क्योंकि किसी कवि ने तो यहां तक दीर्घ दृष्टि से कह दिया है कि:—

मुर्दे को भी मिलत है, लकड़ी कपड़ा आग।
जीवत चिन्ता जो करे, ताका बड़ा अभाग ॥

हे भद्र पुरुष ! तू अपने मनमें जरा विचार तो सही कि जब एक मुर्दे को भी मरने के बाद कफन, लकड़ी और आग प्राप्त हो

जाते हैं तब तू जीवित हालत में रहकर भी हाय-हाय करता फिरता है तो यह तेरे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है। तुझे अपने शुभाशुभ कर्मों पर भरोसा रखना चाहिए। इसलिए जीवन में हाय-हाय नहीं करके सन्तोष धारण कर ले।

एक मनचले कवि ने तो मानव को सन्तोषी बनाने के लिए यहां तक कह दिया है कि :—

कण वालाने कण मिले, मण वालो मण खाय।
हंसा तो मोती चुगे, वांको ही मिल जाय॥
वां को ही मिल जाय, मन ने क्यों ललचावे।
सेर चून की भूख कसो तू सो मण खावे॥
मन ने वश कर राखले, तिण से मिल सी आय।
कण वाला ने कण मिले, मण वालो मण खाय॥

भाई! संसार में सबसे बड़ा डील-डौल वाला प्राणी हाथी माना गया है। जिसका जितना विशाल शरीर होता है उसे उसके अनुरुप ही खुराक की आवश्यकता होती है। तो एक हाथी के लिए सवा मन आटे के रोट और इतने ही घास की प्रतिदिन आवश्यकता रहती है। परन्तु उसके जीवन में भी कितना सन्तोष है। वह एक स्थान पर ही सांकल से बंधा हुआ खड़ा रहता है परन्तु सन्तोष के कारण उसे अपने नियत स्थान पर ही उतनी मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध हो जाती है। और एक छोटे से छोटा प्राणी कीड़ी को माना है। उसे केवल एक कण मात्र से ही उदर पोषण हो जाता है तो उसे भी सन्तोष के द्वारा उतनी ही मात्रा में पदार्थ मिल जाता है। परन्तु इसके बावजूद असन्तोष को धारण करने वाला एक श्वान (कुत्ता) दरवाजे-दरवाजे पर रोटी के टुकड़े के लिए भटकता फिरता है फिर भी उसे हर जगह से धुर्रे-धूरें ही मिलती है और लकड़ी से मार-

कर भी निकाला जाता है। उसे यह सब कुछ धुतकार और मार क्यों मिलती है? क्योंकि उसके जीवन में सन्तोष नहीं है। यदि वह भी सन्तोष धारण करके एक स्थान पर जमा रहे तो वहां रहते हुए भी उसका उदर पोषण हो सकता है। जैसे कि हाथी को मण और कीड़ी को कण अपने स्थान पर ही मिल जाता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि यदि अपने जीवन को सुखी बनाना चाहते हो और मानव शरीर पाये का सार निकालना चाहते हो तो तृष्णा रूपी अग्नि की लपटों से बच कर सन्तोष रूपी सरोवर में डुबकी लगाओ। ऐसा करने से तुम जीवन में सच्चे सुख के मालिक बन जाओगे।

और यदि तुम यहां पूर्व जन्म में छः बोलों का निर्माण करके आए हो तो इसमें मीन-मेष होने वाली नहीं है। क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ तो तुम्हें अवश्य ही मिलेगा। तब फिर हाय-हाय करके भविष्य के लिए अपनी आत्मा को भारी क्यों बनाते हो!

जब एक प्यासा व्यक्ति अपनी प्यास बुझाने के लिए जंगल में किसी कुए को देखकर उसमें अपने लोटे में डोर बांधकर डाल देता है और खूब झकोरने पर भी जब उसमें उतना ही जल आता है तब वह यदि यह विचार करे कि हाय! मैंने इतना झकोरा! इतना परिश्रम किया। परन्तु पानी तो इतना ही आया। परन्तु एक समझदार व्यक्ति उसकी इस नादानी और असन्तोषी जीवन पर खेद करता हुआ कहेगा कि भाई! तू अफसोस क्यों करता है! तेरे पास जितना बड़ा पात्र है, उसमें उतना ही तो जल आ सकेगा। यदि तुझे अधिक मात्रा में जल चाहिए था तो इससे बड़ा पात्र लेकर आना था। इस प्रकार तेरा खिन्न होना जीवन में शान्ति लाने वाला नहीं है। परन्तु जीवन में शान्ति तुझे सन्तोष धारण करने से ही प्राप्त होने वाली है न कि तृष्णा की आग में जलने से।

इसी प्रकार आप जैसा जैसा भाग्य निर्माण करके आए हैं जो पुण्य बांधकर आए हैं वैसा-वैसा ही आपको सुख प्राप्त होता जायगा आप यदि इस सिद्धान्त के विपरीत लाख कोशिश भी करेंगे तब भी उतना ही प्राप्त होने वाला है। इसलिए जीवन में हाय-हाय छोड़कर सन्तोषमय जीवन व्यतीत करो। और इसी अभिप्राय से यानि आपके जीवन में सन्तोष प्राप्त कराने के लिए और सुखी बनाने के लिए मैं भी आपको कहता रहता हूँ कि आप लोग भी प्रातः काल घण्टा—सवा घण्टा दुकान का कारोबार बन्द रखा करो। इससे आपके जीवन में सन्तोष की मात्रा बढ़ेगी और उस अमूल्य समय का सदुपयोग धर्माचरण में कर सकोगे। यदि आपके जीवन में धर्म के प्रति सच्ची और अटल श्रद्धा उत्पन्न हो गई तो आपको दुकानदारी के शेष समय में भी अपने भाग्य का लिखा मिल जायगा। परन्तु असन्तोषी बनकर यदि दिन भर भी दुकान खुली रखी और भाग्य में मिलने का योग नहीं होगा तो दिन भर दूकान पर मक्खियां उड़ाते रहने पर भी ग्राहक चला जायगा। तो मनुष्य को अपने भाग्य और धर्म के प्रति अटल विश्वास होना चाहिए। विश्वास के बिना कोई काम नहीं चल सकता। अतएव जीवन में सन्तोष को प्रथम स्थान दो।

तो इसी विश्वास पर मैं अपने जीवन में बीती हुई घटना ही सुनाये देता हूँ। एक समय की बात है कि मैं बिहार करता हुआ टोंक चला गया। यह स्व० पूज्य श्रीलालजी महाराज का सांसारिक गांव है। यहां बड़ी भक्ति वाले श्रावक निवास करते हैं। मैं वहां कुछ दिन ठहर कर जब विहार करने लगा तो साथी मुनियों ने कहा कि महाराज! आगे आने वाले गांव में आहर की जोगवाई मिलना मुश्किल है अतएव यहीं से आहार लेकर चले चलें। यह सुनकर मैंने उनसे कहा कि मुझे तो विश्वास है कि आगे भी आहार मिल जायगा और तुम लोगों को विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हारी भी

आहार मिल जायगा और तुम लोगों को विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हारी भी जिम्मेवरी लेता हूँ। तो हम लोग बिना आहार लिए ही केवल विश्वास के आधार पर रवाना हो गये।

जब हम लोग आगे के गांव में पहुंचे और एक मकान में ठहरे तो उन मुनियों ने कहा कि यहां तो आहार वगैरह कुछ भी मिलने वाला नहीं है। परन्तु मुझे अटल विश्वास था कि आहार जरूर मिलेगा। अतएव मैं ही स्वयं आहार के लिए निकल पड़ा। योग की बात है कि मैं एक ऐसे घर पर पहुँच गया जहां कि कोई आदमी मर गया था और आज उसके बारहवें के दिन लोगों को जिमाने के लिए मिठाइयां बनाई हुई थीं। आखिर मैं वहीं से आहार लेकर आ गया और सबने आनन्द पूर्वक आहार किया। यह देख सबको ही विश्वास हो गया कि सन्तोष का फल सदैव मीठा होता है।

भाई! मैंने जो अपने पैरों से आज तक इतने माइलों का विहार किया है और आपके दक्षिण प्रान्त तक पहुंच सका हूँ तो वह केवल आत्म विश्वास के ही बल पर तो कर सका हूँ। मुझे आज तक किसी भी गांव में भूखे रहने की नोबत नहीं आई है। तो मनुष्य के जीवन में सन्तोष चाहिए। यदि सन्तोष रखोगे तो सब कुछ मिलने का जंगल में भी प्रसंग बन जायगा।

तो सातवां सुख शास्त्रकारों ने यह बताया है कि आप अपने जीवन में जिस वस्तु की इच्छा करो वही सहज भाव में आपको उपलब्ध हो जाय। गर्मी की ऋतु में गर्म वस्तु और शीतकाल में ठण्डी वस्तु मिल जाय।

और आठवां सुख यह बताया गया है कि जीवन में आपकी किसी के द्वारा निन्दा न हो। यानि संसार के सब कुछ काम-भोग

भोगते हुए भी दुनियां आपकी निन्दा न करे। भाई ! दुनिया के लोग तभी किसी की निन्दा करते हैं जब कि वह लोक लाज को छोड़ कर दुराचरण का सेवन करता है। यदि कोई मनुष्य अपने मिले हुए टुकड़े को छोड़कर दूसरे के प्राप्त टुकड़े पर बुरी नजर डालता है तभी दुनिया उसकी निन्दा करती है और दुत्कार-फटकार मिलती है। यदि आपके जीवन में सन्तोष है और "अपना सो अपना और पराया सो पराया" यह दृष्टि रहती है तो आपकी कोई निन्दा नहीं करेगा और सुख चैन से सीना तान कर आप संसार में जीवनयापन कर सकोगे। तो आठवां सुख अनिन्दा का होना बताया है।

ये आठ सुख तो संसार सम्बन्धी है। परन्तु नवमां सुख संयमी जीवन का बताया गया है। यानि सांसारिक भोगोपभोग वस्तुओं को त्याग कर जीवन में संयमवृत्ति का आना ही वास्तविक सुख बताया गया है क्योंकि जीवन में संयमवृत्ति आए बिना मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती। यह संयम देश विरति और सर्व विरति रूप होता है। अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति को मद्दे-नजर रखते हुए दोनों ही रूप मे संयम ग्रहण किया जा सकता है। यदि आपके जीवन में पूर्ण रुपेण वैराग्य भावना जागृत नहीं है और सब कुछ त्यागने का सामर्थ नहीं है तो आप श्रावक के बारह-व्रतों के धारक बनकर देश विरति रूप संयम ग्रहण कर सकते हैं। और यदि जीवन में पूर्ण वैराग्य भावना जागृत हो गई तो आप सांसारिक भोगोपभोग वस्तुओं का सर्वथा परित्याग कर सर्व विरति रूप साधुवृत्ति ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु जीवन में जितना-जितना त्याग भाव आता जायगा उतना-उतना ही वास्तविक सुख सन्निकट आता जायगा। और यह सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए चक्रवर्तियों तक को छः खण्ड का साम्राज्य भी त्यागना पड़ता है। जितना सुख छः खण्ड के राज्य में नहीं है उतना सुख संयम धारण करने में है। और जीवन में संयम

वृत्ति आ जाने पर दसवां सुख मोक्ष की प्राप्ति होना भी आसान हो जाता है।

तो दसवां सुख तीर्थंकर भगवान ने मोक्ष की प्राप्ति हो जाना बताया है। परन्तु यह संयम धारण करने पर ही जीवन में सम्भावित है। क्योंकि ज्ञानी महापुरुषों ने बताया है कि जो सुख बारह महीने की दीक्षा पर्याय पालने वाले एक मुनिराज को प्राप्त होता है वह सुख सर्वार्थ सिद्ध विमान में आनन्द भोगने वाले एक देवता को भी प्राप्त नहीं होता। वे देवता भी इस मनुष्य जीवन और संयमी जीवन बिताने के इच्छुक रहते हैं।

परन्तु केवल मात्र साधु का वेष धारण करने से ही वह सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा। उस वेष के साथ-साथ जीवन में साधुत्व के गुणों का आना भी परमावश्यक है। उन गुणों से ही साधु वेष की कीमत मानी गई है। यदि किसी ने साधु का वेष तो धारण कर लिया परन्तु जीवन में साधुता नहीं आई तो ऐसा रूप बना लेना इसी प्रकार का सिद्ध होगा जैसे कि कोई एक गधेड़े को हाथी की कीमती झूल यह समझ कर ओढ़ा दे कि यह गधा भी हाथी जैसा दिखने लगेगा। परन्तु पहिली बात तो यह है कि वह उस झूल के भार को सहन भी नहीं कर सकेगा और कदाचित कर भी ले तो उस झूल की कदर नहीं कर सकेगा और यहां तक कि राख में लोटकर उसे खराब कर देगा। हाथी की झूल तो एक हाथी के गुणों को धारण करने वाला ही धारण कर सकता है। अन्यथा हरेक के लिए आनन्द के बदले दु:खदायी ही सिद्ध होगी। हां ! सुखानुभव तो तभी हो सकेगा जबकि संयम में रमण करते हुए उसे अच्छी तरह निभाया जायगा।

मैं आपके सामने एक जाने पहिचाने साधु की बात कर रहा हूँ कि वह साधु तो वेष से जरूर बन गया परन्तु अन्तर्हृदय में पूर्ण वैराग्य का सागर नहीं लहराया। तो एक समय उसके पास आकर उसके पुत्र ने भी दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। अपने पुत्र के उक्त कल्याणकारी वचनों को सुन कर उसे समर्थन करना चाहिए था और उसके वैराग्य को और मजबूत बनाना चाहिए था। परन्तु इसके विपरीत उसने अपने पुत्र से कहा कि बेटा! मुझे साधु वेष धारण किए इतने-इतने वर्ष हो गये तो मुझको भी यहां कौनसा सुख मिला है। और तू जो साधु बनने की बात कर रहा है तो तू भी साधु बन-कर कौनसा सुखी बन जायगा।

अपने पिता के उक्त वचनों को सुनकर उसकी वैराग्य भावना लुप्त हो गई। उसने साधु बनने का विचार हमेशा के लिए छोड़ दिया। यही नहीं परन्तु छः माह बाद ही वह लड़का इह लीला समाप्त कर पर-लोक सिधार गया। जब उसके पिता ने अपने लड़के के अवसान हो जाने के समाचार सुने तो उन महात्माजी को अपने द्वारा कहे हुए शब्दों पर बड़ा पश्चाताप हुआ। वे विचारने लगे कि हाय! मेरे मुंह से यदि उस समय ऐसे गिराने वाले शब्द नहीं निकले होते तो लड़का भी दीक्षित होकर अपनी आत्मा का कल्याण कर लेता। मैंने संयम की राह पर आते हुए एक आत्मार्थी को हमेशा के लिए संसार में भ्रमण करने के लिए मजबूर कर दिया। मैंने बड़ा भारी अपराध किया है।

परन्तु मैं तो आप लोगों से आग्रह पूर्वक कहूँगा कि ऐसे पुण्य कर्म करने की राह पर अग्रसर होने वाले उम्मीदवार को कभी भी जीवन में विचलित मत करना। बल्कि पूर्ण सहयोग देकर पुण्य के भागी बनना अरे! मेरे पिता तो मुझे साथ में लेकर दीक्षित हुए हैं। उन्होंने सोचा

कि आत्म कल्याण की राह में इसे पीछे क्यों छोड़ूं। आप दीक्षा लेने में दुख न मान कर सुख मानें। यही एक मात्र–सुखी जीवन बनाने का सही और सच्चा उपाय है।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में सन्तोष रखो और संयम मार्ग में अपने जीवन को लगाते हुए आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त करो। आप जितना-जितना भोग की तरफ जायेंगे उतना-उतना ही दुख निकट आयगा। परन्तु जीवन में जितना-जितना त्याग करोगे उतना-उतना ही सुख प्राप्त कर सकोगे।

आपको यदि बलवान शरीर मिला है तो इससे भी दूसरे दुखियो की सेवा करो और धनवान बने हो तो प्राप्त धन से भी ममत्व हटा कर दूसरों को लाभ पहुंचाओ और सर्वथा आरम्भ परिग्रह का त्याग करके सच्चे सुख को प्राप्त करो। तो जो ये दस प्रकार के सुख आपके सामने रखे गये हैं उनका स्वरूप समझ कर वैसा सुख प्राप्त करने की चेष्टा करो।

जीवानन्द वैद्य ने भी तन-मन से व्याधि ग्रस्त मुनिराज की निस्वार्थभाव से सेवा की और उन्हें निरोग बना दिया। उसके परिणाम स्वरूप उन्होंने तीर्थङ्करगोत्र का उपार्जन कर लिया। सुपात्र दान के फलस्वरूप जीवानन्द वैद्य ने ही नहीं अपितु उसके पांचों मित्रों ने भी सच्चे सुख को प्राप्त किया।

इस प्रकार जो व्यक्ति धर्म, समाज, जाति, देश तथा राष्ट्रोत्थान के लिए अपने तन, मन और धन का त्याग करेंगे तो वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलोर
ता० ५-८-५६

समाप्तम्

अर्थात्—जब खेती के सूखने से पूर्व वर्षा होने की नितान्त आवश्यकता थी खेती को हरी-भरी बनाने के लिए परन्तु तब तो वर्षा नहीं हुई। और जब खेती सूख गई तब बादल भी उमड़-घुमड़ कर आए, जी खोल कर पानी बरसाया परन्तु समय निकल जाने के पश्चात् उस वारिश से क्या लाभ हुआ ? अर्थात्—उस बारिश से नुकसान की तो सम्भावना है परन्तु लाभ होने का प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार पानी के अभाव में जब मछलियां सरोवर में तड़प-तड़प कर मर गई और वारिश हुई तो उस पानी के बरसने से वे मछलियां तो जीवित नहीं हो सकती। तो कवि कहता है कि ऐसी परिस्थिति में वर्षा का होना व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। हां! आवश्यकता के मौके पर यदि वर्षा हो जाती तब तो उससे फायदा भी हो जाता। परन्तु खेती के सूख जाने पर और मछलियों के मर जाने के बाद यदि पानी बरसता है तो उस पानी से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

तो उक्त श्लोक में भी आचार्य श्री के कहने का यही आशय है कि जिस पुण्यशील आत्मा को तीर्थङ्कर भगवान के मुख रूपी चन्द्रमा तथा ज्ञान रूपी सूर्य के साक्षात् दर्शन हो गये तो उसे इन द्रव्य चन्द्रमा और सूर्य के दर्शन से क्या प्रयोजन है। अर्थात्—भगवान के साक्षात् दर्शन हो जाने के पश्चात् तमाम चीजें फीकी सी लगने लगती है। क्योंकि भगवान सबसे अधिक गुण वाले होते हैं। और भगवान ऋषभदेव अनन्त गुणों के धारक थे अतएव उन्हीं भगवान को हमारा सबसे पहिले नमस्कार है।

उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान ने जनता के हित के लिए द्वादशांगी रूप वाणी का उपदेश दिया। उस वाणी का संग्रह निकटवर्ती गणधरों ने किया। वही संग्रह आज हमारे सामने बत्तीस-सूत्रों के रूप में मौजूद है।

इन्हीं सूत्रों में से मैं आपके समक्ष ग्यारहवें अंग विपाक-सूत्र के दुःख-विपाक सूत्र के विषय में कुछ कहने को जा रहा हूँ। आशा है आप दुख-विपाक को श्रवण कर अपने जीवन को दुष्कर्मों से बचाते हुए जीवन में वैराग्य भावना लायेंगे और सद्प्रवृत्तियों में जीवन व्यतीत करेंगे।

दुःख-विपाक-सूत्र के दस अध्ययन हैं। इनमें से प्रथम मृगापुत्र के अध्ययन के सम्बन्ध में आपके सामने प्रकाश डाला जा रहा है। तो विजय क्षत्रिय राजा और महारानी मृगा देवी अपने महलों में आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक समय मृगावती रानी के गर्भ रहा और सवा नौ मास पूर्ण होने के बाद उनके गर्भ से एक लड़का हुआ जिसका नाम मृगा पुत्र रखा गया।

यही मृगापुत्र दुष्कर्मों का वह परिपाक फल है जिसने जन्म लेने के बाद जीवन पर्यन्त दुःख रुपी सागर की लहरों की थपड़ें ही थपड़ें खाई। जीवन में एक क्षण भी सुख का अनुभव नहीं किया। तो मृगापुत्र के शरीर के विषय में परिचय देते हुए शास्त्रकार फर्माते हैं कि वह मृगापुत्र जन्मजात अंधा और गूंगा था। जो जन्म से गूंगा होता है वह बहरा भी होता हैं। तो वह बहरा भी था। उसके हाथ पैर नहीं होने से वह पंगु भी था। इस प्रकार वह बेडौल शरीर वाला था। उसके शरीर में अंगोपांगों के केवल चिन्ह मात्र ही थे। इतना ही नहीं परन्तु उसका शरीर वात, पित्त और कफ की बीमारियों से भी भरा हुआ था। वह अपने रोगों से व्याप्त शरीर के लोथ के सहारे ही कष्टमयी जीवन व्यतीत करने के लिए इस संसार में आया था।

महारानी मृगादेवी भी उसे उसके दुर्गन्ध युक्त शरीर से अपने आपको बचाने के लिए भोंयरे में रखती थी। वह उसे गुप्त रूप से ही

आहार पानी देती थी। यह सब कार्य उसे प्रसिद्धि में नहीं लाने के लिए ही किया गया था। इस प्रकार मृगापुत्र राजकुमार का भोंयरे के अन्दर दुखमयी जीवन व्यतीत हो रहा था।

उसी मृगा नगर में एक और भी जन्मान्ध पुरुष रहता था। उसकी सहायता के लिए उसके पास एक काणा पुरुष रहता था जो उसकी लकड़ी पकड़ कर उसे इधर उधर भिक्षा के लिए नगर में घुमाता था। उस अंध पुरुष के बाल बड़े-बड़े और बिखरे हुए थे। वस्त्र अत्यन्त मलीन थे और उन पर मक्खियां भिनभिनाहट कर रही थीं। वह जिधर भी जाता परन्तु वे मक्खियां अपने मित्र का साथ छोड़ने को तैयार नहीं थीं।

तो उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी—(नमोत्थुणं के गुणों सहित) भी अन्य जनपदों में विहार करते हुए उसी मृगा नगर के चंदन पादप नाम के उद्यान में बागवान की आज्ञा लेकर विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना आकाश में देव दुंदुभि के द्वारा होते ही नगर की जनता और विजय क्षत्रिय राजा भगवान के दर्शनार्थ गए। सभी लोगों ने भगवान के दर्शन किए और प्रसन्न भाव से सविधि वन्दन कर यथा स्थान समवसरण में धर्म देशना श्रवण करने के लिए बैठ गए।

उस जन्मान्ध पुरुष ने भी नगर की गलियों में आजीविका के लिए घूमते हुए जब लोगों के मुंह से शोर-गुल सुना तो उसने किसी व्यक्ति से पूछा कि हे देवानुप्रिए! क्या आज इस नगर में इन्द्र, देवता नदी या तालाब वगैरह का महोत्सव है? जिसके खातिर आज यह सारी दुनिया उस ओर जा रही है। यह सुन उस व्यक्ति ने उस अंध पुरुष से कहा कि भाई! आज न तो नगर में इन्द्र, देवता, नदी

या सरोवर का महोत्सव है और न कोई अन्य आयोजन ही हो रहा है परन्तु आज नगर के बाहर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शुभागमन हुआ है और उन्हीं के दर्शनार्थ सब लोग वहां जा रहे हैं।

यह खुश खबरी सुनकर वह अंध पुरुष भी प्रसन्न चित्त से अपने साथी से कहने लगा कि भाई ! मुझे भी भगवान महावीर के दर्शन तथा धर्मोपदेश श्रवण कराने के लिए ले चल। हम भी आज भगवान के दर्शन कर अपने जीवन को कृतकृत्य समझेंगे। अपने साथी की आज्ञा प्राप्त होते ही वह काणा व्यक्ति अपने साथी की लकड़ी पकड़े हुए उस ओर चल पड़ा जहां उद्यान में भगवान् महावीर अपने शिष्यों सहित विराजमान थे। उन दोनों ने वहां पहुँच कर भगवान को सविधि वन्दन किया और भगवान की सेवा करने लगे।

तदन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आई हुई परिषद् को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश श्रवण करने के पश्चात् राजा तथा प्रजा अपने अपने स्थान को लौट गए।

तब उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बड़े शिष्य इन्द्रभूति अणगार—सर्वगुण सम्पन्न, अपने तप संयम में लीन रहते हुए विचरण कर रहे थे। उनका नाम इन्द्रभूति था और गौतम गौत्र था। वे क्षत्रिय कुल में उत्पन्न ब्राह्मण शास्त्रों में पण्डित थे। तो उन्हें कभी इन्द्रभूति नाम से और कभी उन्हें गौतम गौत्र से शास्त्रों में सम्बोधन किया गया है।

हां तो, जब सर्वगुणालंकृत भगवान गौतम स्वामी ने उस जन्मान्ध पुरुष को देखा तो देखते ही उनके हृदय में संशय और कौतूहल उत्पन्न हो गया। वे अपनी शंका का निवारण करने के लिए

जिज्ञासा भाव से अपने आसन से उठे और ईर्य्या समिति का पालन करते हुए भगवान महावीर के सन्निकट गए। उन्होंने सविधि वन्दन किया और हाथ जोड़ कर भगवान से प्रश्न करने लगे कि हे भगवन्! मैंने इस जन्मान्ध पुरुष को देखा तो देखते ही मेरे मन में शंका पैदा हुई कि क्या और भी कोई जन्मान्ध पुरुष होता है! अपने शिष्य के मुँह से उक्त शंका सुनकर भगवान महावीर ने समाधान करते हुए फर्माया कि हे गौतम! और भी जन्मान्ध पुरुष होता है।

भगवान महावीर के मुखारविन्द से उक्त विधेयात्मक वचनों को सुनकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ और पूछने लगे कि हे भगवान! वह जन्मान्ध पुरुष कौन और कहां है? तब भगवान ने प्रत्युत्तर में कहा कि हे गौतम! वह जन्मान्ध पुरुष इसी नगर के विजय क्षत्रिय राजा की मृगावतीदेवी महारानी का पुत्र है। वह जन्म से अंधा ही नहीं अपितु हाथ, पैर, कान और नाक आदि अंगों पांगों से रहित है। वह केवल शरीर का पिंड मात्र है। उसके शरीर पर केवल इन्द्रियों के चिन्ह मात्र ही दिखाई देते हैं। उसका जन्म केवल अपने पूर्वकृत दुष्कर्मों का फल भोगने के लिए ही हुआ है। इस प्रकार उस जीवन पर्यन्त दुखी पुत्र का पालन करती हुई मृगादेवी जीवन व्यतीत कर रही है।

भाई! मां का हृदय भी एक करूणा का सागर होता है। अपने अंगजात पुत्र की सेवा-सुश्रूषा में वह सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहती है। उसका कैसा भी अंगहीन या व्याधिग्रस्त पुत्र क्यों न हो परन्तु एक माता का हृदय उसके लिए भी दया की मूर्ति बनकर सेवा करने को तैयार रहता है। कहिए! ऐसे अंग-हीन और दुर्गन्ध युक्त काय वाले पुत्र की माता के अतिरिक्त कौन सेवा करने के लिए तत्पर हो सकती है? कोई नहीं। जहां कि दूसरे व्यक्ति ऐसे पुत्र को

देख कर घृणा करेंगे वहां एक माता का हृदय उसकी सेवा-सुश्रूशा एक फूल समझ कर करेगा। माता के लिए एक पुत्र यदि सपूत है तब भी अच्छा है और एक कपूत है तब भी अच्छा है।

तो इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी के मुखारविन्द से उक्त जन्मान्ध मृगापुत्र के विषय में परिचय प्राप्त करने के बाद गौतम स्वामी को उसे देखने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने हाथ जोड़ कर विनय सहित भगवान से अर्ज किया कि हे भगवन ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उस मृगा पुत्र जन्मान्ध बालक को देखना चाहता हूँ। तब भगवान महावीर ने फर्माया कि हे गौतम ! अहां सुहं देवाणुप्पिया" अर्थात् तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो।

भगवान को सहर्ष आज्ञा प्राप्त होते ही भगवान गौतम स्वामी के हृदय में आनन्द एवं संतोष की अनुभूति हुई। वे भगवान महावीर को वंदन करके उद्यान से निकले और ईर्या समिति से गमन करते हुए मृगा नगरी में प्रविष्ट हुए। वे शहर में होते हुए जहां मृगादेवी का महल था वहां आए। ज्योंही महारानी मृगादेवी ने भगवान गौतम स्वामी को अपने महल की ओर आते हुए देखा तो उसे बड़ा ही हर्ष और संतोष हुआ। वह भगवान गौतम स्वामी के सामने आई और विधि सहित नमस्कार किया। चूंकि उस समय आहार का नहीं था अतएव उसने भोजन का आमंत्रण नहीं देते हुए यही पूछा कि भगवन ! आपका इस समय मेरे द्वार पर किस प्रयोजन से आगमन हुआ है ? यह सुन कर गौतम स्वामी ने फर्माया कि हे मृगादेवी ! मैं इस समय तेरे यहां तेरे पुत्र को देखने आया हूँ।

जब महारानी मृगादेवी ने भगवान गौतम स्वामी के पधारने का अभिप्राय जाना तो उसने मृगापुत्र के पश्चात जन्मे हुए अपने चार

पुत्रों को स्नान, मज्जन करा कर तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करा कर उन्हें गौतम स्वामी के सामने लाकर खड़े कर दिए। उसने अपने पुत्रों से कहा कि बच्चों ! भगवान को नमस्कार करो। फिर वह प्रत्यक्ष में भगवान गौतम स्वामी से कहने लगी कि भगवन ! यही मेरे पुत्र हैं जिन्हें आप अपने नेत्रों से देख रहे हैं।

परन्तु भगवान गौतम स्वामी ने उन पुत्रों को देख कर मृगादेवी से कहा कि महारानी ! मैं तेरे इन पुत्रों को देखने नहीं आया हूँ। परन्तु मैं तो तेरे सबसे बड़े पुत्र जिसका नाम मृगा पुत्र है उसे ही देखने आया हूँ। मैं उस मृगापुत्र को देखने आया हूँ जो कि जन्मान्ध है और जिसे तूने भूमिघर में ही आहार पानी देते हुए गुप्त रूप से रख रखा है।

यह बात सुन कर तो महारानी मृगादेवी आश्चर्य चकित हो गई। क्योंकि इस पौशीदा बात को उसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। जब उसने इस अज्ञात बात के विषय में सुना तो वह प्रत्यक्ष में भगवान गौतम स्वामी से हाथ जोड़ पूछने लगी कि भगवन ! ऐसी तथागत बात बतलाने वाला कौन महापुरुष है ? हे भगवन ! क्या आप ही उक्त ज्ञानी महापुरुष हैं जिन्होंने मेरे अज्ञात रहस्य को कह सुनाया ?

महारानी मृगादेवी के प्रश्न को सुन कर भगवान गौतम स्वामी ने फर्माया कि हे मृगादेवी ! मैंने मेरे गुरु महाराज, भगवान महावीर स्वामी के मुखारविंद से इस अज्ञात रहस्य के बारे में जानकारी की है। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी के समवसरण में धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए एक वृद्ध जन्मान्ध पुरुष भी आया था और उसी को देख कर मैंने भगवान से पूछा था कि भगवन ! क्या और भी जन्मान्ध पुरुष होता है ? तब भगवान महावीर स्वामी ने अपने

ज्ञान से जान कर फर्माया कि हे गौतम ! इसी नगर में महारानी मृगादेवी के ऐसा ही जन्मान्ध पुत्र है। अतएव मैं उसी मृगापुत्र को देखने आया हूँ। हे महारानी ! मैं तो सिर्फ भगवान महावीर के कथनानुसार ही इस गुप्त रहस्य के विषय में जानता हूँ। मुझे स्वयं इस बात का ज्ञान नहीं है।

इन्हीं बातों के दौरान में उस मृगापुत्र को भोजन कराने का समय भी आचुका था। अतएव मृगादेवी ने भगवान गौतम स्वामी से अर्ज की कि हे भगवन ! आप कुछ देर और यहीं ठहरने की कृपा करें ताकि मैं आपको उसे दिखा सकूं। भगवान गौतम स्वामी मृगापुत्र को देखने की आकांक्षा से वहीं खड़े रहे।

इसी बीच में महारानी मृगादेवी ने भोजनशाला में जाकर दूसरे वस्त्र धारण किए और एक लकड़ी की गाड़ी में अपने पुत्र को खिलाने योग्य भोजन सामग्री रखी। वह उस गाड़ी को खींचती हुई भगवान गौतम स्वामी के समीप आई और कहने लगी कि भगवन ! आप कृपया मेरे पीछे पीछे पधारें जिससे मैं मृगापुत्र को आपके दर्शन करा सकूं।

भगवान गौतम स्वामी मृगादेवी रानी के पीछे पीछे चलने लगे। जब महारानी उक्त भोंयरे के पास पहुँची तब उसने चार परत वाली मुखवस्त्रिका नाक को ढांकते हुए बांध ली जिससे उसे अपने पुत्र के शरीर की दुर्गन्ध नहीं आ सके। उसने तदनुसार करने के लिए भगवान गौतम स्वामी से भी आग्रह किया।

इस प्रकार सब कुछ इन्तजाम कर लेने के पश्चात् मृगादेवी ने अपने मुंह को फेरते हुए उक्त भोंयरे का दरवाजा खोला। दरवाजा खुलते ही उस भोंयरे में से दुर्गन्ध युक्त परमाणु बाहर निकलने

लगे। उक्त दुर्गन्ध की मिसाल देते हुए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जैसे मृत पशु के शव के सड़जाने के पश्चात् जैसी दुर्गन्ध आती है अथवा किसी शहर के गटर के गंदे सड़े हुए पानी में से जैसे दुर्गन्ध आती है वैसी ही बदबू उस भोंयरे में से बाहर आ रही थी।

उक्त विषैली सडान आने के बावजूद भी महारानी मृगादेवी ने अपने मातृ हृदय से उक्त भोजन की गाड़ी में से चारों प्रकार का भोजन मृगापुत्र के सामने उढ़ेल दिया। भोजन की सुगन्ध आने से वह बालक उक्त आहार को अपने मुंह के जरिए खाने में मूर्छित हो गया। वह चारों प्रकार के आहार को खाने लगा। परन्तु आहार उसके शरीर में प्रवेश करते ही विकृति को प्राप्त हो गया। जैसे भोजन कर लेने के पश्चात् किसी को किसी कारण से वमन हो जाता है तो वह भोजन विकृत दशा में बाहर निकलता है। ठीक इसी प्रकार मृगापुत्र के द्वारा खाए हुए भोजन की हालत हो जाती थी। वह जो कुछ भी खाता पीता था उसका रस बनने के बजाय उसके शरीर में पीप, रस्सी और रक्त बन कर वापिस बाहर आ जाता था। वह बालक पुनः बाहर निकले हुए पीप और रक्त को आहार समझकर खा जाता था। ऐसी दयनीय दशा में वह मृगा पुत्र अपने जीवन को व्यतीत कर रहा था।

इस प्रकार की दुखमयी हालत मृगापुत्र की देखकर भगवान गौतम स्वामी के हृदय में नाना प्रकार के विचार उठने लगे। उन्होंने विचार किया कि ओहो! इस संसार में दुःखों का भी कोई पार है। यह नरक नहीं परन्तु नरक के सदृश यातनाएँ भोग रहा है। इससे सिद्ध होता है कि इसकी आत्मा ने अपने पूर्व जन्म में प्रगाढ़ पाप कर्मों का संचय किया है। तभी तो उसके फल स्वरूप यह एक राजकुमार के रूप में जन्म लेकर भी महान दुखों को भोगता हुआ जीवन गुजार रहा है।

यह दृश्य देखकर भगवान गौतम स्वामी ने वहां अधिक समय तक विलंब नहीं करते हुए मृगादेवी से पूछकर प्रस्थान किया। वे वहां से निकलकर सीधे भगवान महावीर स्वामी के पास उद्यान में आए। उन्होंने भगवान को वन्दना नमस्कार किया और अपने संशय निवारण के लिए भगवान से हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञानुसार महारानी मृगादेवी के महलों में गया। मैंने उस मृगापुत्र को और उसकी दयनीय दशा को अच्छी तरह देखा है। हे भगवन्! मैंने प्रत्यक्ष में नरक और नरक के नेरिए को तो नहीं देखा है परन्तु उस मृगापुत्र की दुखमयी हालत में देखने से मुझे ज्ञात हुआ कि वह वास्तव में नरक के नेरिए के सदृश ही दुःख भोग रहा है। ऐसी परिस्थिति देखकर मुझे उसके पूर्व जन्म के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। हे भगवन्! कृपा करके आप मुझे मृगापुत्र के पूर्व जन्म के कृतकर्मों से अवगत कराइए कि इसने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से अशुभ कर्म किए हैं जिनके द्वारा यह इस जन्म में नरक के समान कष्ट भोग रहा है।

भगवान गौतम स्वामी के जिज्ञासा भरे प्रश्न के प्रत्युत्तर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फर्माया कि हे गौतम! निश्चय से उस काल और उस समय में इसी जंबूद्वीप के भरत-क्षेत्र में (क्योंकि जंबूद्वीप में कई क्षेत्र हैं परन्तु उनमें से भरत-क्षेत्र समझना चाहिए और भरत-क्षेत्र में भी बत्तीस हजार देश माने गए हैं तो उनमें से एक देश तथा हजारों नगरों में से एक नगर लेना है) शतद्वार नाम का नगर था। वह सब प्रकार से समृद्धिशाली था। वहां धनपति नाम का राजा राज्य करता था। वह एक राजा के सभी गुणों से युक्त था। उस नगर से न तो अधिक दूर और न अधिक नजदीक जगह पर दक्षिण दिशा में विजय वर्धमान नाम का एक खेड़ा था। उस खेड़े के चारों तरफ प्रजा की रक्षा के लिए मिट्टी का परकोटा बना हुआ था।

उस विजय वर्धमान खेड़े के अन्तर्गत पांच सौ गांव थे। उसका मालिक ईरवाई नाम का ठाकुर था। वह बड़ा अधर्मी था। अपनी आजीविका भी वह अधर्म कार्य करके ही उपार्जन करता था। वह सदैव कुकर्मों में ही आनन्द का अनुभव करता था। जैसे एक कसाई बकरे या भैंसे का वध करके या एक मछुआ मछलिएँ पकड़ कर और उनकी तड़फती हुई दृश्य देखकर आनन्द मानता है वैसे ही वह ठाकुर भी दूसरों को सताकर लूट खसौट कर और उनकी दुखी हालत पर अपनी प्रसन्नता के फव्वारे छोड़ता था। तो इस प्रकार वह ईरवाई ठाकुर पांच सौ गांवों के लोगों पर अपना स्वामित्व करता हुआ निर्दयी जीवन व्यतीत कर रहा था।

वह बड़ा अन्यायी था और पांच सौ गांवों के लोगों पर अत्याचार करता हुआ उनसे कर वसूल करता था। वह उन लोगों पर हमेशा कर बढ़ाता रहता था। वह लोगों से रिश्वत भी लेता था।

भाई ! आज की स्वतंत्र भारत की वर्तमान सरकार के शासन में भी रिश्वत का बोलबाला है। जिधर देखो उधर ही रिश्वत का बाजार गर्म है। सरकारी महकमें के एक चपरासी से लेकर बड़े से बड़े अफसर भी इस पिशाचिनी के चंगुल में फंसे हुए हैं। यद्यपि कानून के शिकंजे में फंसने के पश्चात् रिश्वत खोरों पर बड़े-बड़े जुरमाने किए जाते हैं, जेल के सींकचों की हवा खानी पड़ती है और पदच्युत भी कर दिए जाते हैं परन्तु फिर भी इस पिशाचनी का बहिस्कार पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है। सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार को जड़मूल से नष्ट करने में भरसक प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु संतोषप्रद नतीजा अभीतक सामने नहीं आ सका है। यदि एक लोटे भर पानी में ही भंग पड़ी हो तब तो उसे फैंका जा सकता है परन्तु जब भंग कुए के सारे पानी में ही घुल मिल चुकी हो तब उसे दूर

करना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो आज यह रिश्वत खोरी सर्वत्र भारत में व्याप्त हो रही है। जबतक इस रिश्वत रूपी पिशाचिनी का सर्व सम्मिति से बहिष्कार नहीं किया जाएगा तब तक वास्तव में स्वतंत्रता का आनन्द नहीं आ सकेगा।

हां तो, मैं कह रहा था कि वह ईरवाई ठाकुर भी पक्का रिश्वत खोर था। यही नहीं परन्तु वह ग्रामीण जनता को धमका कर और उनके साथ पाशविक व्यवहार करके कर वसूल करता था। यदि वह किसी को कर्ज भी देता तो उससे अधिक वसूल करता था। और एक व्यक्ति के अपराध पर सभी गांव वालों को कड़ा दंड देता था। वह चोरों को पोषण देता और उनके द्वारा रास्ते में लोगों को लुटवा देता था। वह धर्मात्मा लोगों को उनके धर्म से भ्रष्ट करता, स्त्रियों के साथ बलात्कार करके उनके सतीत्व को लूट लेता था। आने जाने वाले लोगों को ताड़ना तर्जना देता, चपेटे मारता और उनसे कहता कि याद रखना ! जो आयंदा इस तरफ से आए हो तो जान से मार दूंगा। परन्तु जिनसे स्वार्थ की आशा होती तो उनके सामने बड़ा मीठा और कोमल भी बन जाता था। वह कही हुई बात के लिए फौरन कह देता कि मैंने ऐसा कब कहा था, सुने हुए के लिए कह देता कि मैंने ऐसा सुना ही नहीं था और देखी हुई बात के लिए कह देता कि मैंने ऐसा देखा ही नहीं।

यद्यपि आज के स्वतंत्र भारत में तो राजाओं के राज्य ही नहीं रहे और जागीरदारों की जागीरी प्रथा का ही अन्त कर दिया गया है। आज वे सब नाममात्र के राजा और जागीरदार रह गए हैं। परन्तु एक समय वह भी था जब कि जागीरदारों का बोल बाला था। वे सत्ताधीश थे। उनके हाथों में फौजदारी और दीवानी हुकूमत थी। वे अपनी प्रजा पर मनमाना जुल्म और अत्याचार करते हुए

भी नहीं सकुचाते थे। गांव वालों से बेगार लेते, उन्हें लूटने खसोटते और उनको बहिन बेटियों की इज्जत भी सरे बाजार लूट लेते थे। अपनी प्रजा की पसीने की कमाई से वे शराब पीकर एशोअमरत में अपना जीवन बिताते थे। परन्तु पाप का घड़ा जब पूरा भर जाता है तब एक दिन फूटता अवश्य है। तो उन जागीरदारों और राजाओं के ऐशोआराम को उनके जुल्मों ने ही खाक में मिला दिया। अब उन लोगों की आंखे नशे से खुल चुकी हैं। वे अब अपने पूर्व दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप पश्चाताप कर रहे हैं। यदि वे अपनी रैय्यत पर इतना जोर जुलम न करते और उन्हें भी समान अधिकार देते तो उन्हें भी आज ये दिन नहीं देखने पड़ते। अरे! जो जिम्मेवार व्यक्ति होता है और वह लायक होता है तो वह अपनी प्रजा को हर सूरत में आराम पहुँचा कर यश का भागी बनता है। इसके विपरीत सत्ताधीश होकर भी नालायक होता है वह प्रजा को आराम पहुँचाने के बजाय परेशानी में डाल देता है और अपयश का भागी बनकर पदच्युत हो जाता है।

परन्तु तीर्थङ्कर भगवान का सदैव यही उपदेश रहा है कि ऐ मानव! बार बार यह मानव शरीर तुझको मिलने वाला नहीं है। यह तुझे बड़े उच्च कोटि के पुण्योपार्जन करने से अनमोल रत्न हाथ लग गया है। यदि इस मानव जीवन रूप अनमोल रत्न को व्यर्थ ही दुष्कर्मों मे गंवा दिया तो यह पुनः हाथ आने वाला नहीं है। और जो इसे प्राप्त कर इससे सत्कर्म कर लिया तो एक दिन अक्षय सुख को भी प्राप्त कर लेगा। इसलिए इस मानव जीवन से सत्कर्म करते हुए इसे अमर बना ले।

परन्तु अधिकांश संसार के प्राणी इस मानव जीवन को खाने पीने, मौज, शौक में और धनोपार्जन करने में ही व्यतीत कर रहे हैं।

आज की दुनिया इस धनोपार्जन में कोल्हू के बैल की तरह रात और दिन घूमती फिर रही है। इस धन के लिए आज का मानव अपने धर्म कर्म और ईश्वर को भी भूल चुका है। वह अन्याय और अनीति से धनोपार्जन करने में भी अपनी बहादुरी समझता है। वह धन प्राप्ति के लिए हिंसा वृत्ति को भी प्रश्रय दे देता है। यदि कहीं से धन प्राप्त होरहा है तो अपनी जबान को पलटते भी देर नहीं करता। जैसे गाड़ी का पहिया घूमता ही रहता है वैसे ही आज का मानव अपनी जबान को धन के लोभ में पलटता रहता है।

परन्तु मानव यह नहीं विचारता कि मैंने पूर्व जन्मों में कितने शुभकर्मों का संचय किया तब यह अनमोल रत्न प्राप्त कर सका हूँ। और यहां आकर इस पवित्र मनुष्य के चोले को पाकर यदि चन्द दिनों के लिए इससे सत्कर्म नहीं किया और दुष्कर्म में ही प्रवृत्ति करता रहा तो न जाने आगे क्या हवाल होगा। क्योंकि जिंदगी के क्षण तो अच्छे कर्म में भी बीतेंगे और बुरे कर्म में भी समाप्त हो जायेंगे। परन्तु भविष्य में अच्छे कर्म का शुभ फल भी मुझे ही सुख-दायी होगा और बुरे कर्म के बुरे फल भी मुझे ही भोगने पड़ेंगे। यह शरीर तो कांच की शीशी की तरह है। इसके फूटने में देर नहीं लगने वाली है। इसलिए इस मनुष्य शरीर से सत्कार्य करना हो तो करलो। यहां से जीवन लीला समाप्त करने के पश्चात् तेरे साथ पुण्य और पाप कर्म के अतिरिक्त कुछ भी जाने वाला नहीं है।

भाई! इस संसार में तो पाप कर्म करके भी अपनी होशियारी से दंड के भागी बनने से बच जाओगे। शायद यहां तो कोई तुम्हारी धोखाधड़ी या रिश्वतखोरी को पहिचान सके या नहीं परन्तु भविष्य में इन पापों की मार से नहीं बच सकोगे।

इसलिये ज्ञानी पुरुष सदैव चेतावनी देते हुए कहते हैं कि ऐ मानव! तुझे जो यह उत्तम मानव का जीवन मिल गया है इसको

अमूल्यता को समझते हुए शुभ कर्म में ही प्रवृत्ति करे और दुष्कर्म से अपने जीवन को अलग रखे। और जो मनुष्य इस जीवन का मूल्यांकन करते हुए इसे शुभ कार्यों में लगाएगा वही पंडित कहलाएगा। और पंडित नाम से सम्बोधित किये जाने पर भी जो पाप कर्मों से नहीं डरता है वह पंडित कहलाने का अधिकारी नहीं है। उसे फिर नरक गति में जाने से कोई नहीं रोक सकता। उसकी कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

इसी प्रकार वह ईरवाई ठाकुर भी अपने जीवन को दुष्कर्मों में प्रवृत्त करते हुए अपने आपको धन्य धन्य समझ रहा था। अब किस प्रकार वह अपनी जीवन लीला को समाप्त करेगा और उसके दुष्ट व्यवहार का उसके भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह सब कुछ आगे सुनने से अवगत होगा।

ऋषभ भवन्तरी

भ० ऋषभदेव के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में भी कुछ सुना देना उचित समझता हूँ। भगवान ऋषभदेव ने भी अपने जीवानन्द वैद्य के भव में शुभ कार्य किया। अपने पांचों मित्रों की सद् प्रेरणा से उन्होंने मुनिराज के शरीर को उपचार करके निरोग बना दिया। अत्यन्त कारुणिक भाव आने से उन्होंने तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया। वे छः हों मित्र दुष्कर्म से बचते हुए अपना जीवन सत्कार्यों में लगाते रहे। जब मुनिराज निरोग हो गए तो लोगों ने इनके शुभ कार्य की सराहना और इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। वे सब कहने लगे कि देखो! इन्होंने निःस्वार्थ भाव से मुनिराज को निरोग बना दिया। अतएव ये धन्यवाद के पात्र हैं।

इस प्रकार वे छः ही मित्र परोपकार में अपना जीवन लगाते हुए आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। बहुत दिवस इस तरह व्यतीत हो जाने पर एक दिन ये छः हों ही मित्र एकान्त स्थान पर बैठे हुए आपस में शुभ विचार करने लगे कि जो समय निकल चुका है वह पुनः लौट कर आने वाला नहीं है। जैसे पानी नदी के वेग में बह जाने पर वापिस मुड़ कर नहीं आता इसी प्रकार गुजरा हुआ समय भी पुनः लौट कर नहीं आता। अतएव भविष्य का समय जो अपने हाथ में है तो उसको सुरक्षित कर लेना अनिवार्य है। यदि इस शेष काल में भी हम अपनी जिंदगी में चारित्र धर्म का पालन कर लेंगे तो भी हमारा बेड़ापार हो जाएगा और यह समय भी हमारे हाथों से निकल गया तो हमारे लिए पश्चाताप करना ही अवशिष्ट रह जाएगा। क्योंकि आज तक के बीते हुए जीवन में हमने संसार के लिए तो सब कुछ किया है परन्तु अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए और कर्म मैल को धोने के लिए कुछ नहीं किया। अतएव हमको अपनी आत्मा को भलाई के लिए भी विचार करना आवश्यक है।

यह विचार सुनकर जीवानन्द वैद्य ने कहा कि मित्रों! मेरा विचार तो यह है कि अब हमको अपनी आत्म कल्याण की भावना से संसार को छोड़ कर मुनिधर्म स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है। इस चारित्र धर्म को अंगीकार किए बिना आत्मा का कल्याण भी नहीं हो सकता। जीवानन्द के प्रस्ताव का उन पांचों मित्रों ने हृदय से समर्थन करते हुए कहा कि जीवानन्द मित्र! जब हम सब आज तक के जीवन में एक दूसरे से पृथक नहीं हुए और सुख दुख में साथ-साथ रहे तो जीवन-सुधार की राह से हम एक दूसरे से कैसे अलग हो सकते हैं। हम पांचों ने भी तुम्हारे ही साथ-साथ साधु बनने का निश्चय कर लिया है।

अपने-अपने दृढ़ विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिए वे तत्काल अपने अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करने गए। जब उन छः ही मित्रों को आज्ञा प्राप्त हो गई तो उन्होंने भगवती दीक्षा अंगीकार करली। अपने साधुजीवन में उन्होंने ऐसी उत्कृष्ट करनी की कि जिसके फल स्वरूप वे छःहों मित्र बारहवें देवलोक में जाकर देवपणे उत्पन्न हुए।

देव विमान में बावीस सागरोपम तक सुख पूर्वक आनन्द भोग कर वहां से आयुष्य पूर्ण करके पुंडरीक नगरी में राजा वज्रसेन के यहां महारानी धारिणी के गर्भ से समय पाकर उत्पन्न हुए। राजा वज्रसेन तीर्थङ्कर पदवाले थे। जब इन पांचों पुत्रों का जन्म हुआ तो राजा तथा महारानी ने इन सबका जन्म महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया। सबसे बड़े राजकुमार का नाम वज्रनाभि, दूसरे का बाहु, तीसरे का सुबाहु, चौथे को पीठ और पांचवे राजकुमार का नाम महापीठ रखा गया।

सब से बड़े राजकुमार वज्रनाभि चक्रवर्ती पद से विभूषित हो गए और स्वयं प्रभा का जीव इनके यहां आकर सारथी बना। राजा वज्रसेन जो कि तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करके आए थे अतएव जब उनके दीक्षा धारण कर चारों तीर्थ स्थापन करने का समय आ गया तो उन्होंने अपने बड़े राजकुमार वज्रनाभि को राज्य गादी पर आसीन करा दिया। इसके पश्चात् महाराज ने एक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सौनेए का दान देना प्रारम्भ किया। इसे वर्षी दान कहते हैं। एक वर्ष में यह दान तीन अरब अस्सी लाख और अठयासी हजार सौनेयों के नम्बर तक पहुंच जाता है। क्योंकि मोक्ष मन्दिर तक पहुँचने के लिए दान ही सर्व प्रथम सोपान (सीढी) है। अनन्त चौवीसी हो चुकी है और सभी ने इसी प्रकार

वर्षी दान दिया है और भविष्य में जो भी तीर्थङ्कर बनेंगे वे सब इसी प्रकार वर्षी दान देकर दीक्षा धारण करेंगे। क्योंकि ज्ञानी महा पुरुषों ने आत्मा को उन्नत बनाने के लिए चार मार्ग प्रदर्शित किए हैं—दान, शील, तप और भाव। इन, चारों में दान को सर्व प्रथम स्थान दिया है। दान के पश्चात् शील, तप और अन्त में भावना का नम्बर आता है। तो प्रत्येक तीर्थङ्कर बनने से पहिले एक वर्ष पर्यन्त मुक्त हस्त से दान देते हैं। उस दिए हुए दान को आर्य और अनार्य सभी ग्रहण करते हैं। तीर्थङ्कर के द्वारा दिए जाने वाले दान को ग्रहण करने के लिए दुनिया भरके लोग आते हैं। उस समय दो इन्द्रों की यह ड्यूटी होती है कि वे जिसके हिस्से में कम दान आता है तो उसे अधिक और जिसके पास अधिक सौनैए पहुंच जाते हैं तो उसमें से कम करके सबके हिस्से में बराबर पहुंचा देते हैं। परन्तु तीर्थङ्कर भगवान की तरफ से तो सबको समान भाव से दान दिया जाता है। जिस प्रकार आकाश से वर्षा सब जगह समान रूप से होती है इसी प्रकार भगवान भी समान भाव से सब को दान देते हैं।

इस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान वर्षीदान देकर दुनिया के लोगों को दान का सबक सिखाते हैं। जैसे किसान समय आने पर अपने संचित अनाज को खेत में बिखेर देता है और फसल पक जाने पर उससे कई गुना अधिक अनाज गाडियों में भर कर घर लाता है उसी प्रकार संसार के लोगों! यदि आप भी अपने धन को दूसरों के परोपकार में दोगे तो भविष्य में उससे कई गुना प्राप्त करने के हकदार बन जाओगे। यदि एक व्यापारी अपने धन को तिजोरी में से निकाल कर

व्यापार में लगाता है तो एक दिन वही धन दुगुना और चौगुना भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि वह उस धन को तिजोरी में ही बन्द किए रहता है या जमीन में गड़ा रहने देता है तो एक दिन वही धन खुट जाता है और संचित किया हुआ अनाज भी सुलकर राख बन जाता है। इसलिए धन का सदुपयोग करो ताकि वह समाप्त नहीं होकर बढता ही चला जाय। क्योंकि पुण्य कर्म करने से पुण्य फल की प्राप्ति होती है और पुण्य फल प्राप्त करने बाद पाप कर्म किया जाता है तो पाप का फल बढ़ जाता है और पुण्य नष्ट हो जाता है। तो संसार में व्यवहारिक उन्नति भी जब त्याग किए बिना नहीं हो सकती तब आत्मा की उन्नति तो दिए बिना त्याग किए बिना कैसे हो सकती है ! इसलिए अक्षय सुख की प्राप्ति के लिए त्याग करना अत्यावश्यक है।

तो महाराज वज्रसेन ने वर्षीदान देकर दीक्षा अंगीकार कर ली। चूंकि अब महाराज वज्रनाभि चक्रवर्ती राजा बन चुके थे अतएव उनकी सेवा के लिए चक्र रत्न प्रगट हुआ। उसने चक्रवर्ती राजा के मार्ग का प्रदर्शन किया और उसके जरिये वे छः ही खंडों पर दिग्विजय प्राप्त करके और अपना शासन जमा कर वापिस लौट आए। परन्तु चक्रवर्ती राजा बन जाने पर भी महाराज वज्रनाभि ने अपने भाइयों के साथ भाई जैसा ही व्यवहार किया। उन्होंने मन में तनिक भी यह नहीं सोचा कि अब तो मैं चक्रवती सम्राट हूँ और ये मेरे सामने क्या शक्ति रखते हैं। परन्तु उन्होंने पूर्ववत् ही भाई जैसा प्रेम बनाए रखा। इस प्रकार वे पांचों भाई प्रेम पूर्वक आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।

तो यहां कहने का तात्पर्य यही है कि देखो ! वे छः हों मित्र अपने पूर्व जन्म में दुष्कर्मों से बचते हुए अपने जीवन का शुभ कार्यों में सदुपयोग करते रहे इससे वे देव लोक का सुख भोग कर भी भविष्य में राजा के राजकुमार बने और जीवानन्द वैद्य का जीव तो एक चक्रवर्ती सम्राट के रूप में उत्पन्न हुआ। तो भाई ! अपनी छोटी सी ज़िंदगी में दुष्कर्मों से बचो और परोपकार, दान, शील, तप और शुभ-भावना में अपने जीवन के क्षण व्यय करो। ऐसा करने से आप इस लोक तथा परलोक में भी सुखी बन सकेंगे।

अब किस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट वज्रनाभि तथा उनके भाइयों को वैराग्य भावना आती है और किस प्रकार वे पुनः संयम ग्रहण करते हैं यह सब कुछ आगे सुनने से अवगत हो सकेगा।

बैंगलोर
ता० ६-८-५९



:: रोगोत्पत्ति और उनके उपाय ::

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशम्,
नैवं तथा हरि हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच शकले किरणा कुलेऽपि ॥



भाइयों ! यह शरीर रोगों का भंडार है। इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोमावलियां हैं। एक एक रोम में पौने दो दो रोग भरे हुए हैं। जब तक शरीर में साता वेदनीय कर्म का उदय रहता है तब तक शरीर में निरोगता प्रतीत होती है परन्तु जब शरीर में असाता वेदनीय का उदय हो जाता है तब नाना प्रकार के रोगों का प्रादुर्भाव निमित्त पाते ही हो जाता है। रोगों के उत्पन्न होते ही शरीर निर्बल, निस्तेज और निष्प्राण सा प्रतीत होने लगता है। उत्पन्न रोगों का डाक्टर, वैद्य या हकीम के द्वारा उपचार कराने पर भी जब शरीर में स्वस्थता और समाधि प्राप्त नहीं होती तब स्वयं रोगी या तो अपने रोगों की उपशान्ति के लिए भगवान से कर जोड़ प्रार्थना करता है या रोगों से घबराकर अपने जीवन से ही मुक्त होना चाहता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष ज्ञान बल से उस असाध्य से असाध्य बीमारी की उत्पीड़ा को समभाव पूर्वक सहन करते हुए समाधि मरण को प्राप्त

होते हैं। ज्ञानी पुरुष विचार करता है कि पूर्व जन्म में या इस जन्म में मैंने जो असाता वेदनीय कर्म का बंधन किया है उसे तो उदय काल में मुझे ही भोगना पड़ेगा। कोई भी अन्य व्यक्ति मेरे कष्ट को भोगने में समर्थ नहीं है तब मुझे धैर्य धारण करके और समभाव पूर्वक शरीर व्याधि को क्यों न सहन करना चाहिए! जबकि एक अज्ञानी थोड़े से शारीरिक कष्ट को भी हाय हाय करते हुए भोगता है। वह ऐसा करते हुए अपने आपको ही नहीं वरन् सेवा सुश्रूशा करने वाले कुटुम्बी जनों को भी दुख सागर में डाल देता है। इस तरह वह भगवान की उपासना करना भी भूल जाता है और एक दिन आर्त-ध्यान, रौद्र ध्यान ध्याते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर दुर्गति का अधिकारी बन जाता है।

तो मानव का कर्त्तव्य है कि अपनी छोटी सी जिंदगी में वह ऐसे दुष्कार्यों से अपने आपको बचाता रहे जिनके द्वारा असाता वेदनीय काय का बन्धन होता है। उसे जीवन में अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से सदैव बचते रहना चाहिए। इस संसार में जीवन धारण करने वाले प्राणियों को प्राणों से मुक्त कर देना, उन्हें निर्दयता से वध करके प्रसन्न होना, उनका मांस सेवन करना या दूसरों की आत्मा को उत्पीड़ा पहुँचाना अपने लिए भविष्य में असाता वेदनीय कर्म का बंधन करना है। इसके विपरीत सभी प्राणियों के साथ आत्मवत्त व्यवहार करते हुए सबको सुख-शांति पहुँचाना अपने आपके लिए साता वेदनीय कर्म का उपार्जन करना है।

यही नहीं परन्तु अपने शरीर को सदैव निरोग बनाए रखने के लिए प्राकृतिक नियमों के विपरीत भी आचरण नहीं करना चाहिए। अपने खान-पान को हमेशा संतुलित बनाए रखना अपने शरीर को निरोग बनाए रखने का प्रथम उपाय है। यदि आप शराब, मांस आदि कामोत्तेजक पार्थों का सेवन करेंगे और स्वादिष्ट पदार्थ अधिक

मात्रा में खायेंगे तो अजीर्णादि नाना प्रकार के रोगों के शिकार ह कर अपने स्वास्थ्य को खतरे में डाल देंगे अतएव अपने शरीर निरोगता के अभिलाषियों को चाहिए कि वे नियमित समय हमेशा निरामिष तथा सादा भोजन ही करें। इसके साथ ही स एक माह में दो उपवास करना भी आवश्यक है। इस प्रकार व्यक्ति दूसरे प्राणियों को सुख-शांति पहुँचायेंगे और प्राकृति नियमानुसार सादा भोजन करेंगे वे अपने शरीर को स्वस्थ बना रखने में सफल हो सकेंगे।

उक्त भक्तामर स्तोत्र के बीसवें श्लोक में आचार्य मानतु भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए फर्माते हैं कि हे नाथ! अनन पर्यायात्मक पदार्थों का प्रकाश करने वाला केवल ज्ञान जैसा आप अन्दर शोभायमान होता है वैसा ज्ञान विष्णु, महादेव आदि देव में शोभित नहीं होता। कारण कि जैसा प्रकाश स्फुरायमान मणिय में होता है वैसा किरणों से व्याप्त अर्थात् चमकते हुए भी कांच टुकड़ों में नहीं होता।

इससे सिद्ध होता है कि मणियों का प्रकाश ही वास्तविक प्रकाश है और कांच के टुकड़ों का कृत्रिम प्रकाश है। मणियों के कुदरती प्रकाश के सामने सूर्य किरणों के द्वारा प्रकाशित होने वाले कांच के टुकड़ों का प्रकाश ठहर नहीं सकता। इसी प्रकार जैसा स्व पर प्रकाश का ज्ञान तीर्थङ्कर भगवान में होता है वैसा अन्य हरि हरादिक नायकों में ज्ञान नहीं पाया जाता।

जब मणि और कांच का टुकड़ा एक सुयोग्य जौहरी के हाथ में पहुँच जाते हैं तब परीक्षण होते ही कांच कांच ही रहता है और मणि-मणि ही रहता है। उस समय मणि संभाल कर रखने योग्य सिद्ध होती है और कांच का टुकड़ा फैंकने योग्य साबित होता है।

परन्तु जब तक दोनों का परीक्षण नहीं होता तब तक दोनों ही संभाल कर रखे जाते हैं और समान भाव से आदर पाते हैं।

और इसी विषय की पुष्टि में ज्ञानी पुरुष भव्यात्माओं के समक्ष एक दृष्टांत देकर समझाते हैं कि किसी शहर में एक सेठ रहता था। उसके पास विपुल धन था। उसका एकमात्र पुत्र भी बड़ा आज्ञाकारी था। परन्तु भाई! जानते हो कि सब दिन किसी के सरीखे नहीं बीतते हैं। यह जीवन भी परिवर्तन शील है। इस जीवन में कभी सुख और कभी दुख की लहरें आया करती हैं। कभी कोई धनवान से निर्धन और कभी रंक से राजा भी बन जाता हैं।

तो इसी नियम के अनुसार एक समय सेठ बीमार हो गया। उसके पुत्र ने अपने पिता की निरोगता के लिए सारे संचित धन को भी खर्च कर दिया। परन्तु फिर भी वह सेठ आरोग्य लाभ प्राप्त नहीं कर सका। आखिर उस असाध्य बीमारी के वशीभूत होकर जब वह सेठ मरने लगा तो उसने अपनी स्त्री के हाथ में एक डिबिया रखते हुए कहा कि प्रिए! अब मेरी जीवन लीला समाप्त हो रही है। परन्तु मेरे मरने के पश्चात् जब तुम्हें धन की आवश्यकता हो तब इस डिबिया को, जिसमें रत्न रखे हुए हैं, मेरे मित्र के पास भिजवा देना और इन रत्नों के बदले रुपए मंगवा लेना। इस प्रकार अंतिम शिक्षा देकर वह सेठ कालधर्म को प्राप्त हो गया।

सेठ का दाह संस्कार तथा रीतिरिवाज के मुताबिक तमाम क्रियाएँ कर दी गई। अब कुछ दिनों तक तो बचे हुए धन के द्वारा मां बेटे का काम चलता रहा। परन्तु जब पास में कुछ भी शेष नहीं रहा और खर्च के लिए आवश्यकता महसूस होने लगी तो उस सेठानी ने अपने पुत्र के हाथ में उक्त रत्नों की डिबिया रखते हुए कहा कि बेटा! इस डिबिया को अपने पिता के दोस्त की दूकान पर लेजा और इन रत्नों के बदले पांच सौ रुपए उधार ले आ।

लड़का उस डिबिया को अपनी माता के कथनानुसार उस जौहरी के पास ले गया। उसने अपने पिता के दोस्त के सामने उस डिबिया को रखते हुए कहा कि सेठ सा० ! मैं आपके दोस्त का पुत्र हूँ। मैं अपने पिताजी की आज्ञानुसार इस संकट काल में ये रत्न लेकर आया हूँ। आप कृपा करके इस डिबिया को रख लीजिए और इन रत्नों के बदले में मुझे पांच सौ रुपए दे दीजिए ताकि मैं इन रुपयों के द्वारा अपना घर खर्च चला सकूं।

सेठ ने उक्त डिबिया को खोली। उनकी ज्योंही नजर उन रत्नों पर पड़ी त्योंही उन्होंने समझ लिया कि यह लड़का जिनको रत्न समझ रहा है वे वास्तव में रत्न नहीं परन्तु कांच के टुकड़े हैं। उसने उन टुकड़ों को देखकर वापिस डिबिया बन्द कर दी। जौहरी ने उन कच्चे नगीनों को देखकर उन्हें अपने यहां भिजवाने का रहस्य समझ लिया। स्व० सेठ के साथ इनकी कट्टर मित्रता थी। उसने मित्रता निभाने के नाते उस लड़के को कहा कि बेटा ! यह रत्नों की डिबिया वापिस ले जाओ और अपनी माता को लेजाकर दे दो। जब कोई बड़ा जौहरी आएगा तब मैं तुम से मंगवा लूंगा। और अपने घर खर्च के लिए भी ये पांच सौ रुपए लेजाओ। यही नहीं परन्तु कल से तुम मेरी दूकान पर काम सीखने भी आया करो। क्योंकि अब तुम काफी बड़े होगए हो अतएव इधर उधर गप्प शप्प में फालतू समय नहीं खरचते हुए काम धन्धा सीखा करो।

सेठ की इस उदारता को देख कर लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ। वह पांच सौ रुपये और रत्नों की डिबिया लेकर अपनी मां के पास पहुँचा। उसने अपनी मां से सेठ की उदारता की प्रशंसा करते हुए कहा कि सेठ ने ये पांच सौ रुपये ही नहीं दिए हैं बल्कि उन्होंने यह डिबिया भी वापिस लौटा दी और कहा है कि कल से तुम मेरी दूकान पर काम सीखने भी आया करो। मां ! वे सेठ बड़े दयालु हैं।

माता ने जब अपने पति के दोस्त की उदारता के विषय में लड़के के मुंह से सुना तो वह भी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपने बेटे से कहा कि बेटा ! वे इन्सान ही नहीं परन्तु देवता हैं। अच्छा ! कल से तुम उनकी दूकान पर काम सीखने आया करो। यदि मन लगा कर तुमने काम सीख लिया तो एक दिन तुम भी जौहरियों की गणना में आ जाओगे।

दूसरे दिन सूर्योदय की पहिली किरण के साथ वह लड़का उस जौहरी की दूकान पर पहुंच गया। सेठ ने बड़े प्रेम के साथ उस लड़के को पुत्र की तरह जवाहरात की पहिचान करना सिखाना शुरु किया। उसने बताया कि देखो बेटा ! यह हीरा है, पन्ना है, माणक और मोती है और ये इतने पानी वाले हैं तथा इनकी इतनी कीमत होती है। इस प्रकार सीखते-सीखते लड़के की नजर भी जवाहरात को पहिचानने में जमने लगी। जब लड़का उक्त कार्य में दक्ष हो गया तो उस सेठ ने उसकी साल भी खोल दी। अब वह इतना होशियार जौहरी बन गया कि किसी नगीने को एक बार नजर से देखकर जो उसकी कीमत बता देता उससे ऊंची कीमत बाजार में दूसरा कोई जौहरी नहीं लगा सकता था। भाई ! जवाहरात के कार्य में तो नजर का खेल है। नजर से देख कर ही उसकी कीमत कूंती जाती है। प्रत्येक जवाहरात की परीक्षा भी नहीं कर सकता। एक अजानकार व्यक्ति के लिए कीमती हीरा भी कांच के टुकड़े के सदृश लगता है और एक कांच का टुकड़ा भी उसके लिए कीमती पत्थर बन जाता है। परन्तु एक जौहरी की दृष्टि में कांच-कांच ही रहता है और हीरा-हीरा ही रहता है।

जब सेठ ने हर तरह से उस लड़के की परीक्षा कर ली और जान लिया कि अब इसकी नजर कभी भी धोखा नहीं खा सकती तो

एक दिन सेठ ने उससे कहा कि बेटा ! आजकल जवाहरात का भाव तेजी पर है और बाहर के जौहरी भी आए हुए हैं अतएव अब तुम अपनी मां से वह रत्नों की डिबिया ले आओ। ऐसा करने से तुम्हें अच्छी रकम प्राप्त हो जाएगी।

सेठ की आज्ञा मानकर वह लड़का अपने घर आया और अपनी मां से कहने लगा कि मां ! आज सेठ सा० ने उस डिबिया को मंगाया है क्योंकि बाहर के जौहरी लोग आए हुए हैं अतएव उन नगीनों की अच्छी कीमत प्राप्त हो सकेगी।

मां ने उसे डिबिया निकालकर दे दी। लड़के ने उसे सेठ के पास ले जाने से पहिले सोचा कि पहिले मैं तो इन रत्नों की जांच कर लूं कि ये क्या कीमत के हैं ! यह सोचकर उसने डिबिया खोली और उन रत्नों को देखा। परन्तु इस बार उसकी नजर में वे नगीने कांच के टुकड़े ही नजर आए। चूंकि आज उसने उन्हें जौहरी की नजरों से देखा था अतएव वे सब उसे नकली ही दिखाई दिए। उसने उन्हें नकली करार देकर अपनी मां से कहा कि मां ! ये तो सब नकली हैं। ये सब सड़क पर फैंकने लायक हैं जिन्हें कि हम आजतक सुरक्षित रूप से रखे आ रहे हैं। हे मां ! धन्यवाद है उन सेठ सा० को जिन्होंने बड़ा परिश्रम करके मुझे इस योग्य बना दिया कि मैं आज असली और नकली के भेद को समझने लगा हूँ।

अपने लड़के के मुंह से उक्त बात सुनकर मां ने कहा कि बेटा ! वास्तव में सेठ सा० ने हमारे साथ बड़ी दुरदर्शिता से काम लिया। यदि वे इस डिबिया को देखकर उसी समय कह देते कि ये तो नकली नगीने हैं तो हमारा खर्च चलना भी मुश्किल हो जाता और तू भी आज इस तरक्की पर नहीं पहुँच पाता। तो सेठ ने हम पर भगवान सदृश उपकार किया और हमें भूखों मरने से भी बचा लिया।

उस लड़के ने उन कांच के टुकड़ों को तत्क्षण सड़क पर फैंक दिए। वह सीधा सेठ के पास पहुँचा और उनके पैरों में गिर कर बोला कि सेठ सा० ! आप सच्चे मायने में देवता हैं। आपने हम लोगों पर कितना उपकार किया है यह मैं अपनी जबान से बयान नहीं कर सकता। आपने आज मुझे अपने बराबरी का जौहरी बना लिया है। सेठ सा० ! मैंने उन रत्नों को देख लिया है। वे सब नकली नगीने हैं। मुझे उस वक्त इनकी परीक्षा नहीं थी और इसीलिए मैं उन्हें बराबर संभाल कर रखता रहा। परन्तु परीक्षक दृष्टि से देखने पर अब वे मुझे नकली साबित हुए और मैंने उन्हें सड़क पर फैंक दिए।

यह सुन सेठ ने कहा कि बेटा ! मैंने तो मानवता के नाते अपना फर्ज अदा किया है। मैंने कोई तेरे साथ एहसान नहीं किया है। मुझे आज अत्यन्त खुशी है कि तू आज इस लायक बन चुका है कि तेरी नजर असली और नकली की पहिचान करने में कामयाब हो चुकी है।

भाई ! इस दृष्टान्त के द्वारा कहने का प्रयोजन यही है कि इस संसार में नाना प्रकार के देव हैं और अनेक लोग उनको देव समझ कर ही पूजा कर रहे हैं। परन्तु जब महापुरुषों के सन्निकट आने पर उन्हें देवाधिदेव की पहिचान हो जाएगी तो वे देवों को छोड़कर देवाधिदेव के उपासक बन जायेंगे। क्योंकि अब उनमें नकली और और असली को पहिचानने की समझ आ चुकी है।

तो उक्त श्लोक में भी आचार्य श्री ने भगवान की गुणस्तुति में फर्माया है कि हे भगवन् ! जो केवल ज्ञान का प्रकाश आप में शोभित हो रहा है वह अन्य हरिहरादि नायकों में ज्ञान प्रतिभासित नहीं

होता। तो ऐसे केवल ज्ञान रूपी प्रकाश के धारक भगवान ऋषभदेव हैं और वे ही हमारे देवाधिदेव हैं। उन्हीं को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

दुख-विपाक-सूत्र :

हां तो, मैं आपके समक्ष मृगापुत्र के सम्बन्ध में सुनाने जा रहा हूँ। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने अपने परम शिष्य गौतम स्वामी को मृगा पुत्र के पूर्व जन्म को सुनाते हुए फर्माया कि हे गौतम! वह ईरवाई ठाकुर बड़ा अधर्माचरण करता हुआ जीवन यापन कर रहा था। उसके पास बहुत से राजेश्वरो या सार्थवाही प्रमुख व्यक्ति भी परामर्श लेने आते थे परन्तु वह उन्हें भी धोखा दे देता था।

परन्तु भाई! यह पापकर्म किसी को भी माफ करने वाला नहीं है। यद्यपि मनुष्य अपनी चालाकी से किसी को आंखों में धूल झौंक कर स्वार्थ सिद्धि कर लेता है और क्षण भर के लिए अपनी बेईमानी पर बड़ा प्रसन्न होता है। वह मन में विचारता है कि ओहो। मैंने किस सफाई के साथ उस व्यक्ति को लूट लिया है, धोखा देकर माल हड़प कर लिया है! परन्तु याद रखना! जिस पाप कर्तव्य पर तू फूला नहीं समा रहा है वही तुझे एक दिन रसातल में भी पहुँचा देगा। यह निश्चित और अटल सिद्धान्त है कि अच्छे कार्य का परिणाम अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है।

तो उसी पाप कर्म के परिणाम स्वरूप उस ईरवाई ठाकुर के शरीर में भी एक दम एक साथ सोलह रोगों का प्रकोप हो गया।

जिनको कि राज रोग कहा जाता है। पापोदय के कारण ईरवाई ठाकुर के शरीर में (१) श्वास का प्रकोप, (२) खांसी, (३) ज्वर, (४) जलन, (५) कुक्षि पीड़ा, (६) भगंदर, (७) मस्से, (८) अजीर्ण (९) नेत्र रोग, (१०) मस्तकशूल, (११) अरूचि, (१२) कर्ण पीड़ा, (१३) खुजली, (१४) उदर रोग, (१५) जलोदर और (१६) कोढ़ की बीमारियां उठ खड़ी हुई। वह बीमारियों की पीड़ा से अत्यधिक घबराने लगा। उसका रात्रि में नींद लेना भी हराम हो गया। जब उसे इन रोगों के द्वारा असह्य वेदना होने लगी तो उसने एक दिन अपने कुटुम्बी जनों को बुलवाया और उनसे कहा कि तुम लोग विजय वर्धमान खेड़े के दो रास्ते, तीन रास्ते, चार रास्ते और अनेक रास्ते वाले स्थान पर जगह-जगह पर ढिंढोरा पिटवादो, उद्घोषणा करवा दो कि जो कोई जानकार या जानकार का बेटा, विद्यावाला या विद्यावाले का बेटा और वैद्य या वैद्य का बेटा ईरवाई ठाकुर के शरीर में व्याप्त सोलह रोगों में से एक रोग भी शांत कर देगा उसे बहुत धन इनाम के रूप में दिया जायेगा।

कुटुम्बीजनों ने ईरवाई ठाकुर की आज्ञा को मान्यता प्रदान करते हुए उसके कथनानुसार गांव के चौराहे चौराहे पर उद्घोषणा करवा दी कि जो कोई अनुभवी, वैद्य, जानकार, विद्यावाला या इनका बेटा ईरवाई ठाकुर के एक रोग को भी उपशान्त कर देगा वह ठाकुर के द्वारा विपुल धन प्राप्त करने का हकदार हो जाएगा। इस प्रकार उक्त उद्घोषणा करवा कर उसके कुटुम्बी-जनों ने आकर ईरवाई ठाकुर से कह दिया कि हमने हर जगह आपके कथनानुसार घोषणा करवा दी है।

उक्त उद्घोषणा को सुनकर और हृदय में धारण कर जानकार या उसका बेटा, विद्यावान या उसका बेटा और वैद्य या उसका बेटा

सभी मन में प्रसन्न हुए और धन प्राप्ति की लिप्सा से अपनी अपनी पेटी हाथ में लेकर अपने घर से रवाना हुए। वे सब सीधे ईरवाई ठाकुर के घर पहुँचें। वहां आकर उन्होंने क्रमशः ईरवाई ठाकुर की नब्ज (नाड़ी) देखी। क्योंकि आयुर्वेद शास्त्र में रोग का परीक्षण चार प्रकार से बताया गया है (१) टट्टी देखकर, (२) पेशाब की जांच कर, (३) जीभ देख कर और (४) नाडी देख कर।

तो परीक्षक, वैद्य, जानकार, विद्यावान या उनके बेटों ने ठाकुर की पहिले नाडी परीक्षा की। इसके बाद उन्होंने उससे रोगोत्पत्ति का कारण पूछा। जैसे कि आज वर्तमान युग में डाक्टर मरीज के शरीर की परीक्षा करने के बाद पूछता है कि तुमने किस पदार्थ का सेवन किया जिससे यह बीमारी होगई! तब वह मरीज डाक्टर या वैद्य के प्रश्न के उत्तर में कहता है कि डाक्टर सा० ! मैंने और तो कोई चीज नहीं खाई परन्तु थोड़ी-सी अमुक चीज अवश्यमेव खा ली थी और उसके खाने के बाद ही शरीर में इस प्रकार की व्याधि उत्पन्न होगई। तो इस प्रकार रोगी को दवा देने से पूर्व एक समझदार डाक्टर या वैद्य रोग का निदान कर लेना आवश्यक समझता है। निदान हो जाने के बाद जब डाक्टर उस रोग के मुताबिक दवा देता है तो रोग का शमन जल्दी हो जाता है और रोगी रोग से मुक्ति पा लेता है। तो सर्व प्रथम रोग का निदान करना जरूरी है।

भाई ! तीर्थङ्कर भगवान ने भी श्रीमद् ठाणांगजी सूत्र में नौ बातें ऐसी अमूल्य प्रतिपादित की हैं जिनके पालन करते रहने से शरीर में निरोगता रहती है। अन्यथा इनके विपरीत आचरण करने पर शरीर को अवश्यमेव मूल परिणाम भोगना पड़ता है। तो भगवान ने स्पष्ट रूप से फर्माया है कि:—।

"नवहि ठाणेहिं रोगुप्पत्तिया—तंजहा—अच्चासणियाए, अहिया सणियाए, अइ निद्दाए, अइ जागरिएणं, उच्चार निरोहेणं पासवण निरोहेणं, अद्धाण गमणेणं, भोयणंपडिकुलयाए, इंदियत्थे कोवणयाए।"

अर्थात—प्रथम रोगोत्पत्ति का कारण अधिक मात्रा में भोजन करना माना है। क्योंकि अधिक ठूंस-ठूंस कर स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करने से अजीर्णादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तो अपने आपको निरोगी बनाए रखने के लिए अल्प मात्रा में भोजन करना ही लाभ-दायक है। इससे शरीर को किसी प्रकार की हानि होने की संभावना नहीं रहती। भाई! एक तो भोजन जीने के लिए खाया जाता है और एक खाने के लिए जिया जाता है। तो इन दोनों में जिनका सिद्धान्त यह है कि जीने के लिए खाना तो वे सदैव पथ्यकर और अल्प मात्रा में ही भोजन करेंगे। परन्तु जो केवल खाने के लिए ही जीते हैं वे अवश्य ही अधिक मात्रा में खाकर अपने शरीर को रोगों का शिकार बना देते हैं। ऐसी परिस्थिति में वे हाय-भाय करते हुए असमय में ही इस संसार से कूच कर जाते हैं। तो मनुष्य को चाहिए कि अपने शरीर को सदैव निरोग अवस्था में बनाए रखने के लिए अधिक मात्रा में भोजन करने की तरफ लक्ष्य न दे।

दूसरे आज भारत-वर्ष में खाद्यान्न की कमी होने से भारत सरकार को भी अन्न की पूर्ति के लिए बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है। जो भारत के नागरिक केवल खाने के लिए जी रहे हैं उनके लिए तो सरकार की चुनौती है कि वे अपने खाने में से खाद्यान्न को बचाएं और उसका सदुपयोग उन भाइयों के लिए करें जो कि अन्न के अभाव में अपने प्राणों का विसर्जन कर रहे हैं। तो अधिक भोजन करने वालों को चाहिए कि वे भोजन अल्प मात्रा में करें और उस बचाए हुए अन्न से अन्न की कमी और मंहगाई अधिक

बढने से देश को बचाएँ। यदि आप जीने के लिए ही खायेंगे तो अन्न का दुरुपयोग नहीं होगा, जरूरत मन्दों को अन्न मिल सकेगा और डाक्टर तथा वैद्यों की संख्या भी बढने से रुक सकेगी। तो जीवन का उद्देश्य है कि जीने के लिए खाया जाय।

दूसरे अपने शरीर को निरोग बनाए रखने के लिए मनुष्य को अहित कर भोजन नहीं करना चाहिए। यदि अपथ्यकारी और अहित कर भोजन करोगे तो उससे भी शरीर रोग से ग्रसित हो जाएगा। तीसरे—कभी भी टट्टी की हालत को नहीं रोकना चाहिए? चौथे—पैशाब की हालत को रोकने से भी रोग शरीर में व्याप्त हो जाता है। क्योंकि टट्टी पैशाब की हालत रोकने से उसकी विषैली गैस ऊपर की ओर उठती है उससे मस्तिष्क शूल आदि कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पांचवें—दिन या रात्रि में अधिक निद्रा लेने से भी शरीर में रोग की उत्पत्ति हो जाती है। छठे—ज्यादा चलने से भी यह शरीर बीमार पड़ जाता है। सातवें—ज्यादा जागने से भी शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है। आठवें—अधिक मात्रा में प्रतिकूल भोजन करने से भी शरीर बीमार पड़ जाता है और नवमें—पांचों ही इंद्रियों में विशेष रूप से वृद्धि हो जाने से भी असाध्य बीमारियां से यह शरीर ग्रसित हो जाता है।

तो उक्त रोगोत्पत्ति के कारणों को हृदय में रखते हुए हमेशा इस प्रकार का आचरण करें जिससे शरीर में रोगोत्पत्ति न होने पाए।

हां तो, उस ईश्वाई ठाकुर ने भी उन वैद्य, जानकार, ज्ञानवान और उनके बेटों को अपनी बीमारी के कारण बताए। जब रोगों का निदान कर लिया गया तो उन्होंने कहा कि ठाकुर सा० ! अब हम जैसा कहेंगे वैसा ही आपको करना होगा। यदि आपने हमारे कथनानुसार उपाय किया तो शायद आप रोगों से मुक्ति पा सकते हैं।

यह सुनकर ईश्वाई ठाकुर ने कहा कि भाई ! मैं इन रोगों से मुक्त होने के लिए आपकी सारे शर्तें मंजूर करने को तैयार हूँ। अब आप अपने-अपने प्रयोग करना प्रारंभ कर दीजिए।

तब किसी वैद्य ने तेल मर्दन के लिए, किसी जानकार ने उबटन-पीठी मर्दन करने के लिए, किसी विद्यावान ने अमुक चीजों का रस निकाल कर पीने के लिए, किसी वैद्य के बेटे ने वमन करने के लिए, किसी जानकार के बेटे ने जुलाब-विरेचन लेने के लिए, किसी विद्यावान के बेटे ने औषधियों का काढ़ा पीने के लिए, किसी ने औषधि सेवन करने के लिए, किसी ने औषधियों का काढ़ा सींचने के लिए, किसी ने अर्क पीने के लिए, किसी ने एनीमा लेने के लिए, किसी ने अमुक औषधि सूंघने के लिए, किसी ने औषधि का धुंआ लेने के लिए, (बवासीर की बीमारी में औषधि का धुंआ दिया जाता है जिससे मस्से खिर जाते हैं) किसी ने चमड़ी चीरने के लिए, किसी ने शरीर पर चमडा बांधने के लिए, किसी ने शरीर पर गर्म तैल छांटने के लिए, किसी ने मिर्चें बांटकर उसका रस कान में डालने के लिए, किसी ने नीम के पत्तों के गर्म पानी से सेक करने के लिए और किसी ने अनेक प्रकार की वनस्पतियों की छालें, मूल और पत्तियों को उकाल कर उसके रस को चिरायते की तरह सेवन करने के लिए कहा। गर्ज यह है कि हरेक ने अपनी अपनी समझ से अनुभव से उक्त औषधिएँ बता दी। उन्होंने यह भी कहा कि पथ्य रखते हुए यदि इस प्रकार औषधियों का प्रयोग करोगे तो आपके शरीर की बीमारी शीघ्र शान्त हो जाएगी। वे सब लोग अपने अपने प्रयोग बताकर अपने अपने घर चले गए।

इसके बाद ईश्वाई ठाकुर के कुटुम्बीजनों ने तदनुसार ही औषधिएँ तैयार की और उनके कथनानुसार उनका प्रयोग भी किया। परन्तु असातावेदनीय कर्म का उदय होने से ईश्वाई ठाकुर के सोलह प्रमुख रोगों में से एक भी रोग उपशान्त नहीं हो सका। ठाकुर को

किसी की दवा से भी राहत नहीं मिली। बल्कि दिन प्रतिदिन ठाकुर की बीमारिएँ बढ़ती ही गई और उसे अधिक रूप से अशान्त बनाने लगीं। जब उपचार करते हुए भी ठाकुर को शान्ति नहीं मिली तो सभी परिचर्या करने वाले कुटुम्बीजन तीन प्रकार से थक कर निराश हो गए। प्रथम तो वे तन से शरीर से मेहनत करते हुए उपचार करते हुए और सेवा में रहते हुए थक गए किंतु फिर भी ठाकुर को आराम नहीं मिल सका। दूसरे मन से भी वे लोग थक गए। और तीसरे तन और मन दोनों से निराश हो गए। जैसे आप लोग भी किसी बीमार का इलाज करवाते हैं। परन्तु जब किसी डाक्टर या वैद्य की दवा से रोगी को आराम नहीं मिलता तो डाक्टर या वैद्य भी दवा बदलते बदलते हैरान हो जाता है और अन्त में वह कह देता है कि अब मेरे पास इससे अधिक लाभदायक दवा नहीं है। वे निराश होकर यह भी कह देते हैं कि मरीज को अब बम्बई या कलकत्ता के हॉस्पिटल में भर्ती कराना ही मुनासिब है और घर के लोग भी परिचर्या करते करते तंग आकर कह देते हैं कि न तो यह मरता है और न माचा ही छोड़ता है।"

तो सभी वैद्य, जानकार, विद्यावान या उनके बेटों के प्रयोग जब व्यर्थ साबित हुए और ठाकुर का एक रोग भी शान्त नहीं हुआ तो ईरवाई ठाकुर अपने जीवन से निराश होकर मौत को ढूंढने लगा। परन्तु मृत्यु भी तो बुलाने से नहीं आ जाती। क्योंकि जितने समय तक असातावेदनीय कर्म का उदय रहता है तो उसे उतने समय तक अवश्य ही बीमारी की असह्य वेदना सहन करनी ही पड़ती है और सातावेदनीय का उदय होते ही किसी के द्वारा दी हुई राख या धूल की एक चिमटी भी रामबाण की तरह काम कर गुजरती है। तो यह

सब खेल इन कर्मों का है। तभी तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि अपने जीवन में ऐसे दुष्कर्म मत करो जिनके फल भविष्य में तुम्हें दुखदायी हों और रोगों का शिकार बनकर उस वेदना को सहन करनी पड़े। यदि जीवन में निरोग बने रहने के इच्छुक हो तो सभी प्राणियों को सुख शांति पहुंचाओ और किसी को तनोड़ा मत दो। ऐसा करने से तुम भव भव में निरोग बने रहोगे। अरे! आदिनाथ भ० ऋषभदेव की माता मरुदेवी अपने पूर्व जन्मों में सब को शाता पहुंचा कर आई थीं तो अपने करोड़ पूर्व की अवस्था तक उन्हें सिर दर्द की बीमारी से भी वंचित रहना पड़ा। इसलिए अपनी निरोगता के लिए सबको सोता पहुँचाओ। दूसरों को साता पहुंचाने से तुम भी सातावेदनीय के बंधन मे बंध जाओगे और यावज्जीवन सुख शान्ति पूर्वक जीवन बसर कर सकोगे।

तो उस ईरवाई ठाकुर के शरीर में अशान्ति विशेष रूप से बढ़ गई। वह दिन रात अपने रोगों की वेदना के कारण कराहता रहता था। ऐसी परिस्थिति में महान वेदना के कारण एक रोगी के मुंह से परमात्मा का नाम भी नहीं निकलने पाता। तो वह ईरवाई ठाकुर राजकाज में मूर्छित होता हुआ, आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याता हुआ और उस महान वेदना के चंगुल में फंसा हुआ अपने दो सौ पचास वर्ष के उत्कृष्ट आयुष्य को पूर्ण करके एक दिन उसकी आत्मा उस कलेवर को छोड़कर पहली नर्क रत्न प्रभा में उत्कृष्ट एक सागरोपम स्थिति वाले नेरिए के रूप में उत्पन्न हुई।

वहां से असीम कष्टों को भोगकर ईरवाई ठाकुर की आत्मा इसी नगर में विजय क्षत्रिय राजा की महारानी मृगादेवी की कुक्षिका से उत्पन्न हुई है। अब यहां उसका नाम मृगापुत्र रखा गया है। हे गौतम! पापी आत्मा जहां भी जाती है वहां पाप के प्रभाव से वह

स्वयं भी कष्ट पाती है और उसकी छाया जब दूसरों पर पड़ती है तो वे भी कष्ट भोगते हैं।

तो जब ईरवाई ठाकुर की आत्मा प्रथम नरक से निकल कर महारानी मृगादेवी के गर्भ में उत्पन्न हुई तो उसके आते ही महारानी के शरीर में भी बड़ी वेदना हुई जिसे वह सहन नहीं कर सकी। इतना ही नहीं परन्तु पापी जीव के गर्भ में प्रवेश करते ही महारानी अपने पति देव को भी अप्रिय और अमनोज्ञ लगने लगी। इस पापी जीव ने गर्भ में आते ही दाम्पत्य जीवन के प्रेम को अप्रेम में बदल दिया। एक समय रात्रि में असह्य वेदना के कारण रानी की निद्रा भंग हो गई। वह अपनी शैय्या पर बैठकर विचार करने लगी कि पहिले तो मैं राजा को मनोज्ञ, प्रियकारी और विश्वसनीय थी! वे मुझे कभी मन से भुलाते भी नहीं थे। परन्तु जब से मेरे गर्भ रहा है तभी से मैं राजा के लिए अमनोज्ञ, अप्रियकारी और अविश्वास पात्र बन गई हूँ। अब महाराज ने मुझे हृदय से निकाल दिया है। जबकि इस प्रकार का विपरीत व्यवहार होने लगा है तो अवश्य ही कोई न कोई पापी जीव मेरे गर्भ में आया है और उसीके पाप कर्मों की छाया मेरे ऊपर भी पड़ रही है जिसने मेरे सुख को भी दुख में परिवर्तित कर दिया है। अब राजा ने मेरे पास आना, प्रेमालाप करना और मेरा नाम लेना भी छोड़ दिया है। उनका सारा अनुराग भी मुझ से हट चुका है। इतनी नफरत होने पर वे मेरे साथ ऐशोआराम तो कर ही कैसे सकते हैं! अरे! मेरे जीवन में किसी प्रकार की कमी नहीं थी परन्तु इस गर्भस्थ पापी जीव के कारण ही हम दोनों के प्रेम के बीच भेद की दीवार खड़ी हो गई है। और जिसके कारण हम दोनों के बीच भेद पड़ा है तो उसे गर्भ में ही क्यों रहने दिया जाय। अरे! क्या ही अच्छा हो यदि यह गर्भ किसी औषधि के द्वारा सड़ जाय, गल जाय और मर जाय। इस जीव के नष्ट होते ही हम दोनों का दाम्पत्य जीवन पुनः सुख मयी बन जाएगा।

इस प्रकार महारानी मृगा देवी उक्त आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान को ध्याती हुई सुप्तावस्था को प्राप्त हो गई। जब वह प्रातःकाल उठी तो रात्रि में आए हुए मलीन विचारों को कार्यान्वित रूप में लाने के लिए उसने गुप्त रूप से उपाय भी बहुत किए परन्तु एक प्रयोग भी उस गर्भस्थ पापी जीव को नष्ट करने में कारगर नहीं हो सका। भाई! वह मर भी तो कैसे सकता था? क्योंकि वह पापी जीव अपने पाप कर्मों का फल भोगने के लिए लंबी आयुष्य लेकर जो आया था। अतएव वह जीव किसी दवा से भी गला नहीं, सड़ा नहीं और मरा नहीं। परन्तु इसके विपरीत उन प्रयोगों को करने मे रानी का ही शरीर निर्बल और निस्तेज हो गया। उसे अनिच्छा पूर्वक कष्ट भोगना पड़ा।

भाई! जब कोई पुण्यवान जीव माता के गर्भ में आता है तो वह– पूत के लक्षण पालने में नजर आने वाली कहावत चरितार्थ करके बताता है। वह स्वयं भी सुख प्राप्त करता है और माता को भी सब प्रकार के सुखों का अनुभव कराता है। उस गर्भस्थ जीव की एक माता भी अच्छी तरह परिचर्या करती हुई विपरीत आचरणों का पूर्ण रूप से ख्याल रखती है। परन्तु उस पापी जीव ने महारानी के गर्भ में आते ही उसे शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही कष्ट पहुंचाए।

उस मृगापुत्र के गर्भस्थ जीव को महारानी ने सड़ाने, गलाने और नष्ट करने के सभी उपाय कर लिए। परन्तु किसी औषधि से वह जीव गला-सड़ा या नष्ट नहीं हुआ। बल्कि महारानी का शरीर ही दुर्बल और निस्तेज होगया। वह गर्भस्थ जीव कष्ट भोगते हुए भी बड़ा होने लगा।

भाई ! यह शरीर नसों के जाल से बंधा हुआ है। जिनमें आठ नाडियां तो बड़ी होती है और भीतर बहने वाली होती हैं और आठ नाडियां बाहर बहने वाली होती हैं। इनके अलावा आठ-आठ नाडियां भीतर और अन्दर बहने वाली हैं। इस प्रकार कुल बत्तीस नाडियां प्रमुख होती है शरीर में ! तो उस गर्भस्थ बालक को बत्तीस नाडियों में से ही खून और पीप-रस्सी बहने लगे। और दो दो नाडियां कान, आंख और नाक में होती है तो उनमें से भी रक्त और पीप बहने लगा। यही नहीं परन्तु उस बालक को भष्मक रोग भी हो गया। उस रोग के कारण उसकी माता जिस पदार्थ का आहार करती तो वह अशुद्ध और विकृत हो जाता था। अब वह बालक गर्भ में खून का ही आहार करने लगा। महारानी कितना ही आहार कर लेती परन्तु उसको मालूम ही नहीं होता कि मैंने कितना खा लिया। तो यह भष्मक रोग होना भी एक प्रकार की बीमारी है। यद्यपि माता को भष्मक रोग नहीं था परन्तु गर्भस्थ बालक के पेट में उक्त रोग होने से उसका असर माता के शरीर पर पड़ता था फिर भी महारानी जैसे-तैसे उस कष्ट को भोगते हुए जीवन गुजारने लगी।

अब नौ मास परिपूर्ण होने पर किस प्रकार मृगापुत्र का जन्म होगा और महारानी किस प्रकार उस जन्म जात शिशु को मरवाने का प्रयत्न करेगी यह सब कुछ आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा।

ऋषभ भवन्तरी

भगवान ऋषभदेव के जीवन-चरित्र में मैं आप लोगों के समक्ष भगवान के पूर्व जन्मों के सम्बन्ध में जिक्र सुना रहा हूँ। भगवान

ऋषभदेव का जीव अपने ग्यारहवें भव में पुंडरगिरि नामक नगर में राजा वज्रसेन के यहां बड़े राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। वहां उनका नाम वज्रनाभि रखा गया। जीवानन्द वैद्य ने मुनिराज के शरीर को निरोग बनाया अतएव महान पुण्योदय से वह राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ और उसके पांचों मित्र भी पुण्य प्रभाव से इन्हीं के छोटे भाई बने। स्वयंप्रभा का जीव चक्रवर्ती सम्राट वज्रनाभि के यहां सारथी बन गया। इस प्रकार वे छः हों जीव मुनिराज को औषधिदान देने के कारण यहां आकर उत्पन्न हुए। वे सब आनन्द पूर्वक जीवन गुजारने लगे।

कालान्तर में राजा वज्रसेन ने अपने बड़े राजकुमार वज्रनाभि को राज्य सिंहासनारूढ़ करा कर भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली। चूंकि वे तीर्थङ्कर गौत्र उपार्जित करके आए थे अतएव उन्होंने चारों तीर्थों को स्थापना की और धर्म प्रचार करते हुए ग्राम, नगर, पुर, पाटन आदि जनपदों में विचरण करने लगे।

चक्रवर्ती सम्राट ने यद्यपि छः हों खंडों पर विजय प्राप्त करके अपने साम्राज्य को विस्तार कर लिया तदपि उनका प्रेम अपने भाइयों के प्रति वैसा ही बना रहा।

एक समय कालान्तर में तीर्थङ्कर वज्रसेन केवल ज्ञान प्राप्त कर पुष्कलावती में विचरण करते हुए पुनः पुंडरगिरि नगर के बाहर उद्यान में आकर विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना उक्त उद्यान के बनमाली ने आकर चक्रवर्ती वज्रनाभि सम्राट को दी। शुभ सूचना की खुशी में उक्त माली को सम्राट ने इतना पुरस्कार दिया कि वह धन उसकी सात पीढियों तक भी खाए खुटने वाला नहीं था। भाई! पुरस्कार भी खुशी के अवसर पर ही दिया जाता है।

इसके बाद चक्रवर्ती सम्राट ने चारों प्रकार की सेना सुसज्जित करवाई और अपने लघु भ्राताओं के साथ भगवान वज्रसेन के दर्शनार्थ उद्यान की ओर रवाना हुए। उद्यान के बाहर वे सब सवारी से नीचे उतरे। उन्होंने अपने हथियार वहीं रख दिए और सचित्त वस्तुओं से निर्लिप्त होकर वे भगवान के समवसरण में पहुँचे जहां भगवान वज्रसेन विराजमान थे। उन्होंने भगवान को विधिवत् वन्दन नमस्कार किया और धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए निश्चित स्थान पर बैठ गए। और जब भगवान के शुभागमन की सूचना नगर की जनता को मिली तो उन्होंने भी सोचा कि हमारे भूतपूर्व महाराज जो कि वर्तमान में तीर्थङ्कर पद से विभूषित हैं अतएव उनके दर्शन तो कर आवें। तो वे लोग भी सुसज्जित होकर भगवान के दर्शन करने, वाणी सुनने, सत्कार, सन्मान देने और सुखसाता पूछने की दृष्टि से उद्यान में आए। उस प्रजा ने भी भगवान को वन्दन नमस्कार किया और फिर धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए बैठ गई।

तदनन्तर भगवान वज्रसेन ने समवसरण में बैठी हुई जनता को धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। याद रक्खो! भगवान हमेशा धर्म कथा ही फर्माते हैं। वे विकथा नहीं करते हैं। साधुता की भूमिका में एक सच्चे साधु को सदैव धर्म कथा ही करने का भगवान का फर्मान है। यदि साधु विकथा में अपने पवित्र जीवन को बिताता है तो वह भगवान तीर्थङ्करों की आज्ञा की अवहेलना करते हुए अपने और दूसरों के जीवन को रसातल की ओर ले जाने का अधर्म मय कार्य कर रहा है। अतएव साधु जीवन में रहते हुए प्रत्येक का कर्तव्य है कि दर्शनार्थी के साथ धर्म कथा ही करें।

तो भगवान ने धर्म कथा फर्माते हुए कहा कि हे भव्यात्माओं! मानव जीवन अनन्त पुण्योदय से प्राप्त होता है। यदि इस जीवन में

श्रेष्ठ कार्य करते हुए अपनी जिंदगी गुजारोगे तो भविष्य में तुम्हारी आत्मा का विकास होगा और पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि एक नीतिकार ने भी कहा है कि —

अवसर रहते नहीं किया, यदि प्रयत्न प्रभु हेत।
फिर पछताए होत क्या, जब चिड़ियां चुग गई खेत ॥

भाई ! जो सुअवसर तुमको जीवन सुधारने के लिए मिल गया है यदि उसमें प्रभु भक्ति और सदाचार का पालन नहीं किया तो प्राप्त सुअवसर के लाभ से वंचित रहोगे और पश्चाताप ही अवशिष्ट रह जाएगा। जैसे दृष्टान्त के रूप में कहा जाता है कि जब खेत में फसल पकी हुई थी परन्तु कोई महमान तब तक नहीं आया और जब फसल बाजार में बिक चुकी या नष्ट होगई तब महमान किसी जमींदार के यहां आए। परन्तु ऐसी परिस्थिति में उन महमानों को वहां से क्या प्राप्त हो सकता है ! अर्थात् —उन्हें वहां से भूखे ही रवाना होना पड़ेगा। हां ! खेत में उन्हें मिट्टी के ढेले तो अवश्यमेव मिल सकते हैं।

तो भगवान भी आगन्तुक परिषद् को फर्मा रहे हैं कि तुम्हें जो मानव जीवन मिल गया है तो इस शुभ अवसर को हाथ से मत जाने दो। यदि इस जीवन में साधु धर्म का पालन नहीं हो सकता हो तो श्रावक धर्म को तो अवश्य ही धारण कर लो। श्रावक-धर्म का पालन करने से भी तुम्हारी आत्मा निर्मल बन जायेगी और जीवन का ध्येय भी सफल हो जायेगा।

अरे ! जरा उस दुखमयी अवस्था पर भी तो विचार करो जब कि एक दिन तुम लोग अपनी-अपनी माताओं के गर्भ में उल्टे चिमगादड़ की तरह लटके हुए थे। तुम्हारे हाथ तो नीचे थे और

पैर ऊपर थे। उस समय तुम उस बंधन में बंधे हुए और असीम वेदना का अनुभव करते हुए अपने अपने मन में विचार करते थे कि हे भगवन ! मैंने पूर्व जन्म में दुष्कर्म किए जिनके फल स्वरूप माता के गर्भ रूपी काल कोठडी में आकर उत्पन्न होना पडा और उल्टा लटक कर दुख देखना पड़ रहा है। परन्तु इस बार जो मैं सुख-शांति पूर्वक बाहर निकल जाऊंगा तो हे भगवन् ! भविष्य में मैं आपकी भक्ति में लीन रहते हुए वह शुभ कार्य करूंगा जिसमें पुनः इस जेल खाने में दुःख पाने की नौबत ही नहीं आने पाएगी।

परन्तु हे भव्यात्माओं ! तुम्हारे इस प्रकार के शुभ विचार तब तक ही रहे जब तक कि माता के गर्भ में कष्ट पाते रहे। परन्तु ज्योंही कष्ट पाने की अवधि समाप्त हुई और तुम उस जेलखाने से बाहर आए तो बाहर आते ही अपनी प्रतिज्ञा को भूल गए। तुमने भगवान का स्मरण और धर्म कार्य को भी भुला दिया। किन्तु इस प्रकार की की गई प्रतिज्ञा का हाल तो वही हुआ जैसे कि ज्ञानी पुरुषों ने एक दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहा है कि:—

चोर बंध्यो इम चिंतवे, जो छूटूं इक बार,
अब के चोरी ना करूं, लाऊं ईंधन, चार।
लाऊँ ईंधन, चार, दान हाथों से देस्यूं,
सबर करी घर मांय, मौज में बैठ्यो रहसूं॥
छूट्यो ने विसरी गयो, फिर भी वही विचार,
फेर जासी बापड़ा, थारे वहांहिज पडसी मार॥

जैसे किसी चोर ने किसी धनाढ्य के यहां चोरी की परन्तु वह पकड़ा गया। सिपाही उसे जेलखाने में ले गया और उसे बहुत बुरी तरह से पीटा और उसे नियमानुसार पांच साल के लिए जेलखाने में डाल दिया। अब वह अपना जीवन कष्ट पाते हुए वहां गुजारने लगा।

वह दुख प्राप्त करते हुए अब यही विचार करता है कि यदि मैं यहां से मुक्त हो जाऊँ तो आयंदा जीवन में कभी चोरी करने का नाम भी नहीं लूंगा और अपनी जिंदगी एक नगर के सुन्दर नागरिक की तरह गुजारूंगा। उसकी सुन्दर भावना भी एक दिन फलवती हुई। उस नगर के राजा के यहां एक दिन कोई खुशहाली का प्रसंग आया। उस खुशी के मौके पर राजा ने जेलर को हुक्म दिया कि आज पचास कैदियों को जेलखाने से रिहा कर दो। जेलर ने पचास कैदियों को शिक्षा देते हुए कि आयंदा तुम अपने जीवन में फिर ऐसा दुष्कर्म मत करना जिससे तुम्हें फिर जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ें रिहा कर दिया। उन पचास कैदियों में इस चोर का नम्बर भी आ गया।

वह चोर भी मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और जेलर से यह कहते हुए कि जेलर सा० ! अब मैं अपने जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं करूंगा जिससे पुनः आप श्रीमान् के दर्शन करने पड़े। इस प्रकार वह अपनी अवधि सम्पूर्ण होने से पहिले ही जेल से छूट कर घर पर आ गया। वह कुछ दिन तो ठीक ढंग से अपना जीवन गुजारता रहा परन्तु प्रसंग आते ही वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गया। उसने फिर किसी सेठ के यहां चोरी करली। वह पुनः पकड़ लिया गया और जेल के सींकचों में बन्द कर दिया गया। कहिए ! अपनी की हुई प्रतिज्ञा को विसरा देने के कारण अब उसे और अधिक समय के लिए यातनाएं भोगनी पड़ेंगी।

ठीक इसी प्रकार की आप लोगों की भी हालत है। आप लोगों ने भी गर्भावस्था में भगवान से बहुत वायदे किए थे परन्तु उस जेलखाने से मुक्त होते ही अपने वायदों को भूल गए और संसार में रहते हुए फिर झूठ, चोरी, अनीति, अत्याचार विषयभोगादि में अपने जीवन को गुजार रहे हो। तो फिर याद रखना ! वायदा खिलाफी का

दुष्फल भी भविष्य में आप लोगों को ही भोगना पड़ेगा। आपको फिर जेलखाने में कष्ट भोगना पड़ेगा।

भाई! मैं भी आप लोगों से कहूँगा कि आप लोगों ने भी जो रकम उदारता पूर्वक शुभ कार्य के लिए लिखाई है तो उसमें वायदा खिलाफी मत करना। और जो सज्जन आपकी दूकान पर आवें उन्हें बार बार नहीं फिराते हुए पहिली बार में ही उक्त रकम देने का ख्याल रखना। क्योंकि जैसा ख्याल आप एक ग्राहक का रखते हैं और आए हुए ग्राहक को अपनी दूकान में वह माल नहीं होते हुए भी दूसरे की दूकान से लाकर दिखाते हैं और सौदा पटाते हैं तो इसी तरह धर्म कार्य में भी वैसा ही दिल रखना चाहिए। भाई! आज दे देते हो तब भी देना है और कल दोगे तब भी तुमको ही देना है! इसलिए शुभ कार्य में शीघ्रता से हाथ बंटाना चाहिए क्योंकि वक्त पर नाणा तो मिल जाएगा परन्तु टाणा नहीं मिलेगा। जबकि इस टाणे के लिए तो दुनिया लाखों रुपए खर्च कर देती है।

तो तीर्थङ्कर भगवान भी यही उपदेश दे रहे हैं कि यह मानव जीवन अनमोल है। यह जीवन बार बार मिलने वाला नहीं है। हे भव्य जीवों! तुम जिन सांसारिक पदार्थों पर अपनी दृष्टि जमाए हुए हो ये सब अनित्य हैं। ये भी सब एक दिन नष्ट होने वाली हैं। इस प्रकार भगवान ने परिषद् को संसार के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन कराया।

भगवान के धर्मोपदेश को श्रवण कर चक्रवर्ती सम्राट तथा उनके पांचों भाइयों को परम वैराग्य उत्पन्न हो गया। परिषद् के प्रस्थान करने के बाद उन्होंने भगवान को हाथ जोड़ कर अर्ज की कि हे भगवन्! आपकी वैराग्य मयी वाणी सुनकर हमको वैराग्य हो गया है अतएव हम सब घर का भार अपने पुत्रों के कंधों पर डाल

कर आपके समीप दीक्षित होने की भावना रखते हैं। उन छः ही पुत्रों की भावना को सुनकर भगवान वज्रसेन ने भी फर्मा दिया कि हे देवानुप्रिये! जैसा तुम लोगों को सुख उपजे वैसा करने में प्रमाद मत करो।

इस प्रकार भगवान को वन्दन नमस्कार तथा गुणानुवाद करते हुए सम्राट चक्रवर्ती अपने भाईयों के साथ स्व स्थान को लौट आए। घर आकर उन्होंने अपनी गृहस्थी का भार अपने अपने पुत्रों को सौंपकर पुनः भगवान के पास आकर दीक्षा धारण करली।

भाई! एक तरफ तो चक्रवर्ती सम्राट हैं जिन्होंने अपने छः खंड के वैभव को नाक के मैल की तरह परित्याग कर भगवती दीक्षा धारण करली। जबकि दूसरी तरफ आप लोग भी हैं। आपके पास तो नगण्य सा वैभव है परन्तु आप संसार वैभव में जौंक की तरह चिपके हुए हैं और उसे त्यागना तो दूर की बात है परन्तु त्यागने की बात भी अच्छी नहीं लगती। परन्तु मैं तो आप से घर छोड़ने की तो बात भी नहीं करता हूँ। मैं तो आप से इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप लोगों को सौभाग्य से यह सुअवसर मिल गया है तो आप एक दो घन्टे तो अवश्य ही दूकानदारी से फुर्सत लेकर यहां धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए आया करो। परन्तु खेद का विषय है कि आपको केवल एक दो घन्टे का त्याग भी नहीं सुहाता। जब आप से एक दो घन्टे की दूकानदारी भी छूटना मुश्किल है तब राज्य का परित्याग करना तो बड़ा मुश्किल काम है। परन्तु जिस भव्यात्मा के हृदय में वैराग्य भावना आ जाती है तो वह अवश्यमेव त्याग कर सकता है। (यह उपदेश सुनते ही अनेक भाइयों ने व्याख्यान के समय अपनी अपनी दूकानें बन्द रखने की प्रतिज्ञा ली।)

भाई ! त्यागी महापुरुष के मुखारविन्द से निकला हुआ एक एक शब्द श्रोता के हृदय पर असर किए बिना नहीं रहता। तो चक्रवर्ती सम्राट वज्रनाभि ने भी जब तीर्थङ्कर भगवान वज्रसेन जैसे राज्य का परित्याग कर साधु बनने वाले महापुरुष के मुखारविन्द से उक्त धर्मोपदेश श्रवण किया तो उनके मुख से निकला हुआ एक एक वचन उन श्रोताओं के हृदय पर असर कर गया। वे वैराग्य रस में सराबोर हो गए और उन्होंने भगवान के पास दीक्षा धारण करली।

इसीलिए मैं भी आप लोगों से कह रहा हूँ कि यदि आप भी वैराग्य भावना सहित जीवित दशा में अपनी सम्पत्ति का त्याग करेंगे तब तो श्रेष्ठ बात समझी जायेगी और उस त्याग का भी कुछ महत्व समझा जायगा अन्यथा मरकर तो सबको छोड़ना ही पड़ेगा। परन्तु इस छोड़ने का कोई अर्थ सिद्ध नहीं होगा। इसलिए हृदय में सच्चे त्याग की भावना रखो।

हां तो, अपने पांचों भाइयों के साथ चक्रवर्ती सम्राट वज्रनाभि ने भगवान के पास दीक्षा अङ्गीकार करके अपना समस्त जीवन गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया। वे अपने तीर्थङ्कर गुरु के आदेशानुसार जीवन व्यवहार को चलाने लगे। उनके जीवन सम्बन्धी तमाम कार्य जैसे खाना, पीना, उठना, बैठना, आना जाना वगैरह सब कुछ गुरु की इंगित चेष्टा के आधार पर होने लगे। परम विनयवान शिष्य के अनुसार उनका जीवन गुजरने लगा।

भाई ! स्व० पूज्य मन्नालालजी म० की सेवा में स्व० तपस्वी बालचन्द्रजी म० रहते थे। परन्तु वे अपना प्रत्येक दैनिक कार्य पूज्य श्री की आज्ञानुसार ही करते थे। सेवा का नाम तो सरल है परन्तु सेवा का मौका आने पर सेवा करना उतना ही मुश्किल है। इसी

प्रकार त्याग करना तो आसान है परन्तु सेवा करना नितान्त कठिन है। हरेक व्यक्ति सेवा भी नहीं कर सकता।

भाई ! तीर्थङ्कर भगवान भी ऐसे ही नहीं बन गए ! उन्होंने भी पूर्व जन्मों में सेवा धर्म को जीवन में उतारा था तब कहीं उन्होंने तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति की।

तो वे छ:हों भव्यात्माएँ भी अपने तीर्थङ्कर भगवान की सेवा में रहते हुए जिधर भी महि मण्डल में विचरण करते हैं वहीं लोगों में धर्म प्रचार करते हुए अपने जीवन को सफल बनाने लगे। भाई ! एक साधक के लिए धर्म प्रचार के अतिरिक्त दूसरा धर्म कार्य भी क्या हो सकता है। उसने अपने समस्त जीवन क्षणों का केवल धर्म प्रचार के लिए ही उत्सर्ग किया है। तो किसी कवि ने साधु जीवन का प्रशंसा करते हुए कहा है कि:—

साधु, नदी अरु मेहला, चले भुजंगी चाल।
जिण-जिण शेरी नीकले, त्यां-त्यां करे निहाल॥

और भी कहा है—

सरवर, तरुवर, संतजन, चौथो वूठो मेह।
परोपकार के कारणे, चारों धारी देह॥

कवि कहता है जैसे सरोवर पिपासों की पिपासा शान्त करता है, वृक्ष अपने फलों द्वारा पथिकों की क्षुधा का निवारण करता है और ग्रीष्म ऋतु में रास्ते की थकावट से सान्त्वना प्रदान करता है, काले-काले पानी से भरे हुए बादल सूखी हुई खेती को हराभरा कर जग-जीवों का परोपकार करते हैं वैसे ही संत महापुरुषों के जीवन का एक एक क्षण भी दूसरे के उपकार में व्यतीत होता है। जैसे वे सब

अपना अपना कष्ट भूल कर भी दूसरों का उपकार करते हैं वैसे ही संतजन भी कष्ट उठाकर दूसरों को उपदेश देकर भव्यात्माओं को आवागमन के चक्कर से छुड़ाकर आत्मोद्धार कर देते हैं। उनका जीवन प्राणि मात्र की रक्षा करने के लिए और दूसरों का हित करने के लिए होता है।

भाई! तीर्थङ्कर भगवान की हितकर शिक्षा तो अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही विचारों वाले व्यक्तियों के लिए समान रूप से होती है। उनका सदैव यही उपदेश होता है कि हे भव्यात्माओं! "स्वयं-जीओ और दूसरों को भी जीने दो।" अर्थात्—जैसा जीवन तुमको प्रियकारी है वैसा ही दूसरों को भी जीवन प्यारा लगता है। अतएव किसी भी प्राणी को जीवन से मुक्त मत करो। क्योंकि जब तुम किसी को जीवन दान देने का अधिकार नहीं रखते तब तुम्हें किसी के जीवन-हरण करने का भी क्या अधिकार है! परन्तु आज का मानव केवल अपने जीवन की तो परवाह करता है, अपने सुख-दुख का और अपनी भूख प्यास की तो परवाह करता है परन्तु दूसरे प्राणियों के जीवन की, सुख दुख और भूख-प्यास की उसे तनिक भी परवाह नहीं रहती। यहां तक कि अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए और अपने रसास्वादन के लिए वह निर्बल, मूक और पराधीन प्राणियों के प्राण हरण करते हुए भी संकोच नहीं करता। परन्तु भगवान ने तो स्पष्ट रूप से श्री मद्दश-वैकालिक—सूत्र के छठे अध्ययन की ग्यारहवीं गाथा में फर्माया है कि—

सव्व जीवावि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणि वहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंतिणं॥

अर्थात्—जगत के सभी प्राणी अपने-अपने शरीर में रहते हुए जीने की अभिलाषा करते हैं। परन्तु मरने की कोई भी इच्छा नहीं

करता। तो इसी सिद्धान्त के दृष्टिकोण से एक साधक साधु जीवन धारण करने के पश्चात् छः काय के जीवों को अपनी तरफ से अभय-दान देता है। और सभी के द्वारा उन प्राणियों की रक्षा हो सके इसके लिए व्याख्यान सभा में धर्मोपदेश देता है।

यद्यपि संसार व्यवहार की भाषा में तो हम किसी भी प्रकार के दुख से आतंकित, पीड़ित या व्यथित व्यक्ति के मुंह से ये वचन कहते हुए सुनते हैं। हे भगवन! "इस दुख को पाने से तो मौत अच्छी है। हे भगवान! मुझे मौत देदे ताकि मैं इस दुःख से मुक्त हो जाऊँ।" परन्तु! भाई! इतने से शब्द कहने मात्र से मृत्यु का आलिंगन नहीं कर लिया जाता है। परन्तु जब मौत सामने आ जाती है तो उससे दूर भगाने की कोशिश करता है।

जैसे किसी गांव में एक बुढ़िया रहती थी। वह अत्यधिक गरीब होने के कारण थोड़ा सा परचून सामान घर में रखकर दूकानदारी करती थी। इस प्रकार वह बुढ़िया अपना जीवन निर्वाह करती थी। वह अपनी वृद्धावस्था और गरीबी के असह्य कष्ट को सहन नहीं करने के कारण लोगों से कहती रहती कि भाई! अब तो मैं जीवन से घबरा गई हूँ। इस जिंदगी से तो मौत भली है। परन्तु क्या करूँ! मुझ दुखियारी को तो मौत भी नहीं आती। इस प्रकार वह अपने हृदयगत विचारों को जबान के द्वारा उच्चारण करती रहती और ग्राहकों को सौदा भी देती रहती।

परन्तु एक समय की बात है कि वह अपनी कुटिया में बैठी हुई चरखा चला रही थी। यह वर्षा का समय था। वर्षा भी जोर-दार हो रही थी। बरसात का पानी उसके कच्चे मकान में चू रहा था। ऐसी परिस्थिति में वह बुढ़िया परेशान होकर भगवान से

प्रार्थना कर रही थी कि हे भगवान! तूने सबको तो संभाल लिया परन्तु मुझ दुखियारी को अभी तक नहीं संभाला। हे भगवन्! मुझे भी संभाल ले तो मैं इस बुढ़ापे के दुख से हमेशा के लिए मुक्त हो जाऊँ। परन्तु बुढ़िया की इस प्रकार की प्रार्थना वास्तव में सच्चे हृदय से नहीं थी। अभी तक मृत्यु का भय उसके सामने नहीं आया था अतएव तब तक के लिए ही उक्त शब्द भगवान की सेवा में रखे जा रहे थे।

परन्तु उसकी वाणी साकार रूप में परिणत हुई। उसी वक्त वह बिजली के प्रकाश में क्या देखती है कि नाली में से भयंकर सर्प निकल कर उसकी ही ओर आ रहा है। यह भयानक दृश्य देखते ही वह बुढ़िया भगवान से अपनी मौत की प्रार्थना करना तो भूल गई परन्तु अपनी जान बचाने के लिए चिल्लाने लगी कि—"बचाओ! बचाओ! सांप-सांप! मरी मरी!" और इस प्रकार चिल्लाती हुई वह तुरन्त ही घर से बाहर निकल कर लोगों को इकट्ठा करने लगी।

बुढ़िया की चिल्लाहट सुनकर आस-पास के दो चार पड़ौसी भी इकट्ठे हो गए। उन्होंने बुढ़िया से पूछा कि मांजी! क्या आफत आ गई है जो तुम ऐसी बारिश में चिल्ला रही हो? उसने कहा कि—

दुख की दाझी डोकरी, कहे राम मुझ मार।
घर में कालो निकल्यो, भाग निकसी बाहर॥

तब बुढ़िया ने कहा कि भाई मेरे घर में सांप निकल आया है। वह मुझे काट खाएगा। इसी डर से मैंने चिल्लाकर तुम लोगों को

इकट्ठा किया है। यह सुनकर वे लोग कहने लगे कि मां जी ! तुम तो हमेशा कहती रहती थीं न ! कि हे राम ! मैं तो बहुत दुखयारी हूँ। मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती। परन्तु आज जब साक्षात मौत तुम्हें लेने आई है तब तुम डर कर भागती हो और चिल्लाती हो। तुम्हें तो हर्ष सहित उसका आलिंगन करना चाहिए था।

यह सुन बुढ़िया बड़ी शर्मिन्दा हुई और फिर उसने अपने मुंह से ऐसे शब्द कभी नहीं कहे।

तो इस दृष्टान्त द्वारा समझाने का यही आशय है कि संसार के सभी प्राणी जीने की अभिलाषा करते हैं, मरने की कोई भी इच्छा नहीं करता। इसलिए संसार के प्राणियों के साथ आत्मवत् व्यवहार करो। किसी को भी मन, वचन और कर्म द्वारा तकलीफ पहुँचाने का प्रयत्न न करो।

इस प्रकार वे छःहों मुनिराज इस महिमण्डल में विचरण करते हुए जनसमुदाय को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अकिंचनता का सदुपदेश देते हुए लोगों को सदाचार की ओर प्रवृत्त कराते हैं। ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि मानवता प्राप्त करने के लिए उक्त पांचों व्रतों का जीवन में आचरण करो। जो इन महान गुणों को जीवन में धारण करेंगे उनकी आत्मा उन्नत होकर एक दिन मोक्ष की अधिकारिणी बन जायेगी।

देखो ! एक तरफ तो स्वयं तीर्थङ्कर भगवान जैसे गुरु हैं और

दूसरी तरफ उन्हें शिष्य भी चक्रवर्ती सम्राट जैसे छः खंडो का परित्याग करने वाले मिले। तो जिसने जितना बड़ा त्याग किया होता है उसका श्रोताओं के हृदय पर उतना ही गहरा असर पड़ता है।

इस प्रकार जो व्यक्ति अपनी आत्मा में सेवा भावना को अपनायेंगे और जीवन में त्यागवृत्ति को धारण करेंगे वह इस लोक तथा परलोक में सुखी बन जाएँगे।

बैंगलर (केन्टोन्मेन्ट)
ता० ७-८-५६

:: जैसी करनी वैसी भरनी ::

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोष मेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांतरेपि ॥



इस आत्मा को संसार में मानव जन्म बड़े ही पुण्योदय से प्राप्त होता है। जब अनेक भवों में यह आत्मा शुभ कर्म करती है तब उसके फल स्वरूप यह मनुष्य देह धारण करने के काबिल बनती है। परन्तु फिर भी करनी करने में कसर रह जाती है तो यह आत्मा मनुष्य के शरीर को धारण करके भी अनेक कष्टों को भोगती हुई जीवन को समाप्त कर देती है। जो प्रकृष्ट पुण्य संचित करके मानव-जीवन को प्राप्त करता है उसे ही यहां सब प्रकार के सुख साधनों का खजाना मिल जाता है और जीवन में सच्चे आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इस संसार में सुख दुख की प्राप्ति होना पूर्व जन्म कृत शुभाशुभ करनी पर ही आधारित है। यदि पूर्व जन्म में शुभ करनी की है तो इस जन्म में आपको सुख की प्राप्ति हो जायेगी, और अशुभ करनी की है तो इस जन्म में भी दुख के बोझ से नीचे दबते

ही जाओगे। तो यह सब अपनी अपनी करनी का खेल है। अपने द्वारा किए हुए शुभा शुभ कर्मों का विपाक मनुष्य को भोगना अवश्यं भावी है। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी को भी अपनी अशुभ करनी का फल भोगना ही पड़ा। तब अन्य पामर प्राणियों की तो बात ही क्या कही जा सकती है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हे भव्यात्मा! तू शुभ करनी करने में कभी आलस्य मत कर। इसका भविष्य में तुझे मीठा फल प्राप्त होगा। यदि अशुभ करनी करने में प्रवृत्ति की तो उसका कडवा फल भी तुझको ही भोगना पड़ेगा। तो अशुभ से अपने आपको दूर रखते हुए शुभ में प्रवृत्त कर।

यहां भक्तामर के उक्त इक्कीसवें श्लोक में आचार्य श्री मानतुंग भगवान ऋषभदेव की गुण स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि हे नाथ! मैं अन्य हरि हरादिक देवों को देखना ही अच्छा मानता हूँ। जिनके देखने से मेरा हृदय आप में ही संतोष को प्राप्त करता है। परन्तु आपको देखने से क्या? जिससे कि पृथ्वी में कोई अन्य देव दूसरे जन्म में भी मेरे मन को हरण नहीं कर सकता।

तो उक्त श्लोक में आचार्य महाराज के कहने का यही आशय है कि आंखों का स्वभाव देखने का है। संसार में अनेकानेक दृश्यमान पदार्थ है और वे सब आंखों के सामने होने से दृष्टिगत होते ही हैं। तो इस संसार में राम, कृष्ण, महादेव आदि देवों की मूर्तिएं भी हैं मन्दिरों में और वे सब देखने योग्य और जानकारी करने योग्य होती हैं। परन्तु जहां तक देखने का प्रश्न है वहां तक तो कोई आपत्ति नहीं आने पाती। हां! आपत्ति तो तभी आ सकती है कि उन्हें देख कर हम उनको ही सर्वस्व मानने लगें। लेकिन हम जब आपके मुखारविन्द की शान्त छटा के दर्शन करते हैं तो हमारे हृदय में सच्चे आनन्द की अनुभूति होने लगती है। जो आनन्द आपको देखने से

प्राप्त होता है वह अन्यान्य हरि हरादिक देवों के देखने से नहीं होता क्योंकि दूसरे देव राग-द्वेषादि दोषों से भरे हुए हैं जबकि आपको हम परम वीतराग अवस्था में देखते हैं। तो आपके दर्शन हो जाने के पश्चात् फिर संसार का कोई देव हमारे मन को हर नहीं सकता। अर्थात्—दूसरों को देखने से तो आप में संतोष होता है, यह लाभ है और आपको देख लेने के पश्चात् हमारा किसी भी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है (यहां व्याज निन्दा और व्याज स्तुति अलंकार में भावना व्यक्त की गई है।)

अरे! जिस व्यक्ति को चिंतामणि रत्न प्राप्त हो जाय वह दूसरे कंकर को क्यों लेगा! इसी प्रकार जिसे तीर्थङ्कर भगवान सदृश चिंतामणि रत्न के दर्शन हो जांय तो वह दूसरे हरिहरादिक देवों के दर्शन तथा उपासना करने की मन में क्यों इच्छा करेगा?

ऐसे सर्व गुणालंकृत भगवान ऋषभदेव इस जगतीतल पर थे। उन्हीं भगवान को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।



दुख-विपाक-सूत्र

उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान ने संसार के कल्याणार्थ धर्मोपदेश दिया। उनके द्वारा फर्माए हुए उपदेश को निकटवर्ती गणधरों ने हृदयंगम किया और उसी का सूत्र रूप में गुंथन करके भव्यात्माओं का मार्ग प्रदर्शन किया। वर्तमान में वही द्वादशांगी रूप वाणी जगज्जीवों का कल्याण कर रही है। यहां उसी वाणी में से ग्यारहवें अंग विपाक सूत्र के सम्बन्ध में आपके समक्ष कहा जा रहा है।

दुःख विपाक–सूत्र के प्रथम मृगापुत्र के अध्ययन के विषय में जम्बूस्वामी द्वारा जिज्ञासा प्रकट किए जाने पर भगवान आर्य सुधर्मा स्वामी ने फर्माया कि हे जंबू ! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने निर्वाण होते समय फर्माया कि हे गौतम ! यह मृगापुत्र ही अपने ईरवाई ठाकुर के भव में अशुभ करनी करने के फलस्वरूप अचानक सोलह रोगों का शिकार बन गया। अनेक उपचार किए जाने के बावजूद भी वह निरोग न हो सका। वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याता हुआ तथा शारीरिक कष्ट भोगने के पश्चात् काल धर्म को प्राप्त कर पहिली नरक में जाकर उत्पन्न हुआ। वहां नारकीय यातनाएँ सहन करने के पश्चात् वह ईरवाई ठाकुर यहां आकर मृगापुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है।

यहां एक राज घराने में उत्पन्न होने पर भी अपनी अशुभ करनी के कारण उसे केवल बिम्ब रूप शरीर मिला। उसे आंख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि अंगोपांग अपूर्ण रूप में प्राप्त हुए। यह दशा देख महारानी मृगावती अपने जन्मजात शिशु को देखकर डर गई और किंकर्तव्य विमूढ़ सी हो गई। उसने विचार किया कि इसी बच्चे ने गर्भावस्था में रहते हुए मुझे मेरे प्राण नाथ के प्रेम से विमुक्त कराया और अब भी इस रूप में जन्म लिया है। इसके शरीर पर केवल इन्द्रियों के चिन्ह मात्र ही हैं। अतएव अब मुझे क्या करना चाहिए।

जब महारानी के मस्तिष्क में कोई सीधा और सरल उपाय नहीं आ सका तो उसने अपनी धायमाता को बुलाया जिसने महारानी को बचपन में दूध पिलाया था। महारानी ने धायमाता के समक्ष अपनी समस्या रखकर उसके हल के विषय में पूछा। महारानी ने कहा कि देखो ! इस बच्चे के कारण ही यह सारा दुख उत्पन्न हुआ है अतएव

मेरा विचार तो यह है कि इस बच्चे को ले जाकर ऊखेडी पर फैंक आओ।

जब धाय माता ने महारानी के मुंह से उक्त प्रस्ताव सुना तो उसने प्रत्यक्ष में तो महारानी से तहत वचन कहा परन्तु उसने सोचा कि इस बच्चे को ऊखेड़ी पर फैंकने से पहिले महाराज की आज्ञा ले लेना अनिवार्य है। अतएव वह सीधी विजय क्षत्रिय राजा के महल में पहुँची। उसने दोनों हाथ जोड़ कर महाराज का अभिवादन किया और निवेदन करने लगी कि महाराज! महारानी मृगावती ने नौ मास पूर्ण होने पर एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया है जो जन्म से अंधा, गूंगा, बहरा और हाथ पैरों से रहित है। वह केवल मांस का पिण्ड मात्र ही है। इस प्रकार के पुत्र को देखकर महारानी साहिबा सहम गई और नाना प्रकार की मन में कल्पनाएं करने लगीं। उन्होंने मुझे बुलाकर आज्ञा प्रदान की है कि इसे एकान्त में ले जाकर ऊखेड़ी पर फैंक आओ। परन्तु उक्त अमानुषिक कार्य करने से पूर्व आपकी आज्ञा लेना अनिवार्य समझकर आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ। अब आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा किया जाय!

उक्त बात धाय माता के मुंह से सुनकर महाराज भी विचार मग्न हो गए और सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए? परन्तु जब उन्हें इस विषय में कोई प्रकाश नजर नहीं आया तो वे स्वयं वहां से रवाना होकर महारानी के पास आए। उन्होंने महारानी से कहा—प्रिये! तुमने जो बच्चे को ऊखेडो में फिकवाने का प्रस्ताव रखा है तो उस विषय में मैं तुमसे कुछ कहने आया हूँ। यद्यपि यह बच्चा फिकवाने योग्य ही है परन्तु दीर्घ-दृष्टि से विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह प्रथम गर्भ से उत्पन्न हुआ बच्चा है। अतएव इसे यदि इस प्रकार फिकवा कर नष्ट करवा दिया गया तो

भविष्य में तुम्हारे जितने भी गर्भ रहेंगे वे स्थिर नहीं रह सकेंगे। दूसरे इस बच्चे को फिकवाने में तुम्हारी और मेरी भी बदनामी होगी। अतएव बदनामी एवं बाल हत्या के पाप से बचने के लिए यही श्रेष्ठ है कि इसे गुप्तावस्था में भूमि घर में रखकर इसकी प्रतिपालना की जाय। क्योंकि ऐसा करने से इस बच्चे का जीवन भी बच जायेगा और हत्या के पाप से भी बच जायेंगे। और इस बच्चे के जन्म का रहस्य हम तीनों के अतिरिक्त किसी को ज्ञात भी नहीं है। अतएव इसे गुप्त स्थान में रखकर पालन पोषण करो ताकि भविष्य में तुम्हारे गर्भ स्थिर रह सकें।

भाई! यदि कोई नेक सलाह देता है तो उसे मानना भी फर्ज हो जाता है। इसी सिद्धान्त से महारानी मृगावती ने अपने पतिदेव के वचनों को तहत प्रमाण कहते हुए उसे गुप्त भूमि घर में रख दिया और उसको अन्न पानी देती हुई पालन-पोषण करने लगी।

इस प्रकार हे गौतम! महारानी मृगावती उस मृगापुत्र का पालन पोषण करती हुई विचरण कर रही है। देखो! इस मृगापुत्र ने ईरवाई ठाकुर के भव में अशुभ करनी की. लोगों को सताया, उन पर जुल्म किया और अपने जीवन में अत्यानन्द का अनुभव किया। उसी के फलस्वरूप वह पाप यहां इसके उदय में आया और उसीके कड़वे फल उसे यहां भोगने पड़ रहे हैं। उसने हंस-हंस कर वहां पाप कर्म बांधे थे परन्तु अब रो-रो कर भी छूटने वाले नहीं हैं।

चूंकि भगवान महावीर तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे अतएव उन्होंने मृगापुत्र के केवल भूत और वर्तमान के सम्बन्ध में ही नहीं कहा परन्तु उसके भविष्य के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाल देना उचित

समझा। जो पूर्ण होते हैं वे पूरा निर्णय देते हैं। परन्तु जो अपूर्ण होते हैं वे पूरा निर्णय देने में समर्थ नहीं होते।

तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मृगापुत्र के भविष्य का दिग्दर्शन कराते हुए फर्माया कि हे गौतम! यह मृगापुत्र यहां अपने बत्तीस वर्ष के परम आयुष्य को कष्ट मयी जीवन में भोगकर तथा काल समय काल करके इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में वैताढय गिरि की कन्दराओं में सिंह के रूप में उत्पन्न होगा। यहां भी इसका जीवन अधर्ममय कार्य में ही व्यतीत होगा। क्योंकि एक सिंह का जीवन मांसाहार पर निर्भर है और उसे मांस की प्राप्ति के लिए हमेशा निर्बल पशुओं का शिकार करना पड़ता है। वह अपनी आजीविका दूसरों को धोखा देकर तथा दूसरों के प्राण विसर्जन करके प्राप्त करता है। अतएव ऐसी क्रूर जाति में पैदा होने के कारण यह यहां भी बहुत से पाप कर्मों का उपार्जन कर लेगा।

उन पापकर्मों से अपनी आत्मा को भारी बनाकर आयुष्य पूर्ण करके प्रथम नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न होगा। वहां एक सागरोपम की स्थिति तक दारुण दुखों को सहन करते हुए अपनी अवधि समाप्त करके फिर यह सर्प जाति में जहरीले सर्प के रूप में उत्पन्न होगा।

सर्प जाति में भी महान पाप कर्मों का संचय करके यह दूसरी नरक में तीन सागरोपम की आयुष्यवाला नारकी बनेगा। यहां भी यह महान कष्टों को भोगेगा। फिर यह यहां से आयुष्य पूर्ण करके पक्षी की योनि में उत्पन्न होगा। पक्षी की अवधि समाप्त करके यह पुनः सिंह जाति में क्रूर सिंह के रूप में उत्पन्न होगा।

शेर बनकर और पाप कर्मों का संचय करके यह यहां से आयुष्य पूर्ण करके चौथी नरक में जाकर उत्पन्न होगा। वहां से भीषण कष्टों को सहन करके यह पुनः सर्प बनेगा। अपने सर्प के भव के आयुष्य को पूर्ण करके यह पांचवीं नरक के नेरिए के रूप में उत्पन्न होगा। वहां के आयुष्य को भोगकर फिर यह स्त्री जाति में उत्पन्न होगा।

उस अवस्था में भी पाप कर्मों का संचय करके यह छठी नरक में कष्ट भोगने के लिए जायेगा। उस नारकीय जीवन की यातनाओं को भोगने के बाद यह फिर मनुष्य जन्म धारण करेगा। उक्त मानव देह को प्राप्त करके भी यह अशुभ करनी करेगा और उस पाप का फल भोगने के लिए यह सातवों नरक में जाकर उत्पन्न होगा।

सातवीं नरक के आयुष्य को पूर्ण करके यह तिर्यञ्च जाति में जलचर के रूप में मच्छ, कच्छ, मगर, ग्राह, सुसुमार आदि योनियों को धारण करेगा। इस प्रकार यह मृगापुत्र का जीव साढ़े बारह लाख कुल कोडियों में लाखों जन्म-मरण करता रहेगा।

उन योनियों में लाखों जन्म-मरण करने के पश्चात् स्थल चर अर्थात् चार पैर वाला पशु—हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, भेड़, बकरी वगैरह योनियों को धारण करेगा। वहां भी अनेक जन्म-मरण करने के बाद यह भुजपर अर्थात् सर्प, नेवला आदि योनियों में उत्पन्न होगा। भुजपर योनियों के कष्ट सहन करने के पश्चात् यह भुजपर और खेचर यानि आकाश में पक्षी की योनियां धारण करेगा।

फिर यह चतुरेन्द्रिय में मक्खी, मच्छर वगैरह बनेगा। चतुरेन्द्रिय के बाद तेइन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और बनस्पति आदि में उत्पन्न होगा। वनस्पति काय में भी कड़वी नीम गिलोय जैसी वनस्पति में उत्पन्न

होगा । इसके बाद काटे वाले वृक्षों में उत्पन्न होगा । इसके पश्चात् मिट्टी, पानी, अग्नि और हवा की योनियों को धारण करेगा । इस प्रकार चार गति और छः काय जीव योनियों में बार बार भ्रमण करता फिरेगा और असंख्यात जन्म-जन्मान्तर करने के पश्चात् जब पुण्य की वृद्धि होगी तो यह शतद्वार नगर में वृषभ के रूप में उत्पन्न होगा । जब यह युवावस्था में प्रविष्ट होगा तब किसी समय वर्षा होगी । यह उस समय उन्मत्त बना हुआ गंगा नदी के किनारे जाएगा और वहां अपने सींगों से किनारे की मिट्टी को खोदेगा । अचानक मिट्टी खोदते हुए उस नदी का तट गिर जाएगा । उसके गिर जाने के साथ,साथ यह भी उसमें दब कर मर जाएगा ।

इसके पश्चात् जब कुछ पाप कम होंगे और पुण्य की वृद्धि होगी तो यह उसी नगर में एक सेठ के घर में पुत्र रूप में उत्पन्न होगा । जब यह बाल्यावस्था से मुक्त होकर तथा पढ़ लिखकर होशियार होगा और युवावस्था में प्रविष्ट होगा तो फिर इसे किसी समय श्रमणों के सत्संग का लाभ मिलेगा । संत समागम में आने के बाद तीर्थङ्कर भगवान की वाणी सुनकर यह हृदय में धर्म को धारण करेगा । मुनिराजों के उपदेश से इसे परम वैराग्य प्राप्त होगा । ऐसी स्थिति में यह गृहस्थावस्था का परित्याग कर साधु बन जायेगा । दीक्षित होने के पश्चात् यह साधु के पंच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन करते हुए तथा बहुत वर्षों तक शुद्ध चारित्र का पालन करते हुए अंतिम समय में आत्मालोचना करके समाधि-भाव धारण करके काल को प्राप्त करेगा । पुण्य का अधिक सचय हो जाने से यह यहां से मर कर प्रथम देवलोक में जाकर उत्पन्न होगा ।

प्रथम देवलोक से च्यवकर इसकी आत्मा माह विदेह क्षेत्र में उत्तम कुल में उत्पन्न होगी । यह वहां एक समृद्धिशाली घराने में पुत्र

रूप में उत्पन्न होगा। इसके यहां जन्म लेते ही उसके माता पिता जो धर्म करनी करने में शिथिल हो रहे थे वे धर्म ध्यान में मजबूत हो जायेंगे। अतएव इसका नाम यहां दृढ़पइण्णे रखा जाएगा। तत्पश्चात् पुण्योदय से इसके जीवन में श्रेष्ठ ही श्रेष्ठ कार्य होंगे।

वहां भी किसी समय युवावस्था में इसे त्यागी साधुओं का योग मिलेगा। मुनिराजों की वाणी श्रवण कर इसे संसार से विरक्ति हो जायेगी। यह अपने माता पिता की आज्ञा लेकर भगवती दीक्षा अंगीकार करेगा। साधु अवस्था में यह उच्च करनी करेगा और समस्त कर्मों को काट कर एक दिन मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

इस प्रकार आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने सुशिष्य जंबू स्वामी से दुख विपाक सूत्र के प्रथम अध्ययन के भाव जैसे श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने निर्वाण होते समय फर्माए थे वही कह सुनाए।

भाई ! यद्यपि मृगापुत्र की आत्मा अशुभ करनी के फलस्वरूप अभी नरक में महान कष्टों को भोग रही है फिर भी भगवान ने उनके उज्जवल भविष्य के विषय में फर्मा दिया है अतएव उनकी आत्मा का तो एक दिन कल्याण हो ही जाएगा। परन्तु हमारी आत्मा को अभी संसार में कितने भव करने और बाकी हैं इसका कोई पता नहीं। तो शास्त्र सुनने और सुनाने का यही प्रयोजन है कि हम इन अध्ययनों को सुन कर पाप करनी करने से भयभीत हों और शुभ करनी करके अपने भविष्य को उज्जवल बनाने में नहीं चूकें। क्योंकि—'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली कहावत चरितार्थ होना यह अटल सिद्धान्त है। हमें चाहिए कि हम इस जीवन में ऐसी भूलों से सावधान रहें जो हमारा संसार भ्रमण बढाने वाली है। यह बात सदैव जीवन में याद रखना कि कभी देखे को अनदेखा, सुने को अनसुना और कहे हुए को अकथनीय मत कहना। परन्तु अपने

ोवन में सबके साथ प्रेम का व्यवहार और सच्चाई पर अमल रना। किसी निर्बल को सताना मत और जुल्म मत करना। क्योंकि १० जैनाचार्य श्री खूबचन्दजी म० अपनी कविता में भव्यात्मा को ातावनी देते हुए कह रहे हैं कि:—

है थोड़ी सी जिंदगानी, तू ना पाप से डरे।
बिन पाले धर्म नियम, कैसे आत्मा तरे ॥२॥

भाई! ज्ञानी पुरुषों का भव्यात्माओं के लिए कहना है कि ऐ ानव! तुझे यहाँ अल्प समय के लिए यह मनुष्य की जिंदगी प्राप्त ई है। परन्तु इस थोड़े से समय में भी यदि तू शुभ करनी कर लेगा ौर पाप कर्मों से डरता रहेगा तो यह अल्प समय भी तेरे जीवन को ार्थक बना देगा। इसके विपरीत यदि तू रात-दिन झूठ, चोरी, छल पट, ईर्ष्या, राग, द्वेष, परनिन्दा, चुगली, दगाबाजी और मिथ्यात्व सेवन में ही अपनी जिंदगी के चन्द क्षणों को व्यतीत कर देगा ौर अशुभ करनी करेगा तो तेरा भविष्य सच्चिदानन्द स्वरूप न न कर भव सागर में गोते ही खाता फिरेगा और अंधकारमय न जायेगा। इस लिए इस जीवन को अच्छे कार्यों में प्रवृत करते हुए च्चे आनन्द की प्राप्ति कर लो। अपने मन, वचन और काया के ोगों को शुभ काम में लगाओ। क्योंकि इन्हीं योगों को यदि पाप ार्यों में प्रवृत्त कर दिया तो तुम्हारे लिए आश्रव यानि कर्म बन्धन प बन जायेंगे। और यदि इन्हीं को अच्छे कार्यों में लगाया तो हीं योग संवर रूप बन जायेंगे।

तो भाई! अशुभ कार्यों में प्रवृत्ति करते हुए तो तुम्हें अनन्त ाल बीत चुका है और अपनी आत्मा का विस्तार नहीं हो सका। ातएव अब भी जो बीत चुका उसकी चिंता नहीं करते हुए जो हाथ ं है उस समय में भी शुभ करनी करलोगे, जीवन में नेक कमाई कर

लोगे और आत्मा की कर्मशत्रुओं से रक्षा कर लोगे तब भी तुम्हारा भविष्य समुज्जवल हो जाएगा। इसीलिए संत-पुरुष बार-बार चेतावनी देते हैं कि भाई ; हमारा कहना मान लो और जो जिंदगी के क्षण शेष बच गए हैं उनकी भी रक्षा कर लो।

कवि महोदय भविजीवों को चेतावनी देते हुए आगे कह रहे हैं कि—

मान ले मुनिराज सत्य, कहत हैं अरे।
से मुक्ति का सामान अब; ढील क्यों करे ॥टेक॥
ये पुत्र, मात, तात, भ्रात, जिनसे नेह करे।
न तुझ को तारण हार क्यों, इनके जालमें परे ॥१॥

भाई ! यदि तू संत पुरुषों की सत्यवाणी पर विश्वास करेगा और उनके द्वारा बताए हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो जाएगा तो तुझे एक दिन मोक्ष भी प्राप्त हो जाएगा। भाई ! सत्संगति और कुसंगति का मानव के जीवन पर गहरा असर पड़ता है। यदि तू अपने जीवन को बुरे मनुष्य के संसर्ग में व्यतीत करेगा तो उसका प्रभाव तेरे विचारों पर पड़ेगा। उससे तेरे भी बुरे विचार हो जायेंगे। जैसे कोई व्यक्ति कसाई के घर में जन्म लेता है उसके पापमय संस्कार उस व्यक्ति पर भी पड़े बिना नहीं रहते। और यदि तू अपना समय अच्छे धर्मात्मा व्यक्ति के संसर्ग में बिताएगा तो उसके अच्छे विचारों का प्रभाव तेरे मानस पर भी पड़ेगा। जैसे किसी कुलीन धर्मात्मा व्यक्ति के यहां जन्म लेने पर उस व्यक्ति के संस्कार भी अच्छे बन जाते हैं। तो मनुष्य को जैसा वातावरण मिलता है उसी के अनुसार उसके जीवन का निर्माण हो जाता है।

अरे ! तू जिन माता-पिता, भाई, बहिन, पुत्र वगैरह कुटुम्बी जनों को अपना अपना कहकर संबोधन कर रहा है और उन्हीं के लिए

हो गया तो उसके द्वारा शुद्ध रीति से क्रिया करते हुए ग्रामानुग्राम विचरण करके सद्ज्ञान जनता में धर्म प्रचार करना प्रारंभ किया। इस प्रकार अपने ज्ञान एवं क्रिया द्वारा अपने आचरण को पवित्र बनाते हुए उन्होंने बीस बोलों का सेवन किया।

भाई! ग्रन्थकारों का कहना है कि तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने के बीस बोलों में से यदि कोई महान आत्मा एक बोल का भी पूर्णतया सेवन कर लेती है तो वह तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन कर सकती है। क्योंकि अपने ही उन्नत विचारों से मनुष्य ऊंचा उठ सकता है और अपने ही निकृष्ट विचारों के द्वारा कोई भी मनुष्य रसातल की ओर जा सकता है।

तो आप यदि उक्त तीर्थङ्कर गौत्र उपार्जन करने के बीस बोलों का सविस्तार वर्णन देखना चाहें तो श्रीमद् ज्ञाताजी सूत्र में देख सकते हैं।

उन्हीं बीस बोलों को संक्षिप्ततः एक कवि की भाषा में आप यहां पढ़ सकते हैं। उसमें बताया गया है कि:—

अरिहंत, सिद्ध प्रवचन गुरु के गुण,
स्थेवर ने बहुसूत्री, तपस्वी वखाणिये।
भणयो-गुणयो वार-वार समकित विनय सार,
आवश्यक विधि, शील, शुद्ध मन आणिये॥

ध्यान दोय, तप, दान, व्यावच्च, समाधिमान,
अपूर्व ज्ञान जैन, आगम को जाणिये।
जैन मत स्थापतो, मिथ्यात को उत्थापे जीव,
बीस बोल तीर्थङ्कर, गोत्र के पिछाणिये॥

श्रवण कर उस पर चिन्तन एवं मनन करेंगे और अपने जीवन में भी "जैसी करनी वैसी भरनी" वाली कहावत को चरितार्थ होती हुई देखेंगे।

हां तो, मैं कह रहा था कि तीर्थङ्कर भगवान वज्रसेन के धर्मोपदेश को श्रवण कर चक्रवर्ती सम्राट वज्रनाभि अपने पांचों भाइयों सहित भगवान के पास दीक्षित हो गए। वे सब महिमंडल में विचरण करते हुए जनता का कल्याण करने लगे।

चक्रवर्ती पदधारी अणगार वज्रनाभि ने तथागत स्थविर मुनिराजों की अनुपम सेवा करके चौदह पूर्वों का ज्ञान हासिल कर लिया। अन्य पांचों भाइयों ने भी गुरु की सेवा करके ग्यारह अंगों का ज्ञान सीखा। संत जीवन में शास्त्र ज्ञान सीखना अनिवार्य है। क्योंकि बिना ज्ञान प्राप्ति के जीवन सही रास्ते पर नहीं चलाया जा सकता। शास्त्रकारों ने भी फर्माया है कि:—

पढमं नाणं तओ दया।

अर्थात्—प्रथम ज्ञान प्राप्त करो और पीछे दया करो।

भाई! ज्ञान के बिना जीवन की विशुद्धि नहीं हो सकती। जब आत्मा में वस्तु का जानपणा हो जाएगा तब ही उसे जीवन में आचरण रूप में विवेक पूर्वक लाया जा सकेगा। केवल क्रिया करने मात्र से ही जीवन शुद्ध नहीं होगा और न केवल ज्ञान सीख लेने मात्र से ही आत्मा का उत्थान होगा। परन्तु ज्ञान और क्रिया से सम्बन्धित करनी से ही जीवनोत्थान संभवित है। अतएव पहिले ज्ञान प्राप्त करो और बाद में उसे जीवन में उतारो।

तो उन छः ही भाइयों ने जिस उद्देश्य से संयम का भार परिग्रहण किया था उसे ज्ञान प्राप्ति में लगाया। जब उन्हें ज्ञान प्राप्त

चौथमलजी म० से ज्ञान संपादन किया। इनको इतनी प्रखर बुद्धि थी कि थोड़े ही समय पश्चात् ये चर्चा-वादियों की गणना में आ गए। इनके पास जो भी प्रश्नकर्त्ता आते वे इनके अकाट्य प्रमाण सुनकर इनसे सतुष्ट हाकर जाते थे। इनका सौम्य दीदार बड़ा तेजस्वी था। इन्हें समाज ने "वादी वाद मर्दन" की उपाधि से सुशोभित किया। इन्होंने अपनी प्रसिद्धि के प्रसून चारों तरफ बिखेर दिए।

ऐसे यशस्वी, विद्वान एवं चर्चावादी गुरु की तारीफ करते हुए पूज्य खूबचन्दजी म० कह रहे हैं कि उन सत शिरोमणि गुरु ने अपने आपको तो तारा ही परन्तु मुझ पर भी उनकी असीम कृपा है कि मुझे भी उन्होंने संसार सागर में डूबते हुए को हाथ पकड़ कर निकाल बाहर किया।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि यह अनमोल समय जीवन का चला जा रहा है। अतएव इस धारा प्रवाही जीवन के चन्द अनमोल क्षणों को यदि जीवन को समुन्नत बनाने में खर्च करोगे और शुभ करनी करोगे तो यह कीमती समय सार्थक हो जाएगा। अन्यथा ख्याली पुलाव पकाने से जीवन मे कुछ भी होने वाला नहीं है और उस शेख चिल्ली जैसी स्थिति हो जाने वाली है। तो संत महापुरुषों के सदुपदेश पर अमल करो और अपने जीवन को शुभ करनी द्वारा सफल बनाओ।

ऋषभ भवन्तरी

भाई! अब मैं आप लोगों के समक्ष भगवान आदिनाथ के पूर्व भवों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ सुनाने जा रहा हूँ। आशा है आप

कहीं भी कुछ मिलने वाला नहीं है। तो संसार में काल्पनिक विचारों से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। केवल भाग्य के सहारे ही सब कुछ प्राप्त होने वाला है।

फिर उपसंहार करते हुए आचार्य श्री फर्मा रहे हैं कि:—

महामुनि नंदलालजी, हैं संत में सिरै।
संसार सागर छोर आप, तारैं और तिरै ॥४॥

पूज्य महाराज उक्त कविता में अपने गुरु स्व० श्री नंदलालजी म० की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं कि गुरु महाराज संतों में सिरमौर थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को त्याग कर साधु अवस्था में अपनी आत्मा का भी उद्धार किया और धर्मोपदेश देकर जनता को भी मोक्ष मार्ग का रास्ता दिखाया। वे स्वयं ही दीक्षित नहीं हुए परन्तु उनके माता-पिता, तीन भाई तथा मामा वगैरह ने भी संसार को त्याग कर भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली। अर्थात् समस्त घरवालों ने ही दीक्षा धारण कर ली। जैसे आपने शास्त्रों में सुना है कि धन्नाजी ने अपने साले शालिभद्रजी के साथ दीक्षा ली थी उसी प्रकार इनके पिता और मामा ने भी एक साथ दीक्षा ली थी। छः साल के पश्चात् इन्होंने अपनी स्त्री और तीन पुत्रों के हृदय में वैराग्य भावना प्रवेश कराकर उन्हें भी भगवती दीक्षा धारण करा दी। कहिए! इनका कैसा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय वैराग्य था कि सबके सब गृहस्थाश्रम को छोड़ कर साधु बन गए। ऐसे महापुरुषों के चरणों में हमारा शत बार वन्दन हो। स्व० पूज्य खूबचन्दजी म०, स्व० जैन दिवाकर चौथमलजी म० आदि रे हम सब उन्हीं की सम्प्रदाय के साधु हैं।

स्व० श्री नंदलालजी म० ने संवत् १९२० में दूसरे पू० शिवलालजी म० के पास दीक्षा धारण की थी। और इन्होंने पूज्य

आएगा और उसके अत्याग्रह करने पर मैं जोर से सिर हिलाकर कहूँगा कि चला जा यहां से ! मैं अभी नहीं आऊँगा।

तो इस प्रकार ज्योंही अपनी कल्पना की उड़ान में उसने अपना सिर जोर से हिलाया तो वह टोकरी जिसमें घृत का घड़ा रखा हुआ था, तत्क्षण जमीन पर गिरकर फूट गया। घृत उस में से निकल कर जमीन पर बहने लगा। घृत बहता हुआ देख उस व्यक्ति ने झिल्ली-वाले से कहा कि नालायक ! तूने यह क्या गजब कर दिया। अरे मूर्ख ! मेरा सारा घी मिट्टी में मिला दिया।

यह सुनकर वह झिल्लीवाला शेखचिल्ली कहने लगा कि सेठ साहब ! तुम्हारा तो घी ही ढुला है परन्तु मेरा तो बना बनाया सारा घर ही बिखर गया।

तो प्रत्येक काल्पनिक व्यक्ति अपने मन में तरह तरह की कल्पनाएँ तो करता है कि ऐसा हो जाय, वैसा हो जाय ! परन्तु भाई ! भाग्य की कृपा हुए बिना कुछ भी होने वाला नहीं है। क्योंकि आपतो चलते हो बारह कदम परन्तु भाग्य कम चलता है अठारह कदम आगे। इसलिए जो भाग्य में होगा वही प्राप्त होने वाला है। भाई ! मनुष्य के कर्म उसके साथ छाया की तरह गमन करते हैं।

तो मनुष्य संसार में रहते हुए न जाने कैसी-कैसी कल्पनाएं अपने मन में करता है परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हवाई किले बांधने की अपेक्षा भाग्य का निर्माण करो। यदि तुम यहाँ भाग्य का निर्माण करके आए हो तो बिना कल्पना किए भी सब कुछ मिल जाएगा। और भाग्य के सहारे जहां भी चले जाओगे तो जंगल में भी मंगल हो जाएगा। परन्तु भाग्य का निर्माण करके नहीं आए हो तो

कहीं भी कुछ मिलने वाला नहीं है। जो संसार में काल्पनिक विचारों से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। केवल भाग्य के सहारे ही सब कुछ प्राप्त होने वाला है।

फिर उपसंहार करते हुए आचार्य श्री फर्मा रहे हैं कि:—

महामुनि नंदलालजी, हैं संत में सिरे।
संसार सागर छोर आप, तारें और तिरे ॥४॥

पूज्य महाराज उक्त कविता में अपने गुरु स्व० श्री नंदलालजी म० की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं कि गुरु महाराज संतों में सिरमौर थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को त्याग कर साधु अवस्था में अपनी आत्मा का भी उद्धार किया और धर्मोपदेश देकर जनता को भी मोक्ष मार्ग का रास्ता दिखाया। वे स्वयं ही दीक्षित नहीं हुए परन्तु उनके माता-पिता, तीन भाई तथा मामा वगैरह ने भी संसार को त्याग कर भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली। अर्थात् समस्त घरवालों ने ही दीक्षा धारण कर ली। जैसे आपने शास्त्रों में सुना है कि धन्नाजी ने अपने साले शालिभद्रजी के साथ दीक्षा ली थी उसी प्रकार इनके पिता और मामा ने भी एक साथ दीक्षा ली थी। छः साल के पश्चात् इन्होंने अपनी स्त्री और तीन पुत्रों के हृदय में वैराग्य भावना प्रवेश कराकर उन्हें भी भगवती दीक्षा धारण करा दी। कहिए! इनका कैसा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय वैराग्य था कि सबके सब गृहस्थाश्रम को छोड़ कर साधु बन गए। ऐसे महापुरुषों के चरणों में हमारा शत बार वन्दन हो। स्व० पूज्य खूबचन्दजी म०, स्व० जैन दिवाकर चौथमलजी म० आदि २ हम सब उन्हीं की सम्प्रदाय के साधु हैं।

स्व० श्री नंदलालजी म० ने संवत् १९२० में दूसरे पू० शिवलालजी म० के पास दीक्षा धारण की थी। और इन्होंने पूज्य

आएगा और उसके अत्याग्रह करने पर मैं जोर से सिर हिलाकर कहूँगा कि चला जा यहां से ! मैं अभी नहीं आऊँगा।

तो इस प्रकार ज्योंही अपनी कल्पना की उड़ान में उसने अपना सिर जोर से हिलाया तो वह टोकरी जिसमें घृत का घड़ा रखा हुआ था, तत्क्षण जमीन पर गिरकर फूट गया। घृत उस में से निकल कर जमीन पर बहने लगा। घृत बहता हुआ देख उस व्यक्ति ने झिल्ली-वाले से कहा कि नालायक ! तूने यह क्या गजब कर दिया। अरे मूर्ख ! मेरा सारा घी मिट्टी में मिला दिया।

यह सुनकर वह झिल्लीवाला शेखचिल्ली कहने लगा कि सेठ साहब ! तुम्हारा तो घी ही ढुला है परन्तु मेरा तो बना बनाया सारा घर ही बिखर गया।

तो प्रत्येक काल्पनिक व्यक्ति अपने मन में तरह तरह की कल्पनाएँ तो करता है कि ऐसा हो जाय, वैसा हो जाय ! परन्तु भाई ! भाग्य की कृपा हुए बिना कुछ भी होने वाला नहीं है। क्योंकि आपतो चलते हो बारह कदम परन्तु भाग्य कम चलता है अठारह कदम आगे। इसलिए जो भाग्य में होगा वही प्राप्त होने वाला है। भाई ! मनुष्य के कर्म उसके साथ छाया की तरह गमन करते हैं।

तो मनुष्य संसार में रहते हुए न जाने कैसी-कैसी कल्पनाएं अपने मन में करता है परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हवाई किले बांधने की अपेक्षा भाग्य का निर्माण करो। यदि तुम यहाँ भाग्य का निर्माण करके आए हो तो बिना कल्पना किए भी सब कुछ मिल जाएगा। और भाग्य के सहारे जहां भी चले जाओगे तो जंगल में भी मंगल हो जाएगा। परन्तु भाग्य का निर्माण करके नहीं आए हो तो

अपने मन में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करने से कोई काम बनने वाला नहीं है। तू चाहे कितने ही मनसूबे करले कि मैं यह बन जाऊँ और वह बन जाऊँ परन्तु तेरा विचार किया हुआ कारगर नहीं होगा। क्योंकि यदि पानी से घी निकलने लगे तो फिर लूखी रोटी कोई भी खाने को तैयार क्यों होगा! अर्थात् कोई भी लूखी रोटी नहीं खाएगा। परन्तु ऐसा सब कुछ होने वाला नहीं है। जैसे एक झिल्ली उठाने वाले मजदूर को किसी व्यक्ति ने बुलाकर कहा कि भाई! यह घृत से भरा घड़ा मेरे घर तक पहूँचा दे। मैं इसके लिए तुझे चार पैसे मजदूरी के रूप में दूंगा। उस झिल्ली वाले ने घड़े को टोकरी में रख लिया और उसे सिर पर उठाकर चलने लगा। रास्ते में चलते हुए वह विचार करने लगा, तरह-तरह के मनसूबे बांधने लगा कि आज मुझे जो मजदूरी से चार पैसे मिलेंगे उससे मैं अमुक चीज खरीदूंगा। जब उस चीज को बेंचने पर मेरे पास दो आने हो जायेंगे तो दूसरी चीज लाऊँगा और उसे बेंचने पर मेरे पास आठ आने हो जायेंगे। फिर उन आठ आनों से मेरे पास एक रुपया हो जायेगा। इस प्रकार खरीद फरोख्त करते करते जब मेरे पास सौ रुपए इकट्ठे हो जायेंगे तो मैं उन रुपयों से बड़ा व्यापार करूंगा! जब उस व्यापार से मेरा भाग्योदय हो जायगा तो मैं एक दिन हजारपति और लखपति सेठ बन जाऊँगा। इस प्रकार वह झिल्लीवाला अपने मन में शेखचिल्ली वाले विचार करता हुआ जा रहा था।

इस प्रकार उस शेखचिल्ली ने कल्पनाओं में लखपति सेठ बन कर अपना विवाह भी कर लिया। अब वह सोचने लगा कि जब मेरे बच्चे हो जायेंगे तो उनकी मां कहेगी कि जा बेटा! तेरे भाईजी को रोटी खाने के लिए दुकान से बुला ला। और जब वह लड़का अपनी मां की आज्ञा प्राप्त कर मुझे रोटी जीमने के लिए बुलाने को

नहीं हो सकता कि बेटा चोरी, डकैती करे और उसका प्रतिफल उसके बाप को भोगना पड़े। अरे! बाप को शुभ या अशुभ करनी के फल बाप को और बेटे की करनी के फल बेटे को ही भोगने पड़ेंगे। इसी प्रकार गुरु की करनी गुरु और चेले की करनी के फल चेले को ही चाखने पड़ेंगे।

परन्तु मानव को फिर भी अपनी आत्मा के उद्धार का लक्ष्य नहीं है। उसे तो किसी भी तरह धन की प्राप्ति होनी चाहिए! फिर चाहे वह धन अठारह ही पापों के सेवन करने से क्यों न प्राप्त होता हो परन्तु उसके लिए वह पाप सेवन से भी नहीं डरता। तो इसलिए गुरु महाराज फर्माते हैं कि—

हो जाऊँ मैं धनवान, ऐसी कल्पना करे।
न भाग्य बिना पावे, नाहक डोलतो फिरे॥२॥

यह मानव अपने मन में मनसूबे तो बहुत बांधता है कि मैं लखपति, करोड़पति या राजा बन जाऊं परन्तु केवल कल्पनाओं के महल खड़े करने से कोई सिद्धि प्राप्त होने वाली नहीं है। इसके लिए तो भाग्य के निर्माण की आवश्यकता अनिवार्य है। जब तक भाग्य साथ नहीं देता तबतक उसके हवाई किले बांधना व्यर्थ साबित होंगे। इसलिए अपने मानसिक विचारों की सफलता के लिए भाग्य का निर्माण करना आवश्यक है। यदि शुभ करनी करोगे तो भविष्य में तुम्हारा भाग्य ही तुम्हारा मददगार बन जाएगा। इसलिए मन में मनसूबे तरह तरह के नहीं बांधकर भाग्य का निर्माण करने की कोशिश करो। क्योंकि कहा है—

मन मनसूबो मत करो, थारो कियो न होय।
पानी से घी नीकले, लूखी न खाये कोय॥

अपने जीवन के क्षण पापाचरण में समाप्त कर रहा है परन्तु याद रखना ! जब तेरी मृत्यु आएगी तो काल के गाल में जाते हुए को उनमें से कोई भी रोकने में समर्थ नहीं हो सकेगा। तुझे दुर्गति में जाते हुए को रोकने वाला कोई नहीं होगा। सब तेरी तरफ निहारते ही रह जाएँगे और तू उन सबसे विदा होकर अपने अशुभ कार्यों का फल भोगने के लिए दुर्गति में चला जाएगा। तो ठंडे दिल से विचार कर कि तू जिससे स्नेह करता है, जिन्हें अपना-अपना कह रहा है और जिनके स्वार्थ पोषण के लिए तू पाप कर्मों का उपार्जन कर रहा है तो क्या वे तेरे सच्चे उद्धारक हैं या रसातल की ओर ले जाने वाले है ? परन्तु गंभीर विचार करने पर ज्ञात होगा कि ये कुटुम्बीजन सिर्फ स्वार्थ पोषक हैं और आत्म घातक तत्त्व हैं। तेरी आत्मा का इनमें से किसी के द्वारा भी हित संभवित नहीं है। इस लिए तेरी आत्मा का हित किसमें है इस पर विचार कर ? जब तू यह भली प्रकार समझ लेगा कि ये कुटुम्बी जन कुछ और है और मैं कुछ और हूँ तब वास्तव में तेरी आत्मा का उद्धार हो जाएगा। तू कुटुम्बीजनों में रहते हुए भी अपने आपको इन सबसे पृथक समझ। तू तो इनके साथ रहते हुए अपनी जिम्मेवारी निभा रहा है। यदि तू अपने कर्तव्य का पालन नहीं करेगा तो इनका क्या हाल होगा इसी दृष्टि कोण से इनके साथ रह कर अपना फर्ज निभा। परन्तु मेरा-मेरा कहने और समझने से तेरी आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं है। इसलिए तू इनमें सम्मिलित रहते हुए भी अपने आपको पृथक समझ। क्योंकि किसी कवि का कहना है—

मिथ्या पाप न कीजिए, अलगो रहिजे आप।
करणी जासी आपकी, कुण बेटा कुण बाप॥

भाई ! चाहे कोई बाप हो, बेटा हो, स्त्री या भाई हो परन्तु सब अपनी अपनी शुभाशुभ करनी के फल पाने वाले हैं। यह कभी

इस कविता में कवि ने संक्षेप में तीर्थङ्कर पद प्राप्ति के बीस बोलों का जिक्र किया है। प्रथम बोल में बताया गया है कि अरिहंतों के गुण ग्राम करते हुए यदि किसी आत्मा में उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने की हक़दार बन जाती है।

दूसरे बोल में यह कहा गया है कि जितने भी सिद्ध भगवान् हो चुके हैं उनके अनन्त गुणों की बार बार तारीफ करते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह आत्मा भी तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन कर लेती है।

तीसरे अरिहंत भगवान द्वारा फर्माए हुए कल्याणकारी प्रवचनों की तारीफ करते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो भी तीर्थङ्कर गोत्र का बंधन हो जाता है।

चौथे गुणवंत पंचमहाव्रत धारी सद्गुरुओं के गुणों की प्रशंसा करते हुए, पांचवे स्थविर मुनिराजों की प्रशंसा करते हुए, छठे बहु-सूत्रियों के गुणों की तारीफ करते हुए, सातवें उत्कृष्ट तपस्या करने वाले तपस्वियों की प्रशंसा करते हुए (तपस्या बाह्य और अभ्यन्तर रूप से दो प्रकार की होती है इनके कुल ३५४ भेद होते हैं) आठवें सीखे हुए शास्त्र ज्ञान की बार बार आवृत्ति करते हुए यदि आत्मा में उत्कृष्ट रसायन आ जाए तो तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति होती है।

भाई! ज्ञान का बार बार पर्यटन नहीं करने से पुनरावृत्ति नहीं करने से वह भी दिमाग से विसर्जित हो जाता है। क्योंकि किसी ने कहा है कि:—

पान सड़े, घोड़ा अड़े, विद्या विसर जाय।
ताता सीरे बाटी जले, रहो चेला कुण न्याय॥

उक्त प्रश्न के उत्तर में शिष्य ने कहा कि:—'गुरूजी फेरो नहीं'।

अर्थात् किसी गुरू ने अपने शिष्य से प्रश्न किया कि हे शिष्य ! पान भी सड़ जाते हैं, घोड़ा भी चलते चलते अड़ने लगता है, सीखा हुआ ज्ञान भी विस्मृत हो जाता है और बाटी भी खीरों पर जलने लगती है तो इसका कारण क्या है ?

गुरूजी के मुख से उक्त प्रश्नावली सुनकर ज्ञानवान शिष्य ने इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर में समाधान करते हुए कहा कि गुरूजी ! इन सब को फेरा नहीं। अर्थात् पानों को नहीं फेरने से पान, घोड़े को नहीं फिराने से घोड़ा, सीखे हुए ज्ञान का पर्यटन नहीं करने से ज्ञान और खीरों पर रखी हुई बाटियों को नहीं फेरने से बाटी वगैरह सब जल गये, सड़ गये, बिसर गये और अड़ने लगे। तो सबको फेरते रहने से किसी में खराबी नहीं आती।

सीखे हुए ज्ञान को बार बार दुहराते रहने से वह ताजा बना रहता है। उसमें विस्मृति नहीं आने पाती। जैसे किसी ने बार बार मुनिराजों के आग्रह करते रहने पर तो मुश्किल से सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल और चौबीस दंडक वगैरह का ज्ञान सीखा परन्तु सीखने के पश्चात् उसकी पुनरावृत्ति नहीं की। अतएव वह सीखा हुआ ज्ञान विस्मृत हो गया। एक समय किसी साधु ने उन महाशय से पूछ लिया कि श्रावकजी ! क्या २ जानते हो ?

तब उस व्यक्ति ने गुरु महाराज के प्रश्न के उत्तर में कहा कि महाराज ! मैंने बड़े परिश्रम के साथ अमुक मुनिराज की सद्प्रेरणा से सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल वगैरह सब कुछ सीख लिए थे परन्तु अब तो सब कुछ भूल गया हूँ। यह सुनते ही गुरु महाराज ने कहा कि भाई ! तब तो आपने सीखे हुए ज्ञान का दिवाला ही

निकाल दिया। जब तुमने इतने परिश्रम के साथ ज्ञान सीखा परन्तु उसे भुला दिया तो वह सीखा हुआ ज्ञान तुम्हारे किस काम आया। उस परिश्रम का फल व्यर्थ ही खो दिया। यदि उक्त सीखे हुए ज्ञान का बार-बार पर्यटन करते रहते तो वह ताजा बना रहता और आज विस्मृति होने की नौबत नहीं आती। तो सीखे हुए ज्ञान का पर्यटन करते रहने से यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार नवमा बोल है कि सम्यक्त्व के पांच दूषणों को टालते हुए और पांच भूषणों को निर्मल रूप से रखते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन हो जाता है।

इसके बाद दसवें बोल में बताया है कि विनय करते हुए (विनय के ऐसे तो अनेक भेद हैं परन्तु मुख्य रूप से दो भेद हैं—लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक विनय अर्थात्—माता पिता, बड़े भाई बहिन और बुजुर्ग लोगों का विनय करना-इज्जत करना है और लोकोत्तर विनय अर्थात् गुरुजनों का विनय करना है) यदि जीव को उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो उसे भी तीथङ्कर गोत्र का बंध होता है।

इसी प्रकार ग्यारहवें बोल में बताया गया है कि दोनों समय प्रातः एवं सायंकाल प्रतिक्रमण करते हुए शुभ भावना आती है और उत्कृष्ट रसायन आ जाता है तो वह भी तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन कर लेता है।

बारहवें बोल में शास्त्रकारों ने बताया है कि यदि कोई अपने लिए हुए त्याग पच्चक्खाणों का निर्मलता से पालन करता है और

ऐसा करते हुए उसे उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह भी जीव तीर्थङ्कर गोत्र बांध लेता है।

तेरहवें बोल में कहा गया है कि ध्यान चार प्रकार के हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन चारों में दो ध्यान, आर्त और रौद्रध्यान तो छोड़ने योग्य हैं और अंतिम दो ध्यान धर्म और शुक्ल ध्यान आदरने योग्य हैं। जो धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ध्याते हुए यदि जीव को उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लेता है।

फिर चौदहवें बोल के विषय में ग्रंथकारों ने बताया है कि तपस्या करते हुए यदि जीव को उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो उसे भी तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति हो जाती है।

पंद्रहवां बोल यह बताता है कि जो दयालु जीव मरते हुए प्राणी की रक्षा करता है—उसे प्राण विमुक्ति से बचाता है तो ऐसा करते हुए यदि उसे उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लेता है।

भाई! तीर्थङ्कर गोत्र ऐसे ही उपार्जन नहीं हो जाता बल्कि उसके लिए उत्कृष्ट भावना की आवश्यकता रहती है। बिना उत्कृष्ट भावना और रसायन के आए तीर्थङ्कर गोत्र का बंध नहीं होता। अरे! भविष्य में जो तीर्थङ्कर बनने वाले हैं तो उन्होंने भी बीस बोलों में से अमुक-अमुक बोल का सेवन किया है और तभी वे तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के अधिकारी बन सके हैं।

देखो! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी को रेवती गाथा पति ने उच्च भावना सहित सुपात्र दान दिया और उन्हें उत्कृष्ट

रसायन आया तो उन्होंने भी तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन कर लिया। इसी प्रकार राजा श्रेणिक जो किसी समय मिथ्यात्वी था परन्तु अनाथी मुनि के दर्शन धर्मोपदेश सुनकर सम्यक्त्वी बन गया। उसने अत्यन्त कारुणि हृदय से अपने देश में कत्लखाने बंद करवा दिए और ऐसा करने से असख्यात जीवों को अभयदान मिला। तो ऐसा करते हुए उन्हें उत्कृष्ट रसायन आया और उसी से उन्हें तीर्थङ्कर गोत्र का बंध हो गया। अब वे भी आगामी चौबीसी में तीर्थङ्कर पद से सुशोभित होंगे।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के द्वारा की गई शुभ या अशुभ करनी का फल व्यर्थ नहीं जाता। करनी करने में प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह शुभ करनी करे या अशुभ करनी करे परन्तु जैसी करनी करेगा वैसा ही फल उसे अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। यदि तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन करना है तो बीस बोलों में से किसी एक बोल का सेवन करो और सातवीं नरक में प्रयाण करना है और वहां की हवा खानी है तो उसके अनुसार करनी करो। परन्तु धर्मोपदेष्टाओं का तो भव्यआत्माओं को यही सन्देश है कि पाप करनी करने से उदासीन बनो और शुभ करनी करने में पुरुषार्थ करो। तो अभयदान और सुपात्रदान देते हुए भी उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो उससे भी तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति होती है।

फिर आगे शास्त्रकार सोलहवें बोल के विषय में फर्माते हैं कि दस जनों की व्यावच्च-सेवा करते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन होता है।

भाई! संसार में सेवा का क्षेत्र भी बड़ा विशाल है। सेवा भी एक तरह से नहीं परन्तु अनेक तरह से की सकती है। यदि आप

चारों संघ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका की सेवा करें और सेवा करते हुए उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति हो जाती है। तो सेवा करना पाप नहीं वरन् तीर्थङ्कर पद दिलाने वाली महान रसायन है। अपने आत्म विचारों को जितना-जितना ऊंचा उठाओगे उतनी ही तुम्हारी आत्मा उन्नत बनती जायेगी। तो जीवन में सेवा धर्म को अपनाओ।

अब सत्रहवें बोल में बताया जाता है कि ज्ञानार्जन करते हुए नवीन ज्ञान सीखते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन हो जाता है।

अठारवें बोल में कहा गया है कि ज्ञान का प्रचार करते हुए, ज्ञान और ज्ञानी की आशातना नहीं करते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो भी तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध होता है। ज्ञान सीखने वाले की हर तरह मदद करने से और ज्ञान तथा ज्ञानी पुरुषों की इज्जत करने से ज्ञानावर्णीय कर्म नष्ट हो जाता है।

उन्नीसवें बोल में शास्त्रकारों ने फर्माया है कि जो धर्मशास्त्र या धर्म साहित्य का जनता में विशद रूप से प्रचार करता है और धर्म ग्रन्थों को स्वाध्याय करने वालों की संख्या में अभिवृद्धि करता है तो ऐसा शुभ कार्य करते हुए यदि उत्कृष्ट रसायन आ जाय तब भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन हो जाता है।

भाई ! हमारे पूर्वज तो विशेषतः शास्त्रों का स्वाध्याय करने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। उन्हें शास्त्राभ्यास करते हुए बड़ा आनन्द आता था। वे शास्त्रों को पढ़ते और उन्हीं में रमण करते रहते थे। परन्तु आज श्रावक और श्राविका ही नहीं अपितु साधु

साध्वी भी शास्त्रों के अध्ययन को गौण समझते हुए संस्कृति, व्याकरण, साहित्य और अन्यान्य भाषाओं के ग्रंथ पढ़ने को मुख्यता प्रदान करते हैं। परन्तु उन्होंने जिस उद्देश्य से सिर मुंडाया है— साधु बने हैं और जिससे अपना तथा दूसरों का जीवन भी बनता है उसे भूल से गए हैं। आज शास्त्रों का ज्ञान बहुत कम लोगों को है। उसका प्रत्यक्ष परिणाम हमारी नजरों के सामने हैं कि वे शिथिलाचार की ओर प्रवृत्ति करते जा रहे हैं। यदि आज पुनः साधु समाज की आगम पढने की तरफ अभिरुचि हो जाय तो वे अपनी आत्मा मे स्थिर रह सकते हैं और अपने महाव्रतों का पूर्णतया पालन करने में समर्थ हो सकते हैं। आगम पढ़ने से स्वयं भी उन्मार्ग की ओर जाते हुए बच सकेंगे और दूसरों के जीवन को भी बचा सकेंगे। क्योंकि ज्ञान रूपी लगाम लगा कर मन रूपी घोडे को सही रास्ते पर ला सकते हैं। धर्म ग्रन्थों का निरन्तर अभ्यास करते रहने से आत्मा मे विवेक जागृत हो जाता है। ज्ञान प्राप्ति हो जाने से फिर ज्ञान अथवा ज्ञान की पुस्तकों की आशातना नहीं होने पायेगी। आशातना नहीं होने से ज्ञान निर्मल बनेगा और ज्ञान के निर्मल बनने से एक दिन तीर्थङ्कर गोत्र भी बंध जायेगा। तो समाज के कर्णधारों का कर्तव्य है कि आज जो शास्त्राध्ययन की तरफ से समाज में जो उपेक्षा सी होती जारही है सो उस तरफ लोगों की अपेक्षा करा कर उनमें अभिरुचि उत्पन्न कराएं। इस तरफ अपेक्षा होने से ही आत्मकल्याण की संभावना है।

अब अंतिम तीसरे बोल के विषय में फर्माते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि भव्यात्मा तीर्थङ्कर भगवान के प्रवचनों को लोगों के हृदय में स्थापित कराता है। अर्थात हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि दुर्गुणों को हृदय से निकाल कर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सद्गुणों को लोगों के

हृदय में स्थापित कराता है उसे भी तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन होता है। इसलिये तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के इच्छुक को चाहिये कि वह अपनी तन, मन, धन की शक्ति लगाकर भी लोगों के हृदय से लोभ को मिटाकर संतोष, राग को छुड़ाकर विराग, द्वेष को हटाकर प्रेम, क्रोध को छुड़ाकर क्षमा और मान को हटाकर निरभिमानता पैदा करे। साथ ही सदैव जनता में "सत्य शिवं सुन्दरम्' का सदुपदेश देते हुए कहो कि यदि किसी की निंदा करोगे, चुगली खाओगे, और दूसरे पर झूठी तोहमत लगाओगे तो उसके तुम्हें भी भविष्य में कडवे फल भोगने पड़ेंगे।

भाई! इन दुर्गुणों को त्यागने में तुम्हें एक पैसा भी खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। फिर इसके लिये तुम्हें अपने मन को मजबूत करना पड़ेगा। अतएव इन दुर्गुणों को छोड़ कर सदाचार की ओर प्रवृत्ति करो। परन्तु मानव के मानस में ये दुर्गुण ऐसे घुस गये हैं कि वह अपनी आदत से लाचार हो गया है और इन्हें छोड़ने की हिम्मत नहीं कर सकता है। वह रोटी तो अपने घर की खाता है परन्तु निन्दा दूसरों की करता है, चुगली दूसरों की खाता है, और झूठा इल्जाम भी दूसरों पर लगा देता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि दूसरों की निंदा चुगली करना पीठ का मांस खाने के समान है। कहा भी है कि:—

चुगली उगली खीर है, काग, कूतरा खाय।
भलो माणस टल नीकले, साम्हो जोवे नाय॥

जैसे किसी ने बड़े ही प्रेम से खीर-खांड का भोजन किया हो परन्तु किसी कारण उसे उल्टी हो जाती है। उस उल्टी को रास्ते से गुजरने वाला भी देखना पसंद नहीं करता। वह भी उस तरफ से

दृष्टि ओझल करके निकल जाता है क्योंकि वह सोचता है कि कहीं इसे देखने से मेरा भी खाया-पिया नहीं निकल जाय। परन्तु उसी वमन किए हुए को काग, कुत्ता वगैरह अवश्य ही कोई न्यामत समझकर खाजाते हैं। तो चुगली खाना, निन्दा करना या झूठी तोहमत लगाना भी सज्जन आदमियों का काम नहीं है। यह तो कुत्ते काग के मानिंद दुर्गुणी मनुष्य का ही काम हो सकता है। इसलिए भाई! बुरी आदतों को छोड़कर अच्छे संस्कार जीवन में धारण करो। ऐसा करने से ही आत्मा की उन्नति संभवित है।

एक चुगलखोर के विषय में किसी कवि ने कितने सुन्दर ढंग से चित्रण किया है! वह कहता है कि—

लखता चूके, वक्ता चूके, चूके पट्टावाज।
न्याय करने में राजा चूके, चूके वैद्य इलाज॥
चूके वैद्य इलाज, नजर बाज भी चूके।
सौ-सौ जूता खाय पण,चुगल खोर नहीं चूके॥

भाई! इस संसार में अपना-अपना कार्य करते हुए हरेक चूक सकता है भूल सकता है। परन्तु अपनी आदत से लाचार होने के कारण एक चुगलखोर चुगली खाने में नहीं चूक सकता। परन्तु ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि उपदेश सुनकर अपनी बुरी आदतों को छोडने की कोशिश करो। यद्यपि भूल होना, चूक जाना स्वाभाविक है तदपि गल्ती को गल्ती समझकर छोड़ने का प्रयत्न करने से ही तो आत्मा का उद्धार हो सकेगा। जैसे एक मुंशी दस्तावेज लिखते हुए कुछ का कुछ लिख सकता है, एक हाकिम भी अपनी न्याय की कुर्सी पर बैठे हुए इन्साफ कुछ का कुछ कर देता है अर्थात्— झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करार दे सकता है, एक वैद्य भी किसी मरीज को भूल

के कारण कुछ की कुछ दवा दे सकता है और एक पट्टेबाज भी पट्टेबाजी में गल्ती कर देता है परन्तु एक चुगलखोर ही संसार में ऐसा व्यक्ति है जो किसी के कितना ही समझाने पर और सौ सौ जूते खाने पर भी अपनी खराब आदत को तिलाञ्जली नहीं दे सकता। अर्थात् मौका आते ही वह दूसरे की चुगली खा ही देता है।

परन्तु ऐसे चुगलखोर की आदत पर एक कवि लानत देते हुए हुए कहता है कि:—

गली गली की तीन लाख, बारह लाख बजार की।
चुगल खोर के मुंह ऊपर; पन्द्रह लाख पैजार की॥

एक चुगलखोर की उक्त दोहे के मुताबिक भी दुर्दशा कर दी जाय परन्तु फिर भी वह अपनी आदत से लाचार होने के कारण उसे छोड़ने में समर्थ नहीं होता। हां, कोई भाग्यशाली को ही सदुपदेश का असर होता है। परन्तु भाई! बुरी [illegible] को भी छोड़ने की कोशिश करनी चाहिए।

तो सद्धर्म में आनन्द [illegible]
अनुभव करते हुए अठारह [illegible]
को जनता में फैलाने वाल [illegible]
है। परन्तु यह गुण भी [illegible]
के उपदेश का भी श्रोता [illegible]
जिनके जीवन में परम [illegible]
द्वारा लोगों से आजीवन [illegible]
आदि सप्त व्यसनों को [illegible]
के द्वारा लोगों को मांग, [illegible]

चीज़ों के सेवन का भी त्याग करवा देते हैं। सरकार भी जिन बुरी आदतों को कानून के द्वारा जनता से छुड़वाने में सफला भूत नहीं होती उन्हीं को सच्चे एवं निस्वार्थी सन्त पुरुष अपने एक-एक प्रवचन के द्वारा तथा अपने सदाचरण के बल पर लोगों के हृदय को जीतकर खुशी २ छुड़वाने में समर्थ हो जाते हैं। क्योंकि किसी की बुरी आदत छुड़वाने के लिए उपदेशक के जीवन में भी सदाचरण आने की परमावश्यकता होती है। उसके सदाचरण को देखकर भी एक बुरी आदतों वाला व्यक्ति मारे शर्म के उस खराब आदत को छोड़ देता है।

देखिए न ! स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० के जीवन का आचरण भी बड़ा जबदस्त था। वे अपनी साधु जीवन की चर्या को निर्मलता से पालन करते थे। उनके सन्निकट रहने वाले भव्य साधु लोग भी उनके आचरण को देखकर घबराते थे और अपनी जीवन चर्या को मन मार कर भी तदनुरूप बनाने की कोशिश करते थे। पूज्य श्री को उन्हें कहने या टोकने की भी जरूरत नहीं पड़ती थी। तो इस दृष्टिगोचर से बीसवां बोल यह बताता है कि तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा फर्माए हुए प्रवचनों का जनता में प्रसार करने, कराने से और लोगों के हृदय से बुरी आदतों को छुड़ाने से भी उत्कृष्ट रसायन आने पर भी तीर्थङ्कर गोत्र की उपलब्धि हो जाती है।

इसलिए मानव को "जैसी करनी वैसी भरनी" वाली कहावत को अपनी नजरों के सामने रखते हुए जीवन में शुभ करनी करके तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने का प्रयत्न करना चाहिए। तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के उक्त बीस बोलों में से एक बोल का भी जिस भव्यात्मा ने

सेवन कर लिया वह संसार के आवागमन के चक्कर से छूटकर अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेगी।

देखो ! अपने ग्यारहवें भव के अन्दर वज्रनाभि मुनिराज के जीव ने जीवानन्द वैद्य के रूप में तपस्वी अणगार की व्यावच्च सेवा की और सेवा करते हुए उन्हें उत्कृष्ट रसायन की प्राप्ति हुई जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया। भाई ! उन्होंने उक्त भव में कौनसा उत्कृष्ट दान दिया था। उन्होंने तो केवल सेवा धर्म को ही अपनाया था। उसी सेवा धर्म के फल स्वरूप उन्होंने तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया।

श्रीमद् उत्तराध्ययनजी सूत्र के उन्तीसवें अध्ययन में तहत्तर बोलों के विषय में फर्माया गया है। अर्थात्—सेवा धर्म के अपनाने से भी तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध होता है। तीर्थङ्कर भगवान ने सेवा धर्म के विषय में कहा है कि:—

प्रश्न—वेयावच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर—वेयावच्चेणं तित्थयर नाम गोत्तं कम्मं निबन्धई ॥

अर्थात्—वैयावृत्य-सेवा करने से तीर्थङ्कर गोत्र की प्राप्ति होती है।

तो चक्रवर्ती वज्रनाभि मुनिराज के छोटे दो भाईयों ने अर्थात बाहु और सुबाहु नाम के मुनिराजों ने आलस्य एवं प्रमाद का त्याग कर दिया। क्योंकि इस शरीर का शत्रु आलस्य और प्रमाद है। यह शत्रु जिस आत्मा के पीछे लग जाता है तो वह मनुष्य न तो सांसारिक क्षेत्र में ही प्रगति कर सकता है और न आध्यात्मिक क्षेत्र में ही

तरक्की कर सकता है। अतएव आत्मोन्नति के इच्छुक को आलस्य का त्याग कर सेवा क्षेत्र में अग्रसर होना चाहिए। भाई! आप लोग भी हमेशा प्रतिक्रमण में साधु वन्दन में बोलते हैं कि साधु कैसे होते हैं? तो वहां कहा गया है कि:—

पाप-पंथ परहरे, मोक्ष-मार्ग पग धरे,
अभिमान नहीं करे, निन्दा को निवारी है।
संसारी को छोड़े संग, आलस्य नहीं छे अंग,
कर्मां सेति करे जंग, मोटा उपकारी है॥
मन मांहे निर्मल, जैसो है गंगा को जल,
काटत करम दल, नव-तत्त्व धारी है।
भणे मुनि चन्द्रभाण, सुनो हो विवेकवान,
ऐसे मुनिराज ताकों, वन्दना हमारी है॥

उक्त कविता में कवि ने साधु के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए यह भी विशेषण बताया है कि सन्त पुरुषों के शरीर पर आलस्य नहीं होता। वे सदैव प्रमाद रहित होते हैं। क्योंकि जो आलसी होता है वह अपने व्रतों का पालन भली प्रकार नहीं कर सकता। उससे सेवा धर्म भी नहीं हो सकता।

हम आपको आलसी मनुष्य के विषय में एक दृष्टान्त सुनाते हैं जिसे शायद आप लोगों ने पढ़ा और सुना भी होगा। वह इस प्रकार है:—

किसी समय एक आलसी मनुष्य ग्रीष्म ऋतु में घर से निकल कर एक बेर के वृक्ष के नीचे सो गया। ज्यों ही हवा जोरों से चली कि बेर वृक्ष से पृथक होकर उसके शरीर पर जहां-तहां गिर पड़े।

बेरों के शरीर पर गिरने से उसकी निद्रा भंग हो गई। उसने आंख खोलकर देखा तो मालुम हुआ कि उसके शरीर पर मीठे मीठे बेर पड़े हुए हैं। परन्तु वह आलसी इतना था कि बेर भी उससे उठाये नहीं जा सकते थे। वह इसी विचार में ही था कि उधर से कोई ऊँट सवार जाता हुआ उसे दिखाई दिया। उसकी तरफ दृष्टि पड़ते ही उसने उससे कहा—भाई! तुम जा तो रहे ही हो परन्तु मेरी भी थोड़ी सी सेवा करते जाओ।

उस व्यक्ति ने सेवा कार्य शब्द सुनते ही बड़े आश्चर्य से पूछा कि भाई! मेरे योग्य क्या सेवा हो सकती है।

तब इस आलसी व्यक्ति ने कहा कि भाई! मैं तुम्हें कोई विशेष तकलीफ देने के लिए नहीं बुला रहा हूँ। परन्तु एक छोटा सा कार्य है कि जो बेर मेरे शरीर पर पड़े हुए हैं उन्हें मेरे मुंह में डाल दो।

इतना सुनते ही उस ऊँट सवार ने कहा कि अरे आलसी! तुझ से इतना सा भी काम नहीं हो सकता? जब तू अपने शरीर पर पड़े हुए बेरों को भी उठा कर नहीं खा सकता तब तू औरों के प्रति क्या उपकार कर सकता है।

अब उस आलसी ने अपने प्रति आलसी का टाइटल सुना तो उससे भी नहीं रहा गया और उसके प्रत्युत्तर में उसने फौरन उससे कहा कि भाई! मैं आलसी हूँ या तुम? अरे! मैं तो सो रहा हूँ परन्तु तुझ से तो ऊँट से भी नीचे नहीं उतरा जाता! तब तूं तो मुझ से भी अधिक आलसी हुआ न!

तो भाई ! यह तो जन-साधारण को समझाने के लिए एक दृष्टान्त दिया है। यदि यह सत्य घटना हो तो क्या और असत्य हो ! तब भी क्या है ! परन्तु हमको तो इस दृष्टान्त से यही शिक्षा लेनी है कि चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ किंतु जिसके भी जीवन में आलस्य प्रमाद होता है वह अपने और पराए के लिए भी कोई उन्नत कार्य नहीं कर सकता। हां ! जो आलस्य से रहित हो जाता है और कर्मठ चुस्त बन जाता है वही सब कुछ कर सकता है। उस कर्मठ पुरुष के लिए मुश्किल से मुश्किल कार्य भी आसान हो जाता है।

तो उन बाहु तथा सुबाहु मुनियों ने भी अपने जीवन में आलस्य को स्थान नहीं देते हुए पुरुषार्थी बन कर ग्यारह ही अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करने के पश्चात उन्होंने जीवन में सेवा धर्म को अपनाया। उन्होंने पांच सौ मुनिराजों की सेवा करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। जैसे मुनिराजों के लिए आहार पानी की व्यवस्था करना है, व्यावच्च करना है या अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। तो वे दोनों मुनिराज बड़े उल्लास मन से सब कार्य करते हुए अपने जीवन को धन्य धन्य मानने लगे। भाई ! जो कार्य करने में कुशल होता है। जिसके शरीर पर स्फूर्ति होती है और सेवा धर्म को जीवन में मुख्य धर्म समझता है उसी से सेवा कार्य हो सकता है और गुरु-जन भी उसे ही सेवा धर्म बताते हैं। तो वे दोनों मुनिराज बड़े पुरुषार्थी थे और प्रत्येक साधु के बताए हुए कार्य को बड़े ही प्रसन्न मन से करते थे।

इस प्रकार वे शुद्ध अन्तः करण से सेवा कार्य करते हुए अपने संयमी जीवन में विचरण करने लगे। अब उन्हें सेवा धर्म के बदले क्या परम लाभ की प्राप्ति होती है यह आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा।

जो मानव आलस्य को त्याग कर शुद्ध अंतः करण से देश, जाति, धर्म, समाज और राष्ट्र की सेवा करेंगे और शुभ करनी करने में अपने जीवन के क्षण व्यतीत करेंगे वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलोर (केन्टोन्मेन्ट)
ता० ८-८-५६
शनिवार



:: मानव जीवन की सार्थकता ::

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजाल ॥

卐

चौरासी लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करने के पश्चात् मानव जीवन की प्राप्ति होती है। इसकी प्राप्ति के लिए आत्मा को पूर्व जन्मों में जप, तप, संयम एवं शुभ करनी करनी पड़ती है। शुभ करनी किए बिना मानव-जीवन का प्राप्ति होना अशक्य है। परन्तु प्राप्त मानव जीवन की सार्थकता के रहस्य को विरले ही मनुष्य समझ पाते हैं। इसका सदुपयोग करना प्रत्येक इन्सान की शक्ति से परे की चीज है। हां! पुण्योदय से जिस आत्मा को सन्त समागम, सत्संगति तथा सन्त प्रवचनादि का सुयोग प्राप्त हो जाता है वही मानव जीवन की सार्थकता के गुप्त रहस्य को समझ कर इसे सार्थक बनाने का प्रयत्न कर सकता है। जिस आत्मा को संसार में ही चक्कर लगाना है उसकी आत्मा से साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान जैसे धर्मावतारी के शुभ दर्शन एवं धर्मोपदेश श्रवण करने का सुलभ प्राप्त हो जाने पर भी मिथ्यात्व का जहर नहीं उतर पाता और वह

तेलिया घड़े के सदृश्य सूखा का सूखा ही बना रहता है। वह अपने जीवन को सार्थक बनाने में नाकामयाब सा रहता है। अतएव दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त कर इसको सार्थक बनाने का भरसक प्रयत्न करना प्रत्येक भव्यात्मा का परम कर्त्तव्य है। मानव जीवन की सार्थकता इसी में है कि इस जीवन में सन्त समागम में आकर उनके कथनानुसार धर्माराधना करते हुए वह शुभ करनी की जाय ताकि भविष्य में पुनः करनी करने की आवश्यकता ही न रहे और पंचम गति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाय। तो मेरा आप लोगों से यही आग्रह पूर्वक कहना है कि आप लोगों को सहज भाव में यह मानव जीवन प्राप्त हो गया है तो इसे सार्थक बनाने का अभी से सद्प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिए ताकि आपका भविष्य भी समुज्ज्वल बन सके।

भाई! भक्तामर स्तोत्र के उक्त बाईसवें श्लोक में भी मानव जीवन को सार्थक बनाने वाले भगवान ऋषभदेव की महामहिम गुण स्तुति करते हुए आचार्य मानतुंग कह रहे हैं कि हे भगवान्! इस संसार में सैंकड़ों स्त्रियां. सैंकड़ों ही पुत्रों को जन्म देती है परन्तु आप जैसे सुपुत्र को जन्म देने वाली माता दूसरी नहीं है। सो ठीक ही है। क्योंकि सम्पूर्ण अर्थात् आठों दिशाएं नक्षत्रों को धारण करती है परन्तु देदीप्यमान है किरणों का समूह जिसका, ऐसे सूर्य को एक पूर्व दिशा ही उत्पन्न कर सकती है।

जिस प्रकार आठों ही दिशाओं में नक्षत्र, तारे टिमटिमाते हैं। ये कभी उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम में उदित होते हैं। तो ये दिशाएं-विदिशाएँ नक्षत्रों, तारागणों को धारण करता हैं। परन्तु देदीप्यमान हैं किरणों का समूह जिसका ऐसे दिनकर को तो धारण करने वाली केवल प्राची दिशा ही है। उस देदीप्यमान सूर्य के उदित

होते ही सभी नक्षत्र तारे फीके से नजर आने लगते हैं या यों कहिए कि उनका अस्तित्व ही एक तरह से नष्ट होता हुआ सा मालूम पड़ने लगता है। इसी प्रकार हे नाथ ! इस दुनिया में हजारों, लाखों माताएँ पुत्रों को जन्म देती हैं परन्तु भगवान ऋषभदेव को जन्म देने वाली तो एक ही माता मरुदेवी हैं। उस प्रभाव शाली सूर्य के समान पुत्र ने संसार में अपने नाम के साथ-साथ अपने माता-पिता का भी नाम रोशन कर डाला।

भाई ! भगवान ऋषभदेव का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन हुआ था। तीर्थङ्कर भगवान का जन्म होते ही निश्चित समय पर चौंसठ इन्द्रों का आगमन हुआ। वे सब देवी-देवता मिलकर जन्म जात शिशु को पंडग वन में ले जाकर भगवान का जन्म महोत्सव मनाते हैं। तत्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीप में भी जाकर तीर्थङ्कर भगवान का अट्ठाई महोत्सव मनाते हैं।

माता मरुदेवी भी अपने दर्शनीय, भाग्यवान पुत्र को देखकर बड़ी प्रसन्न होती हैं। वे तो पुत्र जन्म की खुशी में प्रसन्न होती ही हैं परन्तु तीर्थङ्कर भगवान का दीदार देखने के लिए, जन्म महोत्सव मनाने तथा जन्म सम्बन्धी प्रत्येक कार्य करने के लिए देवलोक से इंद्र-इंद्राणियां, देवी-देवता तथा छप्पन दिशा कुमारिएं भी आकर खुशी में शामिल होते हैं। वे सब मिलकर क्या करते हैं इस विषय में स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने सुन्दर ढंग से अपने भजन में विशद् वर्णन किया है कि—

इन्द्र, इन्द्राणी आई प्रेमधर गोदी में लेवे,
हसे, रमावे करे प्यार दिल की रलियां रेले ॥ १ ॥
ऋषभ कन्हैया लाला आंगना में, रुम-झुम खेले,
आंखियन का तारा प्यारा आंगना में, रुम-झुम खेले ॥टेक॥

रतन पालणिये माता, लालने झूलावे झूले ।
करे लल्ला से अति प्यार, नहीं वो दूरी मेले ॥ २ ॥

स्नान कराई माता, लाल ने पहिनावे मेले ।
गले मोतियन का हार, मुकुट सिर पर मेले ॥३॥

गुरु प्रशादे मुनि चौथमल, यूं सब से बोले ।
नमन करो हर वार, वो तिर्थङ्कर पहिले ॥ ४ ॥

भाई ! जन्म जात बालक भ० ऋषभदेव को इन्द्र-इन्द्राणियां आकर अपने अपने गोद में लेते हैं। वे सब बालक को निरखते हैं, हंसी करते हैं, खिलाते हैं, प्यार करते हैं तथा अपने दिल के आनन्द को पूर्ण करते हैं। बालक का जन्म महोत्सव मनाते हैं।

माता मरुदेवी अपने लाडले सुपुत्र को स्नान कराती है, सुन्दर वस्त्रों को धारण कराती है, सिर पर रत्न जटित मुकुट धारण कराती है, गले में बेश कीमती मोतियों का हार पहिनाती है, तथा रत्न जटित स्वर्ण पालने में झुला कर बड़ी प्रसन्न होती है। तो ऐसे भगवान ऋषभदेव को जन्म देने वाली एक ही मरुदेवी माता थी। उनके अतिरिक्त दूसरी माता भारत-वर्ष में नहीं थी।

देखिए ! ऐसे भाग्यशाली अद्वितीय पुत्र के जरिए संसार में माता मरुदेवी भी धन्य धन्य हो गई। क्यों न हो धन्य जबकि उन्होंने भ० ऋषभदेव जैसा पुत्र प्राप्त कर लिया।

एक कवि इसी विषय में संसार की माताओं को संबोधन करते हुए कह रहा है कि:—

जननी जने तो भक्त जन, के दाता के सूर।
नहितर रहीजे बांझडी, मती गमाजे नूर॥

भाई ! कवि ने भी संसार की माताओं को संबोधन करते हुए उन्हें चेतावनी दे दी है, उन्हें आगाह और सावचेत कर दिया है कि हे माताओं ! यदि तुम्हें पुत्र ही उत्पन्न करना हो और पुत्र के मुख कमल को देखने के लिए लालायित हो रही हो तो भले ही पुत्र उत्पन्न करो। परन्तु मेरी एक अर्जी को ध्यान में रखना कि तुम ऐसे पुत्र को जन्म देना जो ईश्वर भक्त हो, दातार हो या शूरवीर हो। यदि ऐसे पुत्र को जन्म देने की तुम्हारे अंदर शक्ति न हो तो इससे बहतर यही है कि तुम बांझ (वन्ध्या) कहलाना तो स्वीकार कर लेना परन्तु चोर, जुआरी, शराबी, कबाबी, वैश्यागामी, परस्त्रीगामी, गुण्डे, बदमाश, अधर्मी या अपने तथा अपने माता-पिता के नाम को बदनाम करने वाले पुत्र को प्रसव मत करना।

और भी किसी कवि ने कहा है कि:—

शेरनी एक हि सुत जने, विपिन गजावनहार।
खरी खरा सा दस जने, वहे मिट्टी को भार॥

अरे ! शेरनी तो अपने जीवन में एक ही जोड़े को जन्म देती है परन्तु वह भी अपने समान बलवान पुत्र को जन्म देती है जो जंगल में राजा के रूप में जानवरों पर शासन करता है। उसकी एक दहाड़ पर जंगली जानवर दुम दबा कर झाड़ियों में छिप जाते हैं। जब कि इसके विपरीत एक गधेड़ी दस पुत्रों की माता कहलाने की अधिकारिणी क्यों न बन जाय परन्तु उसके भाग्य में तो अपने पुत्रों सहित मिट्टी का भार ही वहन करना लिखा है। तो मेरा भी आप गुणवान माताओं से यही शिक्षा रूप में कहना है कि आप, भी गुणवान सदाचारी, और नीतिपरायण धर्मात्मा पुत्र को ही जन्म दें जिससे वह अपना तथा आपका नाम पृथ्वी तल पर उज्ज्वल कर सके।

भाई ! आज वर्तमान कॉंग्रेस सरकार भी इस बढ़ती हुई प्रजा के निरोधन के लिये समस्त भारतवर्ष में संतति नियमन केन्द्रों की स्थापना कर रही है। क्योंकि आज खाद्यान्न की समस्या बड़ी जटिल होती जा रही है। जब कि भारतवर्ष की जनसंख्या में भेड़ बकरियों की तरह अभिवृद्धि होती जारही है। इस कीड़े मकोड़ों की तरह जन संख्या बढ़ते जाने के कारण ही खाद्य मंत्रियों के मस्तिष्क में यह उपाय आया है जिससे परिवार सुखी हो सकें और खाद्यान्न की जटिल समस्या को सुलझाई जा सके। एक दो संतानों का होना तो आवश्यक है परन्तु बाड़े के रूप में परिवार में संतानों को भर जाना परिवार तथा देश के लिए भार स्वरूप है। इसलिये सरकार के बोझ को हलका करना आप सबका परम कर्तव्य है। इससे आप भी सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे और देश भी समृद्धिशाली बन सकेगा। परन्तु मैं आपको यह सलाह दूंगा कि यदि आप अपने घर में भाग्यशाली, बलवान, धर्मिष्ठ तथा यशस्वी पुत्र के दर्शन करने के इच्छुक हैं तो आपको अपने जीवन में संयम से रहना चाहिये। संयमी जीवन बिताने से आप जैसी संतान चाहेंगे वैसी ही उत्पन्न हो सकेगी। परन्तु असंयम से रहने पर रोगी, दरिद्री, निर्धन और दुर्भाग्यशाली संतान ही पैदा होगी जिससे आप तथा आपका परिवार सदैव दुख के चक्कर में ही फँसा रहेगा।

तो कवि भी इसलिये चेतावनी देकर कह रहा है कि हे माता ! तू शूरवीर, दानवीर या धर्मात्मा पुत्र को ही जन्म देना अन्यथा वन्ध्या ही रह जाना क्योंकि गुणवान पुत्र से तो तेरा भी संसार में यश प्रसारित होगा और दुनियां उस पुत्र के गुणों को देख कर तुझे भी धन्यवाद देगी कि धन्य है उस माता को जिसने ऐसा भाग्यवान पुत्र जाया। भाई ! ऐसे महापुरुष थोड़े ही होते हैं जिनका संसार प्रातःकाल उठते ही नाम लेता है। ऐसे ही मरुदेवी-नन्दन

भगवान ऋषभदेव थे जिन्होंने मानव जीवन को सार्थक किया। उन्हीं भगवान को हमारा सबसे पहिले नमस्कार है।

भाई! आज आपके समक्ष उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान की मानव जीवन को सार्थक बनाने वाली वाणी के विषय में कुछ सुनाने जा रहा हूँ। परम जन कल्याणकारी वाणी का संग्रह निकटवर्ती गणधरों व आचार्यों ने किया। वही संग्रहीत वाणी आज हमारे सामने बत्तीस सूत्रों के रूप में मौजूद है।

उसी द्वादशांगीवाणी में से मैं यहां ग्यारहवें अंग विपाक-सूत्र के संबन्ध में प्रकाश डाल रहा हूँ। उस विपाक-सूत्र के दुख-विपाक-सूत्र के प्रथम अध्ययन के विषय में आपके सामने प्रकाश डाला जा चुका है। अब आज दूसरे अध्ययन के विषय में सुनाने जा रहा हूँ।

भगवान आर्य सुधर्मा स्वामी से उनके परम शिष्य जंबू स्वामी ने विनय सहित प्रश्न किया है कि हे भगवान्! आपने श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी के द्वारा अपने पट्टधर शिष्य भगवन गौतम स्वामी को फर्माए हुए दुख-विपाक-सूत्र के प्रथम अध्ययन के भाव तो फर्मा दिए हैं। परन्तु अब कृपा कर उक्त सूत्र के दूसरे अध्ययन के भाव तो फर्माइए। अपने शिष्य के मुंह से जिज्ञासा भाव को सुनकर भगवान सुधर्मा स्वामी ने फर्माया कि हे जम्बू! उस काल और उस समय में वाणिज्य नाम का नगर था। वह सब प्रकार से ऋद्धिशाली था। उस नगर के लोगों का जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत हो रहा था। जिस नगर के नागरिकों का जीवन सुख-समृद्धि से युक्त होता है तो वहां के लोग भी अक्सर बोलते हैं कि "यहां तो सात वार और आठ त्यौहार मनाए जाते हैं।" अर्थात्—सब लोग खुशहाल थे। उन लोगों को राजा की तरफ से भी लूट नहीं थी, दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था

और भयंकर बीमारियों का प्रकोप भी नहीं था। अतएव सब सुख पूर्वक जीवन बसर कर रहे थे।

उसी नगर के उत्तर-पूर्व के भाग के ईशान कोण में द्युतिपलाश नाम का उद्यान था। उस उद्यान में एक तरफ सुधर्म नाम के यक्ष का यक्षायतन था। चूंकि उस मन्दिर में उक्त देवता की मूर्ति थी अतएव उसकी सेवा, पूजा भी बड़े धूम-धाम से उत्साह पूर्वक हो रही थी।

उस नगर में मित्र नाम का राजा राज्य करता था। वह प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए शासन करता था। उसके श्रीदेवी नाम की महारानी थी। श्रीदेवी महारानी के हाथ-पैर के तलवे बड़े ही सुकोमल थे। वह रूपवती के साथ-साथ उत्कृष्ट गुणों से युक्त भी थी।

उसी नगर में कामधजा नाम की एक गणिका भी निवास करती थी। उस वैश्या के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शास्त्रकार फर्माते हैं कि वह पाचों इन्द्रियों से पूर्ण थी। वह अत्यधिक सुन्दर थी। उसमें अनेक गुण विद्यमान थे। वह पुरुष की बहोत्तर कलाओं में तथा स्त्री की चौसठ कलाओं में भी प्रवीण थी। वह इकतीस प्रकार के गुणों से पुरुष के साथ रमण करने में दक्ष थी तथा पुरुष के बत्तीस प्रकार के उपचारों में भी निपुण थी। वह पुरुष को बड़ी होशियारी से अपने वश में कर लेती थी। यही नहीं परन्तु वह पुरुष के नौ ही सुप्त अंगों को विकार भाव में लाने में होशियार थी। अर्थात्—वह कोकशास्त्र की जानकार थी। इसके अतिरिक्त वह अठारह ही देशों की भाषाएं जानती थी। आज से पच्चीस हजार वर्ष पहिले अठारह ही देशों की भाषाएं यहां प्रचलित थीं। जो वह

गणिका उन भाषाओं में विशारद थी। वह शृंगार का घर थी और मनोहर वेष को धारण करने वाली थी।

वह आनन्द की बातें करने में, नृत्यकला में तथा वाद्ययन्त्र बजाने में भी कुशल थी। वह संगीत कला में प्रवीण थी। भाई! श्रीमद् ठाणांगजी सूत्र के सातवें ठाणे में पैंतीस गाथाएं ऐसी आती हैं जिनमें सात स्वर तथा उसके भेद, प्रभेद, गुण और दोषों के विषय में विशद् वर्णन किया गया है तो वह गणिका उन सब में कुशल थी।

संगीत उसका ही प्रामणिक माना गया है जो स्वरों के भेद प्रभेद अच्छी तरह जानता हो। भाई! मुख्य रूप से संगीत शास्त्र में छः राग माने गए हैं। प्रत्येक राग के अन्तर्गत पांच-पांच रागनियां हैं। इस प्रकार से कुल तीस भेद होते हैं। परन्तु इनके भेदानुभेद करने से मानव धर्म संहिता नामक पुस्तक के अनुसार कुल बहोत्तर हजार भेद प्रभेद माने गए हैं।

संसार में संगीत को भी वशीकरण मन्त्र माना गया है। संगीत कला में प्रवीण मनुष्य चाहे जिसको वश में कर सकता है। चार वेदों के अतिरिक्त पाचवां वेद संगीत को भी माना है। तो वह वेश्या उन राग-रागनियों के भेद प्रभेद को जानने वाली थी। वह यह भी अच्छी तरह जानती थी कि किस मौसम और किस समय में कौनसा राग और कौनसी रागिनी गाई जानी चाहिए। इन राग-रागनियों में अद्भुत शक्ति छिपी हुई है। उस अदृश्य एवं अद्भुत शक्ति को वास्तविक संगीत का पुजारी ही प्रस्फुटित कर सकता है। जैसे दीपक राग को गाते ही बुझे हुए दीप पुनः अपने आप प्रज्वलित हो उठते हैं। इसी प्रकार हिण्डौल राग गाने से झूला भी अपने आप चलने लगता है और मल्हार राग गाते ही उमड़-घुमड़ कर

मेघ मूसलाधार वर्षा करने लगते हैं। इसी तरह मालकोष राग, भैरव राग तथा श्री राग के भी गुण अलग २ हैं। तो वह वैश्या उक्त राग अपनाने में प्रवीण थी। वह मिष्ट भाषण करने तथा लोक व्यवहार साधने में भी बड़ी होशियार थी।

जैसे कि किसी कवि ने लोक व्यवहार के विषय में कहा है कि:-

आया ने आदर करे जाता ने जीकार।
मिलियां हंस कर बोलवो, उत्तम कुल आचार॥

अर्थात् घर या दूकान पर आए हुए अतिथि का यदि मीठे वचनों द्वारा सत्कार कर दिया जाता है, जाते हुए व्यक्ति को नम्रता पूर्वक पुनः दर्शन देने के लिये कहा जाता है और प्रसन्नता पूर्वक बात चीत की जाती है तो आगन्तुक के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ जाता है। यह भी लोक विनय कहलाता है। लोक विनय को जानने वाला व्यक्ति जहां भी जाता है उसका भी यथोचित आदर सत्कार किया जाता है। प्रत्येक सम्मान प्राप्त व्यक्ति जहां तहां उस व्यक्ति की प्रशंसा करता है। तो वह वैश्या लोक व्यवहार में भी कुशल थी।

आप सदैव देखते ही हैं कि जो मनुष्य किसी के यहां से आदर सत्कार प्राप्त करके आता है वह उस व्यक्ति के लोक व्यवहार से प्रभावित होकर अन्य व्यक्तियों के सामने उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है कि "अमुक सज्जन तो बड़े ही व्यवहार कुशल हैं"। परन्तु इसके विपरीत यदि उस व्यक्ति का किसी के यहां जाने पर यथोचित सन्मान नहीं हो पाता है तो वही व्यक्ति दूसरों के सामने कहता हुआ सुनाई देता है कि "काहे का सेठ है! वहां तो 'नाम बड़े और दर्शन खोटे' वाली ही कहावत चरितार्थ होती है। उसके यहां जाने में कोई आनन्द नहीं आया।"

तो वह गणिका अपने घर आए हुए महमान का आतिथ्य-सत्कार करके अपने मीठे वचनों द्वारा प्रभावित कर लेती थी। अब उस वैश्या के अंगोपांगों के विषय में जिक्र करते हुए शास्त्रकार फर्माते हैं कि उस वैश्या के हाथ, पैर, आंख, नाक, कान, गर्दन, स्तन, कटि, और गुप्त स्थान वगैरह सभी अवयव सुन्दर थे। वह दर्शक का मन मोह लेती थी। उसके घर पर ध्वजा लग रही थी। वह एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ देने वाले श्रीमंत व्यक्ति के साथ ही रमण करना पसंद करती थी। उसको राज्य की ओर से भी सन्मान प्राप्त था। राजा की तरफ से उसे छत्र, चंवर, रथ, पालकी और मोर छंगा वगैरह मिले हुए थे। वह कई गणिकाओं की अधिनायिका थी। अर्थात्—अन्य गणिकाएँ उसकी आधीनता में रहती हुई उसकी आज्ञा का पालन करती थीं। इस प्रकार वह कामधजा नाम की सर्वगुणसम्पन्ना गणिका दूसरों पर अपना हुक्म चलाती हुई आनन्द पूर्वक विचरण कर रही थी।

उसी नगर में विजय नाम का एक सार्थवाह भी रहता था। वह भी बड़ा ऋद्धिशाली था। भाई! सार्थवाह वह कहलाता है जो जहाज के द्वारा विदेशों में व्यापार के निमित्त जाता है। वह रवाना होने से पहिले अपने नगर में ढिंढोरा पिटवा देता है कि जो भी नागरिक विदेश में व्यापार के निमित्त उसके साथ चलना चाहें वे चल सकते हैं। सार्थवाह उन सब अनुगामियों को अपनी तरफ से भोजन देगा। यही नहीं परन्तु वह उन्हें व्यापार के निमित्त धनराशि भी देगा। उक्त धन राशि का व्याज नहीं लिया जाएगा तथा मुनाफे का हिस्सा भी नहीं लेगा। यदि मूल पूंजी में भी किसी तरह घाटा आ जाएगा तो उसे भी वह बर्दाश्त करेगा। इस प्रकार सैंकड़ों मनुष्यों को अपने साथ विदेश यात्रा में व्यापार के निमित्त ले जाने वाला व्यक्ति सार्थवाह कहलाता है।

इस विजय सार्थवाह के सुभद्रा नाम की रूपवती तथा पतिव्रता पत्नी थी। उन दोनों से उत्पन्न पुत्र का नाम उज्झितकुमार रखा गया था। वह भी इंन्द्रियों से परिपूर्ण तथा आकर्षक चेहरे वाला था।

तदन्तर उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी जिनकी आज्ञा में रहने वाले चौदह हजार गुणवान मुनिराज थे, वे अपने मुख्य गणधर भगवान गौतम स्वामी के साथ उस वाणिज्य नगर के बाहर द्युतिपलाश नाम के उद्यान में बनमाली की आज्ञा लेकर विराजमान हुए।

भगवान महावीर के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही उक्त नगर की प्रजा हजारों की संख्या में भगवान के दर्शनार्थ गई। मित्र राजा भी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजसी ठाठ बाट के साथ भगवान के दर्शनार्थ उक्त उद्यान में पहुंचा। जिस प्रकार राजा कोणिक चंपा नगरी से निकल कर पुण्य भद्र उद्यान में सज धज कर भगवान महावीर के दर्शनार्थ गया था उसी प्रकार मित्र नाम का राजा भी गया।

समवसरण में प्रवेश करते ही राजा तथा प्रजा ने भगवान महावीर को विधि सहित वन्दन नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे सब यथा स्थान भगवान का धर्मोपदेश श्रवण करने को बैठ गया।

श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने आई हुई परिषद् को धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया। भगवान ने अपने मुखाविन्द से मानव-जीवन की सार्थकता पर प्रवचन फर्माया। उन्होंने कहा कि हे भव्यात्माओं! यह मानव का शरीर बार बार प्राप्त होने वाला नहीं है। आपको असीम पुण्योदय से यह मानव का शरीर प्राप्त हो गया है अतएव

इसकी सार्थकता के रहस्य को समझ लेना नितान्त आवश्यक है। यही मानव शरीर तुम्हें एक दिन नर से नारायण और कंकर से शंकर बना देने की शक्ति रखता है बशर्ते इस शरीर से शुभ करनी की जाय। देखो! गंगा, यमुना, नर्बदा आदि महान नदियों के प्रवाह के साथ साथ पहाड़ों से कई छोटे मोटे पत्थर भी लुढकते हुए आजाते हैं। वह पत्थर भी नदी के प्रवाह के साथ आगे बढते जाते हैं। इस प्रकार वे पत्थर लुढकते लुढकते एक दिन गोलाकार में परिवर्तित हो जाते हैं। वे ही गोल-मटोल पत्थर जब नदी के वेग में आगे बढते हुए किसी तीर्थ स्थान की तरफ आते हैं तो उन तीर्थ स्थानों में स्नान करके अपने आपको पवित्र बनाने वाले भक्त लोगों की दृष्टि उन गोल मटोल पत्थरों पर पडती है तो वे उन्हें बडे ही प्रेम एवं भक्ति से उठा लेते हैं। उन्हीं पत्थरों को वे भक्त जन शानो शौकत के साथ मन्दिरों में शालिग्राम की मूर्तियों के रूप में स्थापित कर सदैव अर्चना पूजा करते हुए अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

तो भाई! जैसे वे ऊबड़-खाबड़ पत्थर ठोकरें खाते खाते एक दिन सबके पूज्यनीय बन जाते हैं। इसी प्रकार आप सब की आत्मा भी चौरासी लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करते हुए और विभिन्न योनियों में महान कष्टों को सहन करते हुए आज मानव रूप में शालिग्राम सदृश बन गई है। अब तो केवल शालिग्राम के गुणों को धारण करना ही शेष रह गया है। वास्तव में यह आत्मा शालिग्राम तभी बन सकेगी जबकि आप इस मानव जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु यदि आप इस मानव जीवन को प्राप्त कर लेने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझ कर निष्क्रिय हो जायेंगे और इसी में ही संतुष्ट होकर खाने पीने तथा ऐशोआराम में जीवन को समाप्त कर देंगे तो फिर शालिग्राम नहीं बन सकेंगे। चूंकि यह मानव जीवन नर से नारायण बनने के लिए प्राप्त हुआ है अतएव

इससे उसी के अनुरूप कर्त्तव्य करो। परन्तु अधिकांश दुनिया इस मानव जीवन को प्राप्त करके भी इसे धर्माचरण में लगाने के बजाय पापाचरण में व्यतीत करती जा रही है। यह मानव अपने जीवन को नारायण बनाने की रसायन सीखने के विपरीत तांबे से सोना बनाने की रसायन सीखने को ही विशेष महत्त्व दे रही है। परन्तु किसी कवि ने सुन्दर ढग से दुनिया के लोगों को चेतावनी देते हुए कहा है कि:—

ताम्बे से सोना बने, वह रसायन मत सीख।
नर से नारायण बने, वह रसायन सीख॥

अर्थात्—हे मानव ! तू ताम्बे से सोना बनाने की रसायन को सीख कर अपने जीवन को बर्बाद मत कर। यदि तुझे रसायन ही सीखनी है तो नर से नारायण बनाने की रसायन ही सीख ले जिससे भविष्य में तू जन्म-मरण के चक्कर से छूट सके। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन है परन्तु फिर भी पुरुषार्थ करते रहने से यह मुश्किल भी आसान हो जायेगी और एक दिन तू इस साधना में सिद्धि प्राप्त कर लेगा। क्योंकि जो दुखों के पहाड़ों को साहसी बनकर पार कर लेता है वह एक दिन सुख के खजाने को भी प्राप्त कर लेता है। भाई ! दुख उठाने के पश्चात् ही सुख की प्राप्ति होती है।

इसी प्रसंग पर मुझे एक बात याद आ रही है जिसे यहां कह देना उचित समझता हूँ। देखो ! एक समय एक बड़े घर की सेठानी सोने के जेवरों से लदी हुई अपने सिर पर पानी से भरा हुआ घड़ा लेकर अपने घर की ओर जा रही थी। वह ज्यों ही बाजार में से होकर निकली त्योंही एक व्यक्ति की नजर उस सेठानी के सिर पर रखे हुए घड़े की तरफ पड़ी। उसने उस घड़े को देखते ही सहज भाव

में अपने आप कहा---"देखो! इस मिट्टी के घड़े ने भी ऐसा कौनसा पुरुषार्थ किया है, कौनसा त्याग एवं बलिदान किया है जिससे यह सेठानी के सिर पर रखा हुआ फूला नहीं समा रहा है ?"

उस व्यक्ति के उक्त शब्दों को सुनकर उस घड़े से भी अपने भूतकाल के जीवन के उत्सर्ग, त्याग एवं बलिदान की गाथा सुनाए बिना नहीं रहा गया। उसने उक्त व्यक्ति के प्रश्नोत्तर में कहा कि ऐ जिज्ञासु व्यक्ति! तू मेरे भूतकाल के बलिदान की कहानी सुन लेगा तो तुझे मालूम हो जाएगा कि मैंने भूतकाल में जो जीवन में कष्ट उठाए हैं उसीके फलस्वरूप आज मैं सेठानी के सिर पर चढ़कर फूला नहीं समा रहा हूँ। यदि तू भी मेरी तरह अपने जीवन को दुख की आग में झोंक देगा तो तू भी एक दिन दुनियां में चमक जाएगा। ले सुन! मेरी जीवन गाथा —

पहिले मैंने कुल तजा, रासभ भये सवार।
कुट पीट सुघो कियो, दियो चाक पर डार ॥१॥
शीश काट भू पर धरा, सही शीत अरू धूप।
लोक उघाड़े घर दियो, निकल्यो अधिक अनूप ॥२॥
धणी ग्राहक दोनों मिल्या, लीनो टोक बजाय।
इतना संकट में सह्या, धरयो शीश पर आय ॥३॥

हे भद्र पुरुष! मेरे पूर्व जीवन का इतिहास इस प्रकार है कि सबसे पहिले मेरा जीवन खदान में मिट्टी के रूप में था। मैं उस जीवन में भी अपने आपको सुखी मान रहा था। परन्तु यह सुख क्षणिक था। स्थायी नहीं था। एक दिन एक कुम्हार की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। मेरे सुखी जीवन को वह सहन नहीं कर सका। वह अपने गधे पर गेंती-फावड़ा रखकर मेरी तरफ चला आया। उसने गेंती से

मेरी छाती को छील दिया। मेरा जीवन अब टुकड़ों में विभक्त हो गया। फिर उसने बिखरे हुए जीवन को फावड़े से तगाड़ी में भरकर गधे की गूण में भर दिया। यद्यपि मेरा जीवन बिखर चुका था तदापि गधे की पीठ पर चढ़ा हुआ मैं बड़ा प्रसन्न हो रहा था। परन्तु यह प्रसन्नता भी क्षणिक थी। ज्यों ही वह मुझे अपने घर पर ले गया त्यों ही उसने मुझे आंगन में जोर से पटक दिया। हालांकि मुझे तकलीफ तो बहुत हुई परन्तु मैं असहाय था। उस कष्ट को भी सहनशीलता की मूर्ति बन कर बर्दास्त कर गया।

दूसरे दिन उस कुम्हार और उसकी कुम्हारिन ने अपने बच्चों के साथ मुझ पर लकड़ी के बने हुए मोटे २ सोटों से प्रहार करना शुरु कर दिया। उन्होंने मेरा यहाँ तक बदतर हाल बना दिया कि मेरे शरीर के कण-कण ही बिखेर दिए। मैं उस दर्दनाक स्थिति में भी पड़ा-पड़ा सिसक रहा था। परन्तु उस पापी को इतने पर भी रहम नहीं आया। उसने मेरे इस हाल पर भी मुझे पड़े रखना गवारा नहीं किया। उसने उसी वक्त मुझ पर गधों की लीद डाली और पानी डाल-डाल कर सबने मिलकर मुझे पैरों से खूब अच्छी तरह गूंदा। ऐसी कार्यवाही करके उसने मुझ जले हुए पर नमक छिड़ने के सदृश कार्य किया। अब मेरे शरीर के कण-कण का चूर्ण बना दिया गया था। फिर उसने अपने खुरपुरे हाथों से मेरे लोंदे बना-बना कर एक तरफ रख दिए। मैंने अब अपने मनमें विचार किया कि चलो—अब इस कष्ट से छुटकारा मिला। अब मैं अपने जीवन को फिर भी सुखवत मानने लगा था। परन्तु इस प्रकार की कल्पना करना मेरी सरासर भूल थी।

उसने कुछ देर बाद ही मेरे पिण्ड को चाक पर चढ़ा दिया और एक डंडे से उस चाक को जोर-जोर से घुमा दिया। ऐसी स्थिति देख-

कर मैं अपने मन में बड़ा खुश हो रहा था। मैं उस कुम्हार को धन्यवाद दे रहा था जिसने मुझे चाक पर बिठाकर झूला झुलाया था। परन्तु उस झूले में झूलकर सुख की कल्पना करना भी मेरे लिए मिथ्या साबित हुई। अब उसने अपने दोनों हाथों को पानी में भिगो कर मुझे पपोला और पपोलते-पपोलते दूसरे ही क्षण उसने मुझे घड़े के आकार में परिवर्तित कर दिया। मैं उसकी इस क्रिया को देखकर मन में अतीव आनन्द का उद्रेक कर रहा था। मैं अपने आप उस कुम्हार की तारीफ कर रहा था कि देखो! पहिले तो इन्सान ने मुझे इतना कष्ट दिया परन्तु आज यहां अपने हाथों से मुझे पुचकार रहा है! मैंने अब सोच लिया था कि अब तो मुझे दुखों से मुक्ति मिल चुकी है। परन्तु मेरा विचार केवल विचार मात्र ही था। उसने तो देखते ही देखते एक डोरी से मेरा गला ही काट दिया। अब उसने मुझे उस चाक पर से उठाकर कड़कड़ाती धूप में सूखने को रख दिया उस समय मुझे जो असह्य वेदना हो रही थी उसे मैं ही जान रहा था। मेरा सारा शरीर सिकुड़ने लगा उस तेज धूप से। फिर उसने दूसरे दिन सवेरे ही मुझे उठाया और एक टोकरे में रख दिया। अब उसने अपने एक हाथ में तो कपड़ा लिया और दूसरे हाथ में एक थापा। उस कपड़े वाले हाथ को तो मेरे अन्दर रखा और दूसरे हाथ से मुझे जोर-जोर से पीटना शुरु कर दिया। इस प्रकार पीटते-पीटते मुझे ठोस घड़े का रूप दे दिया।

इसके बाद उसने पुनः मुझे धूप में रखकर मेरी रही-सही नरमाई को भी कठोरता में बदल दी। उस कुम्हारिन को भी मेरी यह शक्ल अच्छी नजर नहीं आ रही थी अतएव उसने मेरे शरीर पर रंग लगाकर मुझे खूबसूरत बना दिया। अब मुझे कुछ दिनों के लिए विश्राम करने को रख दिया। मैं अब भी समझने लगा था कि मेरी दुख भरी जीवन गाथा समाप्त हो चुकी है। परन्तु यह कल्पना भी

मिथ्या साबित हुई। अरे ! अभी तो मुझे अग्नि परीक्षा देनी बाकी थी।

खैर ! एक दिन मुझे अग्नि परीक्षा के लिए भी तैयार होना पड़ा उसने एकान्त स्थान पर मुझे अपने अन्य साथियों के साथ ले जाकर जमा दिया। फिर कुम्हार ने हम सब पर घास-फूस खाद वगैरह डाल कर हमें सांस लेने से भी वंचित कर दिया। उस समय मेरा दम घुटा जा रहा था। परन्तु उस निर्दयी कुम्हार ने मुझे इस हाल पर भी नहीं छोड़ा। उसने उस अवे में अग्नि जलादी। मैंने अग्नि परीक्षा में कूदकर अपने शरीर के एक-एक कण को जलाकर सख्त बना दिया।

जब मैं उस अग्नि परीक्षा से भी सही सलामत बाहर निकल गया तो मैंने ख्याल किया कि अब तो मैं तमाम कष्टों से मुक्ति पा चुका हूँ। अब मैं निर्भय होकर जीवन बसर करूंगा। परन्तु उस कुम्हार को इतने पर भी दया नहीं आई। वह तो मुझे दूसरों के हाथों में सौंपने के लिए यानि मुझे बेचने के लिए गधे पर रखकर बीच बाजार में ले गया। उसने वहां मुझे धीरे से उतार कर रख दिया। मैं अब वहां बैठा-बैठा मन में विचार कर रहा था कि हे भगवन् ! क्या मुझे अभी और भी परीक्षाएँ देनी बाकी है ?

मैं यह विचार कर ही रहा था कि इतने ही में ये सेठानी जी बाजार में आई और इनकी मुझ पर शुभ दृष्टि पड़ी। इन्होंने कुम्हार से मुझे खरीदने के लिए मोल-तोल किया। जब मेरे मोल पर सेठानी राजी हो गई तो इन्होंने भी मेरी अन्तिम परीक्षा करने की ठानी। इन्होंने मुझे उठाया और दो-चार ठोले लगाए। यद्यपि अब मैं उन ठोलों की चोट को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता था अतएव मैंने भी

ओर से गर्जना की कि अब मैं दुखों को सहन करते-करते बिल्कुल पक चुका हूँ। अब मुझे और कष्ट देने की हिम्मत मत करो।

भाई ! जब मैं इस अन्तिम परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गया तो ये सेठानीजी मुंह मांगे दाम देकर मुझे खरीदकर घर पर ले आईं। इन्होंने मुझे घर पर लाकर झाड़ा-पौंछा और साफ किया। फिर दूसरे ही दिन प्रातःकाल सेठानीजी वस्त्रालंकारों से अलंकृत होकर मुझे अपने शीश पर धारण करके गंगा स्नान करने गईं। वहां इन्होंने मुझे भी गंगा-स्नान कराया। और लौटते समय मुझ में जल भरकर मुझे पुनः बड़ी हिफाजत के साथ सिर पर रख कर नखरीली चाल से घर पर आईं और मुझे बड़े प्यार के साथ उतार कर रख दिया। अब मेरी दैनिक जीवन चर्या इसी प्रकार की बन चुकी है। मैं हमेशा सेठानीजी के सिर पर सवार होकर बड़ी इज्जत के साथ हवा खोरी करके पुनः स्थान को लौट आता हूँ। बस भाई ! यही है मेरी सिरपर चढ़ने की, बड़ा बनने की राम कहानी।

देखो ! मैंने अपने जीवन में कितनी तपस्या की, त्याग किया और बलिदान दिया। मैंने अपने जीवन के एक-एक कण को दूसरों की भलाई के लिए बलिवेदी पर चढ़ा दिया। बस ! उसी त्याग एवं तपस्या के फलस्वरूप आज मैं इस उच्च श्रेणि को प्राप्त कर सका हूँ। मैं आज भी इस जीवन में दूसरों की आत्मा को शांति पहुँचाने का प्रयत्न करता हूँ।

भाई ! इस दृष्टान्त से यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हम सब की आत्मा ने भी चार गति चौरासी लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करते हुए नाना प्रकार के दारुण दुखों को सहन किए हैं। अनन्त जन्म-मरण करने के पश्चात इस अनमोल मानव जीवन की प्राप्ति

हुई है। इसी जीवन में रहते हुए तमाम दुखों का अन्त करके अक्षय सुख साम्राज्य की प्राप्ति की जा सकती है। इस उत्कृष्ट मानव शरीर से शुभ करनी करके मानव-जीवन को सार्थक किया जा सकता है। इस उत्तम शरीर से जहां जाना चाहो वहीं जा सकते हो।

तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भी परिषद् को मानव जीवन की सार्थकता के विषय में धर्मोपदेश फर्माते हुए कहा कि हे देवानुप्रिये ! यह मानव शरीर सहजभाव में उपलब्ध हो गया है तो इससे मानव जीवन को सार्थक बना लो।

इस मानव जीवन की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने भी अपनी कविता में सुन्दर ढंग से विवेदन करते हुए कहा है कि—

मानव को भव दुर्लभ पायो, देव करे तेहनी आश।
माग्यो मिले नहीं, मोल मिले नहीं, मिलिए तो करिए तलाश रे ॥१॥

कुमति संग छोडो, छोडो, छोडो, छोडो, छोडो रे।
सुमति संग जोडो, जोडो, जोडो, जोडो, जोडो रे ॥ टेक ॥

भाई ! यह मनुष्य का जीवन इतना ऊँचा है कि इसे प्राप्त करने की देवता भी आकांक्षा करते हैं। परन्तु उन्हें प्राप्त हो सके या नहीं भी हो सके। लेकिन तुमको तो प्राप्त हो ही गया है अतएव इसको सार्थक बनाने का प्रयत्न करना। व्यर्थ ही इसे एशोआराम तथा खाने-पीने में गंवा कर पूरा मत कर देना। क्योंकि यह कहीं किसी दूकान पर फिर मोल मिलने वाला भी नहीं है। यदि कहीं से प्राप्त हो सकता है तो तलाश भी करके देख लो।

यह मानव जीवन उसी पुण्यशाली आत्मा को प्राप्त होता है
जिसने पूर्व जन्मों में भारी पुण्य संचय किये हों। तो ऐसा अनमोल
शरीर आप को मिल गया है! परन्तु इस मानव देह को प्राप्त कर
आपको कौन से शुभ कर्तव्य करने चाहिये थे यह भान नहीं रहा।
आप मोह के वश में इतने पागल बन गये हो कि इसकी सार्थकता
की तरफ तवज्जे भी नहीं रह सकी। आपको इसका सदुपयोग किस
तरफ करना चाहिये था और किस तरफ प्रवृत्ति करने लगे हो। इसी
बात को ध्यान में रखने के लिये ज्ञानी पुरुष एक सुन्दर दृष्टांत देते
हुए भवि जीवों को समझाते हैं कि—

रतन जड़ित की सुवर्ण चर्वी, चूल्हे कीनी चढ़ाय।
चन्दन बाले मांहे खल राधे, एवो तू मन थाय रे ॥ २ ॥

कुमति संग छोड़ो छोड़ो छोड़ो छोड़ो छोड़ो रे।
सुमति संग जोड़ो जोड़ो जोड़ो जोड़ो जोड़ो रे ॥ टेक ॥

एक समय एक जौहरी धनोपार्जन करने के लिये परदेश को रवाना हुआ। प्राचीन युग में आज की तरह भौतिक साधन उपलब्ध नहीं थे। वर्तमान युग में तो आप हवाई जहाज, रेलगाड़ी, या मोटर के जरिये कई महीनों की यात्रा चन्द दिनों में ही नहीं परन्तु चन्द घण्टों में तय कर सकते हैं और शीघ्र ही अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच कर अपने स्वजनों से मिल सकते हैं या अपना आवश्यक कार्य करके पुनः स्वस्थान को लौट सकते हैं। जब कि प्राचीन समय में आपको अपने निश्चित स्थान तक पहुँचने में कई महीने लग जाते थे। अपने कुटुम्बी जनों के कुशलता के समाचार भी बड़ी इन्तजार के बाद प्राप्त हो सकते थे। उस समय में बैलगाड़ियों, ऊंटों, घोड़ों या पैदल चल कर सामूहिक रूप में यात्रा की जा सकती थी। अकेला व्यक्ति एक

स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में चोर डाकू के भय से घबराता था। उसे कभी कभी अपनी जान की बाज़ी भी लगानी पड़ती थी।

तो वह जौहरी एक समूह के साथ पैदल यात्रा के लिये अपने घर से रवाना हो गया। वह चलते चलते रास्ते में विश्रांति के लिये किसी धर्मशाला में ठहर गया। उसी धर्मशाला के पड़ौस में एक गरीब कठियारे का घर आ गया था। वह निर्धन मनुष्य जंगल से लकड़ियों की भारी लाकर अपनी अजीविका चलाता था।

एक समय की बात है कि उस दिन वह सूर्योदय से पहिले ही जंगल से लकड़ियां काट कर रवाना हो गया। उसने वहां पहुँच कर लकड़िएं काटने को एक सूखा पेड़ चुना जो कि वास्तव में चन्दन का वृक्ष था। परन्तु वह मूर्ख कठियारा चन्दन की परीक्षा में अनभिज्ञ था अतएव उसने उसमें से ही लकड़िएँ काट कर उसकी एक भारी बांध ली। यहीं नहीं परन्तु उस वृक्ष के मूल को खोदते हुए उसे एक स्वर्णपात्र जिसके चारों तरफ पांच बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, मिल गया। उसने उस रत्न जटित स्वर्णपात्र को उठा लिया। चूंकि वह पात्र मिट्टी में गडा हुआ होने से मैला पड़ चुका था अतएव उसने सोचा कि चलो साग भाजी बनाने के लिये इसे मांज कर साफ कर लूंगा। वह उस भारी और बरतन को लेकर संध्या समय घर लौट आया। घर पर पहुँच कर उसने भारी को एक तरफ रख दी और बरतन को मांज कर साफ कर लिया। अब उसने सोचा कि इस भारी को शहर में बेच कर कुछ खाने पीने का सामान ले आऊँ। परन्तु अकस्मात बारिश जोरों से होने लगी अतएव उसे घर पर ही रुकना पड़ा।

भाई! निर्धनता का होना भी अभिशाप स्वरूप हैं। गरीबी के कष्टों को एक गरीब मनुष्य ही अनुभव में ला सकता है। उन ऊँची-

ऊंची अट्टालिकाओं और महलों में ऐशो आराम करने वाले धनवान मनुष्यों को गरीबी के दुःख का क्या आभास हो सकता है। उन धनवानों के समक्ष नियमित समय पर भूख नहीं होने पर भी नौकरों द्वारा नाश्ता तथा स्वादिष्ट भोजन लाकर हाजिर कर दिया जाता है। जबकि एक निर्धन मनुष्य को पेट भरने के लिए दो रोटियां भी मयस्सर नहीं हो पातीं। उसे उन दो रोटियों को प्राप्त करने के लिए सवेरे से शाम तक एडी से चोटी तक का पसीना बहाना पड़ता है तब कहीं उसके पेट की आग शान्त की जा सकती है। एक धनी पुरुष के लिए तनिक सा सिर दर्द होने पर भी बड़े २ डाक्टर इलाज करने को खड़े रहते हैं जबकि एक कुटिया में रहने वाला निर्धन मनुष्य असाध्य बीमारी से कराहता रहता है। परन्तु उसे इलाज नहीं होने के कारण असमय में ही काल के गाल में पहुँच जाना पड़ता है। परन्तु उस गरीब की कुटिया में सबसे बड़ी भारी विशेषता यह है कि परमात्मा का निवास भी उसी कुटिया में रहता है। यदि किसी को परमात्मा की तलाश है तो वह दीगर, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघरों या तीर्थ-स्थानों में न मिलकर एक गरीब की झोंपड़ी में प्राप्त हो सकता है।

तो मैं कह रहा था कि बारिश की झड़ी लग जाने से वह बेचारा लकड़हारा लकड़ी की भारी बेचने भी नहीं जा सका। परन्तु वह दिन भर का थका हुआ और भूखा था। उसे क्षुधा की वेदना सहन नहीं हो रही थी। वह इस भूख का इलाज करने के लिए छटपटा रहा था। आखिर उसने सोचा कि जब तक बारिश बन्द हो तब तक के लिए पड़ौस के तेली से कुछ खल ही उधार ले आऊँ। उस खल के खाने से ही कुछ देर के लिए यह क्षुधा रूपी बीमारी शान्त हो जाएगी। अतएव वह उस तेली के यहां गया और वही आरजू-मिन्नत करके आधा सेर खल उधार ले आया। उसने उस खल को उस रत्न जटित स्वर्ण पात्र में रखकर चूल्हे पर पकाने के

लिए चढ़ा दी और चूल्हे में भी उस चन्दन की लकड़ियों को जलाने लगा। एक अज्ञानी मनुष्य के लिए चन्दन और साधारण लकड़ी में कोई फर्क नहीं होता। वह उस रत्न जटित स्वर्ण पात्र को भी एक मिट्टी की हंडी के रूप में सदुपयोग कर रहा था।

अचानक धर्मशाला में ठहरे हुए जौहरी को लघुशंका की आशंका हुई। अतएव वह उस शंका का निवारण करने के लिए धर्मशाला से बाहर निकला और छतरी लगा कर उस लकड़हारे के मकान की तरफ से जाने लगा। ज्योंही वह उधर से गुज़रा कि बरवस उसकी नाक में चन्दन की खुशबू आने लगी। वह थोड़ी देर के लिए वहीं रुक कर उसकी खुशबू लेने लगा। उसे अब विश्वास हो गया कि यह खुशबू इसी मकान में से आ रही है। वह कुछ देर बाद साहस करके उस मकान में चला गया जहां कि वह लकड़हारा बैठा हुआ अपनी भोजन सामग्री की तैयारी कर रहा था।

वह यह माजरा देखकर आश्चर्य चकित हो गया। उसने मनमें सोचा कि देखो! यह मूर्ख इस अनमोल रत्न जटित स्वर्ण पात्र में खल पका रहा है और लकड़ियों की जगह चन्दन को उपयोग में ला रहा है। परन्तु इसमें इसका कोई कसूर नहीं। क्योंकि यह तो नितांत अज्ञानी जीव है। इसे समझाना मेरा फर्ज है। अतएव वह जौहरी प्रत्यक्ष में बोल उठा—"भाई! यह क्या गजब कर रहे हो? तुम इस अमूल्य स्वर्ण पात्र में चन्दन की लकड़ियें जलाकर खल पका रहे हो।"

तब उस लकड़हारे ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि सेठजी! मैं तो एक गरीब लकड़हारा हूँ। मुझे इतना भी ज्ञान नहीं कि ये चन्दन की लकड़ियां हैं या यह रत्न जटित स्वर्ण पात्र है? मैं तो बारिश आ

जाने के कारण इस भारी को वेचने भी नहीं जा सका। परन्तु इस पापी पेट को भरे बिना भी तो नहीं रहा जा सकता था। अतएव मैं पड़ौसी तेली से आधा सेर खल उधार ले आया और उसे ही पका कर इस भूखे पेट की क्षुधा को शान्त करूंगा। परन्तु आप तो देवता स्वरूप हैं जो कि कष्ट करके भी मुझ अज्ञानी को हिताहित का भान करा रहे हैं। अब मुझे आपके उपदेश से यह जानकारी हो चुकी है कि ये चन्दन की लकड़ियां हैं और यह स्वर्ण पात्र हैं।

उस लकड़हारे के इस प्रकार से विनम्र वचनों को सुन कर उस जौहरी को उसकी गरीबी पर दया आ गई। उसने उससे कहा कि भाई! ये बची हुई लकड़ियां और यह रत्न जटित स्वर्ण पात्र मुझे दे दो। मैं तुम्हें इनके बदले में अपने यहां रख कर आजीवन सुन्दर भोजन और वस्त्र दूँगा। कहो! क्या तुम्हें मेरी नेक सलाह पसंद आई?

यह सुन वह गरीब लकड़हारा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उस जौहरी की दयालुता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि सेठ सा०! इससे बढ़ कर मेरा भाग्योदय और क्या हो सकता है। आज से मैं नवीन जीवन प्राप्त कर रहा हूँ। सेठ सा० ! आपने मुझ पर वह असीम कृपा की है जिसका बदला मैं कई जीवन में भी नहीं चुका सकता।

वह जौहरी उस लकड़हारे को उसकी रजामन्दी से घर पर ले गया। उस लकड़हारे के साथ अब जौहरी के समान ही व्यवहार किया जाने लगा। वह नित्य प्रति स्वादिष्ट भोजन करते हुए अपने जीवन को धन्य धन्य मानने लगा।

सज्जनों! यह तो एक दृष्टान्त है। यह सत्य घटना हो तब भी क्या और असत्य हो तब भी क्या! परन्तु इस दृष्टान्त से निष्कर्ष

यही निकलता है कि जिस प्रकार उस लकड़हारे ने उस जौहरी की शिक्षा मान ली तो उसका शेष जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत हो गया उसी प्रकार आप भव्यात्माओं को भी यह स्वर्ण पात्र के सदृश मानव शरीर प्राप्त हो गया है अतएव इसकी सार्थकता के रहस्य को समझ कर उसके अनुरूप आचरण करने से यह भी सुखमयी बनाया जा सकता है। यदि वह लकड़हारा उस जौहरी का कहना नहीं मान कर उन चन्दन की लकड़ियों को जला कर समाप्त कर देता तो उसको सुख के बदले अपने शेष जीवन में भी दुख ही उठाना पड़ता।

परन्तु आज के संसारी लोगों की हालत तो उस मूर्ख लकड़हारे से भी बदतर हो रही है। आज तुमको यह स्वर्ण पात्र के सदृश मानव शरीर तो प्राप्त हो गया है और उन अमूल्य रत्नों के समान पांच इंद्रियां भी पूर्ण रूप से मिल गई हैं। फिर भी यह मानव उस मूर्ख लकड़हारे के समान आयुष्य रूपी चन्दन को सांसारिक विषय भोग रूपी खल को पकाने के लिए खर्च किए जा रहा है। परन्तु उस जौहरी के समान ज्ञानी पुरुष कहते हैं, बार बार चेतावनी देते हैं कि मूर्ख! शेष आयुष्य रूपी चन्दन की भी कीमत वसूल कर ले और अपना अनमोल मानव जीवन रूपी रत्न जटित स्वर्ण पात्र किसी जौहरी के सदृश सद्गुरु की आधीनता में सौंप दे तो इसकी सारी कीमत वसूल हो जायेगी। तेरा मानव जीवन सार्थक हो जाएगा। तू हमेशा के लिए सुखी बन जाएगा। यदि इसके विपरीत तू सद्गुरु का कहना नहीं मान कर अपनी मनमानी करेगा और आयुष्य रूपी चन्दन को विषय भोग रूपी खल को पकाने में ही नष्ट कर देगा तो जीवन भर के लिए ही नहीं परन्तु जन्म जन्मान्तर में भी दुखी बन जाएगा। इसलिए इस थोड़ी-सी मानव की जिंदगी में भी यदि तू सत्कार्य करना चाहे तो कर सकता है। अन्यथा यह ज़िंदगी तो एक

दिन खत्म हो जाने ही वाली है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि महोदय पुनः चेतावनी देते हुए कह रहे हैं कि:—

जन जन सेंती वैर वसायो, होय रह्यो अलमस्त।
पीपल पान ज्यूं भान संझा को, आखिर होवेगा अस्त रे ॥३॥
कुमति संग छोडो, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो रे।
सुमति संग जोड़ो, जोड़ो, जोड़ो, जोड़ो, जोड़ो रे ॥टेक॥

भाई! यह मानव अपने जीवन को सार्थक बनाने के बजाय अपने दुष्कर्तव्यों द्वारा रसातल की ओर धकेल रहा है। यह अपनी जवानी के नशे में, धन के नशे में, बल के नशे में, कुटुम्ब परिवार के नशे में और सत्ता के नशे में अलमस्त बना हुआ फिर रहा है। इस पर मोह का नशा इतना जबर्दस्त छाया हुआ है कि यह अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं। किसी का उपदेश मानने को तैयार नहीं। यह अपने जीवन का उद्देश्य सिर्फ खाने पीने और ऐशोआराम की पूर्ति में ही समझ रहा है। और उन साधनों की पूर्ति में यह रात दिन, हिंसा, झूठ, चोरी, बेईमानी, रिश्वत खोरी और नाना प्रकार के जाल फरेब आदि पापकर्मों का आश्रय ले रहा है। परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐ मानव! तेरा जीवन पीपल के पान की तरह और संध्या के सूर्य के सदृश बहुत जल्दी नष्ट हो जाने वाला है। तू जो अपने मन में यह कल्पना किए बैठा है कि मरने वाले तो दूसरे हैं परन्तु मैं तो संसार में अमर पट्टा लिखवा कर लाया हूँ। परन्तु इस प्रकार की कल्पना करनी तेरी निरी मूर्खता है। अरे! तेरा जीवन देखते देखते संध्या के सूर्य के समान अस्त हो जाने वाला है। जबकि इस संसार में तीन खंड के अधिनायक रावण जैसे भी सोने की लंका पर अभिमान करते करते चले गए तब तेरी तो बिसात ही क्या है? तेरे पास तो उनके समान ऋद्धि-सिद्धि का शतांश भी नहीं है।

किसी कवि ने भी इस संसार का दिग्दर्शन कराते हुए अनित्य भावना के विषय में अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं। वह कह रहा है कि:—

"अर्जुन से भीम अब किधर, अभिमन्यु से बली कहां ?
देश से अब रवां हुई, वीरों की कुल निशानियां ॥ १ ॥
सुनते हैं वीरता की हम, गुजरी हुई कहानियां ।
अब तो रगों में बंद है, खून की वो रवानियां ॥ टेक ॥

भाई ! इसी आर्यावर्त क्षेत्र में अर्जुन जैसे वीर धनुर्धारी भी हो गए हैं जिनके बाण का निशाना अचूक होता था। उनके एक बाण की तीक्ष्ण धारा से पृथ्वी में से गंगा की धारा फूट पड़ती थी। और भीम के सदृश महाबली योद्धा भी इसी पृथ्वी पर हो गए जिनकी एक लात से पृथ्वी धूजने लगती थी। यही नहीं परन्तु वीर अभिमन्यु भी अपने पिता के समान ही बलवान् था। उसने गर्भकाल में ही चक्रव्यूह के अंदर प्रवेश करने की विद्या अपने पिता के मुँह से सुन कर याद कर ली थी। जब महाभारत के युद्ध में चक्रव्यूह की रचना कौरव दल की तरफ से की गई तो उसमें प्रवेश करने के लिए एक मात्र षोडषवर्षीय अर्जुन पुत्र अभिमन्यु तैयार हुआ और उसमें प्रवेश भी कर गया। वह चक्रव्यूह को चीरता फाड़ता निकल गया परन्तु पुनः बाहर आने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण शत्रु दल के महारथियों द्वारा घेर लिया गया और वीरता पूर्वक लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुआ। परन्तु आज वे वीर भी अपनी वीरता दिखा कर इस भारतवर्ष से प्रस्थान कर गये। यद्यपि वे वीर तो मौजूद नहीं है परन्तु आज भी उन वीरों के नाम दुनियां इज्जत से लेती है। अरे ! आज तक इस भारत भूमि से हजारों योद्धा

ाना हो चुके हैं। उनकी संसार में केवल वीरत्व गाथा ही शेष रह
है। आगे और भी वीर पुरुषों का हवाला देते हुए कवि कहता
कि—

गोविन्दसिंह के लाड़ले, जिंदा दीवार में चुने।
ये भी थे उनके हौंसले, कर दी फ़िदा जवानियां ॥ २ ॥

देखो! पंजाब प्रान्त में सिक्ख धर्म में दस गुरु हो गए हैं
उनमें से दसवें गुरु का नाम गुरु गोविन्दसिंह था। उनके दो लड़के
। वह मुगल काल था। मुगल शासक तलवारों के बल पर हिंदुओं
को यवन बना रहे थे। गुरु गोविंदसिंह अपने सिक्ख सिपाहियों के
साथ मुगल सेना का सामना कर रहे थे। एक समय मुगल बादशाह
के सिपाहियों ने इनके दोनों बच्चों को पकड़ लिए। वे उन्हें काजी के
पास ले गए। जब काजी ने इन दोनों को धर्म परिवर्तन के लिए कहा
तो दोनों ने धर्म परिवर्तन करने से साफ इन्कार कर दिया। यह सुन
कर काजी ने पुनः जोश भरे शब्दों में कहा कि यदि तुम अपनी
जिन्दगी को वेशकीमती समझते हो तो मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लो।
परन्तु उन सुकुमार नौनिहाल बच्चों ने कहा—काजी सा०! हम
धर्म के लिये प्राण विसर्जन करने से भी नहीं घबराते। क्योंकि हमारे
पिता ने यह अमर मन्त्र सिखा दिया है कि बेटा! यह आत्मा कभी
नहीं मरती। यह सदा अजर अमर रहती है। जो मरता है—नष्ट होता
है वह शरीर मरता है। यदि आप हमको शरीर से जुदा भी कर देंगे
तब भी हमारी आत्मा मरने वाली नहीं है। हम सदा जिंदा ही रहेंगे।

उन देश भक्ति के रंग में रंगे हुए बच्चों के साहस पूर्वक वचन
सुनकर काजी को और भी अधिक गुस्सा आ गया। वह क्रोधित
होकर बोला कि बच्चों! अब भी मान जाओ और अपनी जिद
छोड़कर इस्लाम धर्म अङ्गीकार कर लो। परन्तु उन नन्हे मुन्ने बच्चों

ने काजी के प्रस्ताव को ठुकराते हुए पुनः जोशीले शब्दों में जवाब दिया—काजी सा० ! हम वीर पुत्र हैं और वीरता पूर्वक मौत का आलिंगन करने में ही हम अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। हम धर्म तथा देश की रक्षा के लिये हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार हैं परन्तु आप हमसे स्वप्न में भी धर्म परिवर्तन करने की आशा मत रखना। जब किसी प्रकार भी वे निर्भीक बच्चे धर्म परिवर्तन करने को रजासन्द नहीं हुए तो देखते ही देखते वे दोनों वीर-पुत्र बादशाह के हुक्म से दीवार में चुनवा दिए गए। इस प्रकार वे दोनों कहने को तो शरीर से मर गए परन्तु धर्म के प्रति गाढ़ श्रद्धा और देश भक्ति के दीवाने बलिवेदी पर चढ़ कर भी इतिहास के पन्नों में अमर हो गए। आज भी दुनिया उनका इज्जत के साथ नाम लेती है।

कवि और भी आगे वर्णन करते हुए कह रहा है कि:—

हिन्द पै जिसको नाज था, घर था वही मेवाड़ का।
राणा बब्बर से कम न थे, शेरनी उनकी रानियां ॥ २ ॥

भाई ! आज हिन्दुस्तान को नाज है तो वह मेवाड़ के पीछे है। इसी मेवाड़ देश में बड़े-बड़े वीर राणा और महारानियां हो चुकी हैं। जिस प्रकार शेर के समान राणा थे उसी प्रकार महारानियां भी शेरनी से कम न थीं। उन्होंने अपने धर्म तथा देश की रक्षा के खातिर अपने अमूल्य प्राणों की बाजी तक लगा दी। परन्तु अपने देश के गौरव की रक्षा की। यद्यपि वे वीर तथा वीरांगनाएँ आज संसार में नहीं हैं परन्तु उनके नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। आज सैंकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी संसार उनकी जयन्तियां मनाता है और उन वीरों का नाम इज्जत के साथ लिया जाता है।

उन वीरांगना क्षत्राणियों ने भी धर्म की रक्षा के खातिर अपने वीर पतिदेवों का अनुसरण किया और जौहर व्रत करके अपने शरीर अग्नि कुण्ड में जलाकर समाप्त कर दिए। वे वीरांगनाएँ भी आज संसार में नहीं हैं परन्तु उनकी अमर यश गाथा दुनियां आज भी गाती है। कवि भी अपने शब्दों में उन वीर सन्नारियों के नाम इज्जत के साथ लेता हुआ कह रहा है कि:—

सीता सती सी अब किधर, पतिव्रता वे नारियां।
सेवा पति की वन में की, झेल के सब हैरानियां ॥ ४ ॥
वाहमी हो के पुर जफ़ा, बदला यह हमने पा लिया।
जिस जा रतन बहार थी, अब है वहां वीरानियां ॥ ५ ॥

सज्जनों! इसी भारत वर्ष में सीता जैसी सतिएँ भी अवतरित हो गई हैं। मिथिलेश कुमारी सीता अपने पति रामचन्द्रजी की सेवा के लिए सहर्ष जंगलों में अपने पतिदेव के साथ कष्ट सहन करती फिरी। बनवास काल में जो-जो विपदाएँ उन पर आईं उन्हें सहनशीलता की मूर्ति बन कर सहन कीं परन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ा। लंकापति रावण उसे चुराकर ले गया और कई प्रकार की यातनाएं देकर उससे पटरानी बनने की भीख मांगी परन्तु पतिव्रता सीता ने समस्त कष्टों का आह्वान करके भी अपने सतीत्व धर्म की शान के साथ रक्षा की। आखिर एक दिन सत्य की विजय हुई। तो आज वे पतिव्रता सन्नारियां भी नहीं है परन्तु आज भी उन सतियों के नाम प्रातःकाल दुनिया गर्व के साथ लेती है।

आज आप चित्तौड़ के किले को जाकर देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि वे महल उन वीर राणाओं तथा महारानियों की याद में सूने पड़े हैं। वहाँ के खंडहर उन वीरों की याद दिलाकर कह

रहे हैं कि किसी समय यहां राणा महाराणा और वीर क्षत्राणिएँ निवास करती थीं और देश-रक्षा के अवसर पर अपनी वीरता दिखाते थे। परन्तु आज वे वीर इन महलों में दिखाई नहीं देते और हम उनकी याद में रो रो कर वीरान हो गए हैं। यद्यपि भारत सरकार ने उन वीरों की अमर यादगार में एक खास महकमा खोल दिया है जिसका काम उन यादगारों को कायम रखना है। वहाँ जाने वाले दर्शनार्थियों को उन वीरों के कारनामों के सम्बन्ध में दिग्दर्शन कराया जाता है।

तो यहां उक्त कविता में जो प्राचीन वीरों की गाथा का वर्णन किया गया है उसका आशय यही है कि वे वीर पुरुष तथा वीर सन्नारिएं आज इस संसार में नहीं हैं परन्तु समय समय पर उन्होंने जो देश, धर्म तथा समाज की रक्षा के लिए उन्नत कार्य किए उसी के फल-स्वरूप वे आज तक अमर हैं और भारत ही नहीं परन्तु विदेश के लोग भी उन वीरों की गाथाएं बड़े प्रेम से सुनते हैं तथा उनकी याद में श्रद्धांजलियां चढाते हैं।

इसी प्रकार जो अपने समाज की भलाई के लिए समाज के नेता अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी अनूठा कार्य कर गए तो आज वह समाज भी मौके पर उन नेताओं को याद करता है और अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करके उनके पद चिन्हों पर चलने की कोशिश करता है। जो धार्मिक क्षेत्र में धर्म की रक्षा के लिए कार्य कर गए तो उस-उस धर्म के अनुयायी अपने धर्म नेताओं का नाम प्रातःकाल आदर सहित लेता है। यद्यपि आज उन देश भक्तों, धर्म नेताओं समाज सेवकों और सती सीता, सावित्री, पद्मिनी जैसी पतिव्रता वीरांगनाओं की भारतवर्ष को नितान्त आवश्यकता थी परन्तु वे सब इस देश से रवाना हो चुके हैं। आज केवल हम लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिए उनके आदर्श कारनामें ही इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। हम

भी उन्हें पढ़-पढ़ कर अपने जीवन को देश भक्ति, धर्म प्रेम, समाजोन्नति के सांचों में ढाल सकते हैं। भाई! संसार उसी को चिरस्मरणीय रखता है जिसने देश, जाति, समाज तथा धर्म की रक्षा के लिए कुछ उत्कृष्ट कार्य किया होता है या समय आने पर अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी देश-धर्म की रक्षा करने का सतत प्रयत्न किया होता है।

देखो! आज से कुछ वर्षों पहिले ही इसी भारतवर्ष में एक राष्ट्रीय नेता ने जन्म लिया था जिसका नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। उनका पोरबन्दर में जन्म हुआ था। इसी महापुरुष ने विलायत जाकर अपने नियमों का पालन करते हुए बैरिस्ट्री पास की। उनके हृदय में सत्य भगवान ने निवास कर लिया था। वह सत्य और अहिंसा के बल पर विदेशी हुकूमत से लड़ा, भारत को अंग्रेजी शासन की पराधीनता से मुक्त कराया और अन्तिम समय में भी सत्य, अहिंसा और देश रक्षा के लिए गोली का शिकार बन कर अपने प्राणों का हंसते हुए विसर्जन कर गया।

आज देश में गांधीजी तो नहीं हैं परन्तु उनके कार्य कलाप आज भी इतिहास में ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। उस सत्य और अहिंसा के पुजारी ने दुनिया को अमर संगीत सुनाया कि देश के झगड़े इन तलवारों, तोपों, एटम बमों तथा अणुबमों के बल पर समाप्त नहीं किए जा सकते परन्तु सत्य, अहिंसा तथा भ्रातृ प्रेम के द्वारा समाप्त किए जा सकते हैं। वह सुरीली सत्य, अहिंसा तथा प्रेम की मधुरी तान आज भी आकाश में गूंज रही है। भाई! गांधीजी शरीर से तो मर चुके हैं परन्तु देश भक्ति के कारण उनका नाम हजारों वर्षों तक श्रद्धा से लिया जाता रहेगा।

भाई ! कहाँ तो वह देश भक्त, सत्य, अहिंसा का कट्टर पुजारी था और कहां आज उनके अनुयायी खादी पहिन कर भी अंडे और मांस मछलियें खाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वास्तव में वे इस प्रकार के दूषित कार्य करके अपने राष्ट्र पिता के नाम को कलंकित कर रहे हैं।

इसीलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि यदि तुमने संसार में मानव जीवन को प्राप्त किया है तो इसमें कोई न कोई ऐसा अनूठा कार्य करके जाना जिससे दुनिया तुम्हारा नाम याद करके अपने जीवन को भी तुम्हारे द्वारा बताए हुए पद चिह्नों पर चला सके। यदि इस मानव जीवन को प्राप्त करके भी तुमने इसकी सार्थकता को नहीं समझा और दुष्कर्मों में प्रवृत्ति करके इसे व्यर्थ ही गंवा दिया तो दुनिया भी तुम्हारा नाम लेकर थू-थू करेगी और स्तुति के बदले निंदा करेगी। इसलिए कम से कम अपना नाम निंदनीय पुरुषों की लिस्ट में तो लिखा कर मत जाना।

भाई ! यह धन, दौलत, बंगला, मोटर और समस्त ऐशोआराम के साधन यहीं रह जाने वाले हैं। इस संसार से कोई चीज भी तुम्हारे साथ जाने वाली नहीं है। यहां तक कि कफन का कपड़ा भी शरीर पर लोग नहीं रहने देंगे। यदि यहां से तुम्हारे साथ जाने वाली कोई चीज़ है तो वह तुम्हारे द्वारा किया हुआ पुण्य या पाप ही है।

तो भगवान् महावीर भी आई हुई परिषद् को यही सदुपदेश दे रहे हैं कि हे भव्यात्माओं ! तुम यहां आए हो तो एक दिन तुम्हारा यहां से जाना भी अवश्यंभावी है। परन्तु खाली हाथ मत चले जाना यदि तुमने अपने संग लाए हुए पुण्य रूपी ख़जाने को खाने-पीने और ऐशोआराम में ही समाप्त कर दिया और भविष्य के लिए कोई पुण्य संचय नहीं किया तो आगे तुम्हें कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिए भविष्य

की यात्रा के लिए अभी से पुण्य रूपी माल टिफिन में भर लो ताकि सुख चैन से जिन्दगी बसर कर सको। अपने मानव जीवन को सत्कार्य करके सार्थक बना लो।

भाई! मैं भी आप लोगों से एक शुभ चिन्तक के नाते यही बात कह रहा हूँ कि यहां तो आपको सब प्रकार के जीवनोपयोगी साधन उपलब्ध हो गए हैं परन्तु आगे के लिए भी खर्ची बैंक में जमा करा दो! ताकि वहां भी आराम से जिन्दगी गुजार सको और किसी की तरफ मुंह ताकने की नौबत न आए। यहां भी तुम्हें जो धन, दौलत, कुटुम्ब, परिवार, कोठी बंगला, मान सम्मान, बड़प्पन या इच्छित वस्तुएं प्राप्त हुई हैं तो वे भी ऐसे ही प्राप्त नहीं हुई हैं। अरे! पूर्व जन्म में भी तुम्हें हमारे जैसे ही कोई सन्त पुरुष ज्ञान बताने वाले मिले होंगे। तुमने उन महापुरुषों की शुद्ध कथनी को सुनकर उसके अनुसार शुभ करनी की होगी। उसी सदाचार के फल स्वरूप आज तुम्हें यह साहबी प्राप्त हो सकी है। यदि यहां-सभी प्रकार के सुख के भागी बनकर भी सन्त महापुरुषों की संगति नहीं की, धर्मोपदेश नहीं सुना और उनके फर्माए हुए सुपथ पर चलने का प्रयत्न नहीं किया तो यह जीवन सार्थक बनने के बजाय निरर्थक बन जाएगा और कहीं तुम्हारी हालत भी उस गंवार जैसी न बन जाय। इसलिए मौत का नगारा बजने से पहिले पहिले ही सम्भलकर अपने मानव जीवन को सफल बनालो।

कवि भी अपनी कविता की भाषा में संसार को चेताते हुए कह रहा है कि:—

बजे नगारा कूच का, छिन भर छाना नांय।
कोई काल कोई आज है, कोई घड़ी पलक के मांय॥

कोई घड़ी पलक के मांय, मान ओ मनवा मेरा।
धरया रहे धनमाल, होय जंगल में डेरा॥
कहे दीन दरवेश, भजन कर जीत जमारा।
छिन भर छाना नांय, कूच का धुरे नकारा॥

भाई ! शरीरधारियों के सामने यह मौत का नकारा प्रतिक्षण बजता जा रहा है। परन्तु यह ढीट मानव इसकी आवाज सुनते हुए भी निश्चिन्त होकर मोह निद्रा में सोया हुआ है। यह जागने की वेला है—नींद में अलमस्त होकर पड़े रहने का समय नहीं है। इसलिए इस मोह निद्रा को त्यागो और मौत के नगारे को सुनकर अपने जीवन में कुछ कर गुजरो।

सन्त कबीरदासजी भी दुनिया को उद्‌बोधन देते हुए कहते हैं कि:—

कबीरा थोड़ा जीवना, मांड्या बहुत मंडान।
पाड़ौसी में बीत गई, सो अपने में जान॥

कबीरदासजी भी अलख जगाते हुए भक्तजनों को कह रहे हैं कि हे भक्तो ! जो तुम्हारे पड़ौसी पर बीती है वही दशा तुम्हारी भी निकट भविष्य में होने वाली है। इस मोह नींद में निश्चित होकर सोने के लिए यह मानव जीवन प्राप्त नहीं हुआ है। परन्तु कुछ नेक कमाई करने के लिए यह सुअवसर मिला है। इसलिए प्रमाद को छोड़ो और जीवन के क्षेत्र में आगे आकर सत्कर्म कर डालो। यदि यहां कुछ कर लिया तो आगे भी मालामाल बन जाओगे। इस थोड़ी सी जिन्दगी के लिए तुमने इतना भारी मंडान मांड रखा है कि तुम्हें अपना जीवन सार्थक बनाने का भी लक्ष्य नहीं रहा। तुम इस माया के जाल में

मकड़ी की तरह फंस गए हो। परन्तु इस जाल को तुम्हें ही तोड़ना होगा। जब तक इस माया जाल से मुक्त नहीं होओगे तब तक तुम्हारा भविष्य अन्धकार में ही बना रहेगा। इस संसार में मृत्यु की आग चारों तरफ लगी हुई है। यदि तुम मोह नींद में सोते ही रह जाओगे तो इसमें जलकर समाप्त हो जाओगे। परन्तु इससे बचने के लिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि मोहनींद को त्याग कर धर्माचरण में अपने जीवन को लगा दो। यदि धर्माचरण करके अपने मानव जीवन को फौलाद के सदृश बना लिया तो यह मृत्यु रूपी आग तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगी। तुम अजर-अमर निर्वाण पद को प्राप्त कर सकोगे।

इस प्रकार श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने जनता के समक्ष धर्मोपदेश देकर भव्यात्माओं का कल्याण किया! धर्मोपदेश समाप्त हो जाने पर राजा तथा प्रजा भगवान को वन्दन नमस्कार करके अपने अपने स्थान को लौट गए।

ऋषभ-भवन्तरी :-

अब मैं आप लोगों के सामने भगवान ऋषभदेव के ग्यारहवें भव के सम्बन्ध में कुछ वृतान्त सुना देना उपयुक्त समझता हूं। भगवान ऋषभदेव ने अपने वज्रनाभि चक्रवर्ती के भव में तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया और उनके दूसरे भाइयों ने भी शुभ करनी करके जीवन को सार्थक बना लिया।

वज्रनाभि मुनिराज के दो भाई बाहु तथा सुबाहु मुनिराजों ने प्रमाद का परित्याग करके पांच सौ मुनिराजों की तन-मन से सेवा

कार्य करने में अपने शरीर को अर्पण कर दिया। वे रात दिन मुनिराजों की सेवा सच्चे हृदय से करने लगे। उनके द्वारा शुद्ध हृदय से की जाने वाली सेवा साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविकाओं की दृष्टि में आने लगी। वे सब इनके सेवा कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। उन सबके मुंह से यही उद्गार निकलते थे कि धन्य है दोनों मुनिराजों को! जो कि सेवा का परम लाभ ले रहे हैं। इस प्रकार उनके गुणों की प्रशंसा सभी के द्वारा होने लगी।

सेवा भी तीन प्रकार से की जा सकती है—तन, मन, और धन के द्वारा। जिसके पास बलवान शरीर है तो वह अपने शरीर बल से दूसरों की सेवा कर सकता है। यदि किसी के पास शरीर शक्ति और धन बल नहीं है तो वह मन के शुभ परिणामों के द्वारा भी दूसरों की सेवा कर सकता है। और जिसके पास तन बल और मन बल नहीं है परन्तु धन बल है तो वह अपने धन का सदुपयोग दूसरों की भलाई में करके भी सेवा का लाभ ले सकता है। तो उक्त दोनों मुनिराजों के पास धन तो था नहीं अतएव वे अपने तन तथा मन की शक्ति के द्वारा ही मुनिराजों की सेवा जी लगा कर करने लगे।

परन्तु संसार में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें दूसरों की प्रशंसा होती हुई सहन नहीं होती। वे उनकी प्रशंसा सुन सुन कर मन में ईर्ष्याभाव ले आते हैं। यह ईर्ष्यावृत्ति का दुर्गुण श्रावकों में ही नहीं परन्तु साधुओं के जीवन में भी प्रवेश कर जाता है। छद्मस्थ अवस्था में काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि विकारभावों का आ जाना स्वाभाविक ही है। तो इस ईर्ष्यावृत्ति का असर उनके दो भाई पीठ और महापीठ नाम के मुनिराजों के मानस पर भी पड़ गया। यद्यपि वे साधु वृत्ति में थे और तपस्या करने में भी अग्रणी थे परन्तु फिर भी उनके हृदय में ईर्ष्या वृत्ति घर कर चुकी

थी। वे अपने भाईयों की प्रशंसा होते हुए बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने मन में विचार किया कि देखो ! हम तो इतनी उत्कृष्ट तपस्या करते हैं परन्तु कोई हमारी तारीफ नहीं करता। जब कि इन दोनों की केवल सेवा मात्र से ही इतनी तारीफ हो रही है। हम क्षुधा परीषह को सहन करते हैं फिर भी हमारी तारीफ नहीं होती। परन्तु ये दोनों भोजन करते हुए भी यश के भागी बन रहे हैं। इस प्रकार वे दोनों अपने भाईयों से जलने लगे।

परन्तु भाई ! तीर्थङ्कर भगवान ने श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवें अध्ययन में छः कारणों के उपस्थित होने पर साधक को भोजन करने की आज्ञा फर्माई है। वहां शास्त्रकारों ने छः कारणों का दिग्दर्शन कराते हुए फर्माया है कि:—

> वेयण, वैयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
> तह पाण वत्तियाए, छट्ठम् पुण धम्मचिन्ताए ॥ ३३ ॥

अर्थात उक्त छः कारणों से साधक भोजन कर सकता है। प्रथम कारण बताते हुए कहा है कि यदि किसी साधक को क्षुधा वेदनीय परीषह सहन नहीं हो रहा हो तो वह उसे शान्त करने के लिये भोजन कर सकता है।

दूसरे जिस साधक ने सेवा धर्म को धारण कर लिया हो तो वह भी उक्त की सहायता के लिए भोजन कर सकता है। क्योंकि भोजन कर लेने पर उसके शरीर में शक्ति का संचार हो जाएगा। इस प्रकार वह अपनी शारीरिक शक्ति द्वारा दूसरों की पूर्ण रूप से सेवा कर सकेगा। और जो शास्त्रकारों ने दस प्रकार की वैयावृत्य का उल्लेख किया है तो वह साधना भी शरीर की सशक्तावस्था में ही की जा सकती है। अशक्त शरीर धारी से सेवा कार्य होना असंभव हो जाएगा।

जिस साधक ने शास्त्र ज्ञान हासिल करके वक्तृत्व शक्ति प्राप्त कर ली है तो उसे भी दैनिक प्रवचन देने के लिए भोजन करना आवश्यक है। क्योंकि भूख की हालत में दूसरे से भाषण करना भी अच्छा नहीं लगता और वक्ता में बोलने की शक्ति तभी आ सकेगी जब कि वह दिमागी शक्ति को बढ़ाने के लिए भोजन करेगा। तो एक धर्मोपदेष्टा के लिए भी भोजन करना जरूरी है।

तीसरे—ईर्यासमिति का पूर्ण रूप से पालन करने के लिए भी साधक भोजन ग्रहण कर सकता है। क्योंकि भोजन करने से उसकी आंखों में तरावट रहेगी, अंधेरी नहीं आएगी और इस कारण वह यत्ना पूर्वक प्रत्येक कार्य कर सकेगा। यदि इसके विपरीत भूखा रहेगा तो आंखों की ज्योति मंद पड़ जाएगी और फिर वह अच्छी तरह जीवों की रक्षा नहीं कर सकेगा। तो जीवों की यत्ना के लिए भी भोजन किया जा सकता है। हम संसार में देखते हैं कि जो अपनी शारीरिक शक्ति के उपरान्त तपस्या कर लेते हैं तो उनकी आंखों की रोशनी भी समय से पहिले मंद पड़ जाती है। वे फिर दूसरों की सहायता की अपेक्षा करने लगते हैं। इसलिए अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार ही तपश्चर्या करनी चाहिए क्योंकि आंखों में ज्योति होगी तभी जीव दया पाली जा सकेगी। हम अपने घरों में देखते हैं कि जो बहिन शरीर शक्ति की उपेक्षा करके लम्बी तपस्या करके बैठ जाती है तो वह अपना कौटुम्बिक फर्ज अदा नहीं कर सकती। वह समय पर परिवार के सदस्यों को भोजन बनाकर खिलाने में भी असमर्थ रहती है। उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है और कभी-कभी अपथ्य हो जाने से मृत्यु तक भी हो जाती है। तो प्रत्येक भाई-बहिन को शरीर रक्षा करते हुए तपस्या करनी चाहिए।

चौथे—जो साधक अपने संयम को शुद्ध रूप से पालना चाहता है और संयमावस्था में रहते हुए अधिक धर्म करनी करने का इच्छुक है तो

उसे भी भगवान ने भोजन करने की आज्ञा प्रदान की है। क्योंकि यदि संयम निर्वाह के लिए शरीर को भोजन नहीं दिया जाएगा तो वह दुर्बल हो जाएगा। दुर्बल शरीर वाला अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता। इसलिए इस शरीर रूपी गाड़ी को अधिक समय तक टिकाए रखने के लिए भी आहार-पानी देना आवश्यक है। जितने समय तक साधक जीवित रहेगा वह अपने सशक्त शरीर से जीवों की रक्षा भी उतनी ही अधिक कर सकेगा।

पांचवां—प्राणियों की रक्षा के लिए भी भोजन किया जा सकता है। सशक्त ही जीवों की रक्षा कर सकता है।

अंतिम छठे बोल में बताया गया है कि जो साधक धर्म का चिंतवन करने वाला है वह भी आहार कर सकता है। क्योंकि भोजन करने से उसका शरीर बलवान होगा। वह अपनी शक्ति के द्वारा दूरस्थ देशों में भी पहुँच कर स्वयमेव धर्म का पालन करते हुए दूसरों से भी धर्म ध्यान करवा सकेगा। जबकि तपस्या करने वाला साधक स्वयं की आत्मा का ही कल्याण करने में समर्थ होता है। परन्तु धर्म चिंतवन करने वाला व्यक्ति अपना और दूसरों का भी उद्धार कर सकता है। तो धर्म चिंतवन करने वाला भी भोजन कर सकता है।

भाई! उक्त छः कारण तो भगवान ने साधक के लिए भोजन करने के सम्बन्ध में बताए हैं परन्तु छः कारणों के उपस्थित होने पर साधक को भोजन करने की मनाही भी कर दी है। तीर्थङ्कर भगवान ने उत्तराध्ययन-सूत्र के छब्बीसवें अध्ययन की पैंतीसवीं गाथा में उक्त छः कारणों का उल्लेख करते हुए बताया है कि:—

आयंके, उवसग्गे, तितिक्खया बम्भचेर गुत्तीसु।
पाणिदयातव हेउं, सरीर वोच्छेयणट्ठाए ॥ ३५ ॥

भगवान ने प्रथम बोल में भोजन निषेध का यह कारण बताया है कि यदि किसी साधक के शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो गया हो या कोई असाध्य बीमारी हो गई हो तो ऐसी परिस्थिति में उसे भोजन का परित्याग करके तपस्या करनी चाहिए। क्योंकि रोगावस्था में तपस्या नहीं करके यदि भोजन किया जाएगा तो व्याधि और अधिक बढ़ जाएगी। इसलिए भोजन का त्याग करना आवश्यक है। भाई! आप लोग भी तपस्वीजी म० श्री गणेशीलालजी के दर्शनों को जाते हैं तो वे भी आप लोगों से तपस्या करने को कहते हैं। तपस्या करने से शरीर के रोग तथा विकार उपशान्त हो जाते हैं। हम लोगों के कहने से तो शायद आप भोजन छोड़ें या नहीं भी छोड़ें परन्तु जब डाक्टर की शरण में जाना पड़ता है तब उसके कथनानुसार अवश्यमेव भोजन छोड़ देते हो। परन्तु यदि हम लोगों का कहना मानते रहो और तपस्या करते रहो तो फिर डाक्टर की शरण में जाना ही नहीं पड़ेगा। क्योंकि तपस्या से शरीर निरोग रहता है।

दूसरे किसी भी देवता, मनुष्य या पशु के द्वारा कोई उपसर्ग उपस्थित हो जाय तब भी भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर तब तक के लिए अनशन कर दिया जाता है जब तक कि उपद्रव की शान्ति न हो जाय। तो ऐसी हालत में भी भोजन नहीं करना चाहिए।

देखो! जिस समय सुभद्रा सती के ऊपर कलंक लगा दिया गया था तो उससे निरुपद्रव होने के लिए सती ने तेला कर लिया। जब शासन रक्षक देवता ने सती के कलंक की बात नभ से सुनी तो उसने

अपनी देव माया से उस नगर के तमाम दरवाजे बन्द कर दिए। इससे नगर निवासियों को शहर के बाहर और अन्दर आना जाना भी मुश्किल हो गया। सारे नगर निवासी यह हालत देख दुखी हो गए।

जब यह खबर वहां के राजा को लगी तो उसने शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई अपने सत्यशील के प्रभाव से शहर के दरवाजे को खोल देगा वह राजा के द्वारा सन्मानित किया जाएगा। यह सुन कर कई स्त्री-पुरुषों ने दरवाजा खोलने का प्रयत्न किया। परन्तु कोई भी दरवाजा नहीं खोल सका। आखिर जब यह शुभ सूचना सुभद्रा सती ने सुनी तो उसने अपनी सासू से कहा कि सासूजी सा.! यदि आज्ञा हो तो मैं दरवाजा खोलने का प्रयत्न करूँ। प्रथम बार तो उसकी सासू ने ताना मारते हुए कहा कि हां! हां! मैं अच्छी तरह तुम कलंकिनी को जानती हूँ कि अवश्यमेव दरवाजा खोल कर यश की भागिनी बनेगी। बैठी रह! और दरवाजा खोलने का विचार भी मन में मत लाना। परन्तु अत्याग्रह करने पर उसकी सास ने उसे वहां जाने की आज्ञा दे दी।

जब सुभद्रा सती दरवाजा खोलने के लिए नियत स्थान पर पहुँची तो उसने सर्व प्रथम पंच परमेष्ठि मन्त्र का ध्यान किया। इसके पश्चात् उसने कच्चे सूत से चलनी को बांधकर उसे कुए में छोड़ दी। भाई! शासन रक्षक देवता की शक्ति से वह सती चलनी में भी कुए से पानी खींचने में समर्थ हो गई। ज्योंही सती ने उस चलनी में पानी खींच लिया तो दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सभी एक दूसरे से काना फूसी करने लगे कि "यह कलंकिनी नहीं परन्तु पतिव्रता स्त्री है। इसके बाद उस सती ने उस पानी को जैसे ही मन्त्र का उच्चारण करके दरवाजे पर छिड़का त्योंही दरवाजा अपने आप खुल गया। राजा ने उस सती का सन्मान किया और

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥

हे प्रभो ! मैं आप से यही अभिलाषा करता हूँ कि जहां कहीं और जिस किसी वेष में भी गुणवान पुरुष मिल जाये तो मैं उनके दर्शन करके प्रेम से विह्वल हो उठूं। मैं उनकी यथोचित सेवा कर सकूं। उनकी सेवा करते हुए मेरे मन में अत्यधिक सुख का अनुभव होने लगे। कहिए ! प्रार्थना तो भगवान से एक भक्त इस प्रकार की करता है परन्तु उसी भावना को जब असली रूप देने का वक्त आता है तो वह अपनी भावना को भूल जाता है और साकार रूप देने में उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में उसके द्वारा की गई दैनिक प्रार्थना का क्या महत्त्व रहा ! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी भक्त के हृदय में राग भाव के कारण अपने माने हुए गुणी पुरुष के प्रति तो प्रेम उत्पन्न हो जाता है और दूसरी संप्रदाय के उससे भी अधिक गुणी महापुरुष के प्रति द्वेष भाव जागृत हो जाता है। यद्यपि उस भावना के अनुसार तो सभी संप्रदायों के गुणी पुरुषों के प्रति समानभाव, समान प्रेम और समादर की वृत्ति ही रहनी चाहिए। परन्तु समय पर मनुष्य उक्त भावना को भी भुला बैठता है और एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष करने लग जाता है।

भाई ! एक समय की बात है कि स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० विहार करते हुए किसी गांव में पहुंच गए। जब वे बाजार में से होकर गुजर रहे थे तो रास्ते में एक लड़के की म० श्री की तरफ दृष्टि गई। वह खेल को छोड़कर श्रद्धा सहित म० श्री के पास आया और प्रसन्न मन से उसने म० को नमस्कार किया। इसके बाद वह घर पर पहुँच कर अपनी मां से कहने लगा कि अरी मां ! अपने यहां महाराज

आए हैं। उस लड़के के उक्त वचनों को सुन कर उसकी मां ने तत्क्षण प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि—"महाराज आए हैं तो कांई महाराज ने रोकूँ ?" मां के द्वारा कहे गए उक्त शब्द म० श्री के कानों में भी पड़ गए। उन्होंने अपने मन में ख्याल किया कि ओहो! कहां तो इस बच्चे की सुन्दर भावना और कहां इसकी माता की द्वेष भरी विचार धारा! अरे! इस बहिन को हमारा यहां आना भी रोने के लिए साबित हुआ।

तो इस संसार में समान वय, समान शरीर और समान शक्ति के लोग तो फिर भी मिल जावेंगे परन्तु समान भावना वाले लोगों का मिलना बहुत मुश्किल है। कोई किसी को देख कर प्रसन्न होता है तो कोई किसी को देख कर जलता भी है।

देखो! जवासा एक प्रकार का घास होता है। वह काले काले पानी भरे बादलों की गड़गड़ाहट सुन कर सहमने लगता है। जब बारिश होती है तो वह सूख जाता है। परन्तु इसके विपरीत जब ग्रीष्म ऋतु की कड़कड़ाती धूप पड़ती है तो वह हरा-भरा हो जाता है। तो उस जवासा के मानिन्द भी कई मनुष्य हैं जो गुणी पुरुषों को देख कर प्रसन्न होने के बजाय जलने लगते हैं। यह ईर्ष्याग्नि मानव को जिंदा रहते हुए भी जला कर भस्म कर देती है। ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति अपनी आत्मा को उन्नति के बजाय अवनति की ओर ले जाते हैं।

तो वे पीठ और महा पीठ मुनिराज भी अपने दोनों भाइयों की प्रशंसा के गीत सुन-सुन कर मन में जलने लगे। उनसे उनकी प्रशंसा असह्य हो गई। भाई! संसार में दूसरों की प्रशंसा सुन कर खुश होने वाले थोड़े ही मिलेंगे। देखिए! स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० अपने मन में विचारते थे और प्रकट रूप में भी कहा करते थे कि आज समाज में जो गुणवान महा पुरुष हैं—चमकते सितारे हैं तो उनकी बदौलत

हमारी भी चमक और प्रशंसा है। यदि लोग उन महा पुरुषों की बुराई करते हैं, उनसे ईर्ष्या रखते हैं तो वे हमें भी लजाते हैं। हमारी भी उन महापुरुषों की बुराई के पीछे बुराई है। इसलिए किसी के प्रति ईर्ष्या भाव मत रखो और बन सके तो अपने मुंह से गुणी पुरुषों की प्रशंसा करके पुण्य के भागी बनो।

देख लो! उन पीठ तथा महापीठ मुनिराजों ने इसी ईर्ष्या-जलन की आग में जलते रहने के कारण भविष्य में स्त्री रूप में आने का आयुष्य बांध लिया। इस ईर्ष्याग्नि ने उन मुनिराजों को स्त्री गोत्र बांधने के लिए बाध्य कर दिया। यदि वे भी तपस्या करते हुए अपने भाइयों की सेवा कार्य की प्रशंसा सुन कर स्वयं भी प्रशंसा करके चार चांद लगा देते तो उन्हें भविष्य में स्त्री रूप में नहीं आना पड़ता।

इस प्रकार वे छःहों भाई तप, संयम, सेवा आदि शुभ करनी करते हुए समय आने पर इस नश्वर शरीर को त्याग कर अपनी विशुद्ध आत्माओं के साथ सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाकर देव रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने मानव जीवन को सार्थक बना लिया।

इस प्रकार जो भव्यात्मा गुणी पुरुषों को देख कर उनकी प्रशंसा करेंगे और मानव जीवन को सार्थक बनाने की कोशिश करेंगे वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे। इत्यलम्!

बैंगलोर (केन्टोन्मेन्ट)
ता०९-८-५९
रविवार

पुरुषार्थ ही भाग्य का निर्माता है

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस,
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्य गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पंथाः ॥

卐

भाइयों ! संसार में मनुष्य को पुरुषार्थ के द्वारा समस्त इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। निष्क्रिय, प्रमादी एवं आलस्य युक्त जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। यहां तक कि बिना पुरुषार्थ किए उदर पूर्ति भी नहीं की जा सकती। मनुष्य यदि भाग्य के भरोसे बैठ कर परिश्रम विहीन हो जाता है तो दुनिया उसकी तरफ उँगली दिखाकर इशारा करती है कि देखो ! यह कितना आलसी है ? यह पुरुषार्थ करने से तो जी चुराता है परन्तु जीवन में स्वप्न महलों के देखना चाहता है।

एक पुरुषार्थी पुरुष असम्भव कार्य को भी सम्भावित होते हुए देख लेता है। वह सत्पुरुषार्थ के द्वारा सांसारिक सुखों का उपभोक्ता तो बन ही जाता है परन्तु एक दिन समस्त कर्मों की बेड़ियों को काट कर मोक्ष-मन्दिर का भगवान भी बन जाता है। तो पुरुषार्थ इह लोक तथा परलोक दोनों ही जगह सुख का देने वाला है।

परन्तु अपने जीवन में किया गया पुरुषार्थ जब दुष्कर्मों की प्रवृत्तियों में किया जाता है, चोरी डकैती, व्यभिचार, गुण्डा गिरी, बदमाशी और दूसरों की आत्मा को कष्ट पहुँचाने की ओर किया जाता है तो नारकीय जीवन के महान कष्टों का दायक भी यही असत्पुरुषार्थ बन जाता है। इसलिए अपने जीवन में सदैव सत्पुरुषार्थ करो और असत्पुरुषार्थ करने के बजाय निष्क्रिय जीवन को ही श्रेष्ठ समझो। पुरुषार्थ से ही भाग्य का निर्माण होता है। आज का किया गया सत्पुरुषार्थ ही भविष्य में सौभाग्य के रूप में आकर खड़ा हो जाता है।

इसी बात की पुष्टि में आचार्य मानतुंग भक्तामर स्तोत्र के उक्त तेईसवें श्लोक में सत्पुरुषार्थी भगवान ऋषभदेव की महामहिम स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि हे मुनीन्द्र! मुनिजन आपको परम पुरुष और अंधकार के आगे सूर्य स्वरूप तथा निर्मल मानते हैं। वे मुनि आपको ही भले प्रकार प्राप्त करके मृत्यु को जीतते हैं, इसलिए आपके अतिरिक्त दूसरा कोई कल्याणकारी अथवा निरुपद्रव, मोक्ष का मार्ग नहीं है।

भाई! आचार्य श्री के कहने का आशय यही है कि हे भगवन्! आपको साधु पुरुष परम पुरुष; निर्मल और सूर्य के सदृश इसीलिए मानते हैं कि आप रागद्वेष रूपी मल से रहित हैं और मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले हैं। जब साधुजन आपको अपने सत्पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें मृत्यु का भी भय नहीं सताता अर्थात वे भी अमर बन जाते हैं। यही नहीं परन्तु आपके अतिरिक्त कोई कल्याणकारी मोक्ष का मार्ग नहीं होने से वे आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं।

देखो ! भगवान का सम्पूर्ण जीवन पुरुषार्थ मय होने से वे ही एक दिन मोक्ष मार्ग के द्रष्टा कहलाने लगे। उनके द्वारा बताए हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होने वाले भव्यात्मा को फिर मृत्यु का भी भय नहीं रहता। वह अपने जीवन में मृत्यु की तरफ से निर्भय बन जाता है। शास्त्रों में बताया गया है कि साधु जीवन में सत्ताईस गुणों का होना अनिवार्य है। उनमें से एक गुण यह भी बताया गया है कि साधक को मृत्यु का भय तथा जीने का मोह भी नहीं रखना चाहिए। परन्तु यह तभी संभवित है जब कि साधक ने भगवान के वास्तविक स्वरूप को समझ लिया हो। जो साधक अपनी साधना पथ पर चलते हुए भी यदि मृत्यु से भय खाता है और जीने की आकांक्षा करता है तो वह तीर्थङ्कर भगवान के मोक्ष मार्ग का पालन भी भलि प्रकार नहीं कर सकता। इसलिए संसार में उपद्रव रहित और कल्याणकारी मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने के लिए भगवान के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान होना आवश्यक है। भाई ! तीर्थङ्कर भगवान के विशेषण बताते हुए शास्त्रकार ने 'नमोत्थुणं' के पाठ में भगवान को "मग्गदयाणं" का विशेषण दिया है। अर्थात्—हे भगवन् ! आप संसार के जीवों का मार्ग प्रदर्शन करने वाले हैं। और जब साधक भगवान के द्वारा बताए हुए मोक्ष मार्ग पर गति करने लगता है तो फिर उसे किसी प्रकार का भय और उपद्रव नहीं होता। वह मोक्ष मार्ग में पुरुषार्थ करते हुए सम्यक्भाव की प्राप्ति कर लेता है।

भाई ! जिसके जीवन में एक बार भी सम्यक्भाव की प्राप्ति हो जाती है वह आत्मा फिर नरक गति, तिर्यञ्च गति, स्त्री वेद, नपुंसक वेद, भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देव की योनि में उत्पन्न नहीं होने पाता। अर्थात्—वह उक्त सात स्थानों के बंधन से रहित हो जाता है। वह सम्यक् दृष्टि वाला जीव या तो उच्च देवलोक में जाकर उत्पन्न होता है अथवा साधुवेष धारण करके उसी भव में मोक्षावस्था

को प्राप्त कर लेता है। तो इसीलिए साधुजनों ने तीर्थङ्कर भगवान को मोक्ष का मार्ग माना है। ऐसे शिव मार्ग को बताने वाले प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव थे। उन्हीं भगवान ऋषभदेव को हमारा सबसे पहिले नमस्कार है।

भाई! आज संसार में हमारे समक्ष तीर्थङ्कर भगवान तो नहीं हैं परन्तु पुरुषार्थ करके जगज्जीवों के कल्याणार्थ उन्होंने जो धर्मोपदेश दिया उसी का संकलन आज हमारे सामने द्वादशांगी वाणी के रूप में मौजूद है। तो उन्हीं बत्तीस-सूत्रों में से मैं आज आपके सामने ग्यारहवें अंग दुख-विपाक सूत्र के दूसरे अध्ययन को सुनाने जारहा हूँ।

आर्य भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने परम शिष्य जंबू स्वामी को दुख-विपाक सूत्र के द्वितीय अध्ययन के भाव फर्माते हुए कहा कि हे जंबू! द्युति पलाश उद्यान में श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने आई हुई परिषद् के समक्ष कल्याणकारी धर्मोपदेश दिया। प्रवचन श्रवण कर सभी नर नारिगण भगवान को वन्दन नमस्कार करके अपने अपने स्थान को लौट गए।

इसी नगर में विजय सार्थवाह नाम का सेठ भी रहता था। उसके सुभद्रा नाम की सेठानी थी। उन दोनों से उत्पन्न हुए पुत्र का नाम उज्झित कुमार रखा गया।

जब सारी जनता भगवान महावीर के धर्मोपदेश को श्रवण कर नगर को लौट गई तब उस काल और उस समय में श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी के बड़े शिष्य इन्द्रभूतिजी भगवान की आज्ञा लेकर बेले की तपस्या के पारणे के लिए उक्त उद्यान से निकल कर वाणिज्य नगर में प्रविष्ट हुए। वे नगर में ऊँच, नीच तथा मध्यम कुलों में

भिक्षा के लिए घूमने लगे। उस समय उन्होंने राज मार्ग पर बहुत से हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सिपाहियों को देखा जो अस्त्र-शस्त्र से सज्जित थे। उन्हीं सैनिकों के बीच उन्होंने एक ऐसे पुरुष को देखा जिसके दोनों हाथ पीछे की तरफ बंधे हुए थे। उसके नाक, कान वगैरह छेदन किए हुए थे तथा उसके शरीर से पसीना टपक रहा था यही नहीं परन्तु उसके पैरों में बेड़ियां पहिनाई हुई थीं, चोर की तरह वस्त्र धारण कराए हुए थे और सारा शरीर गेरुए रंग का किया हुआ था। उसे अपने प्राण भी अप्रिय हो रहे थे। सैनिक लोग उसके शरीर से तिल-तिल जितना मांस काट-काट कर उसको ही जबर्दस्ती खिला रहे थे। वे लोग उसे ताड़ना-तर्जना दे रहे थे। वे सैनिक चौराहे-चौराहे पर ढोल बजाकर उद्घोषणा कर रहे थे कि यह उज्झित कुमार केवल अपने द्वारा किए हुए पाप कर्मों का ही फल भोग रहा है। इसमें राज का कोई दोष नहीं है।

उस समय भगवान गौतम स्वामी ने उक्त उज्झित कुमार की हृदय को कंपा देने वाली हालत देखकर मन में विचार किया कि अहो! मैंने प्रत्यक्ष में नरक तथा नारकी जीव को वेदना भोगते हुए नहीं देखा परन्तु आज यह उज्झितकुमार साक्षात् नरक के समान दुखों को भोग रहा है। यह दृश्य देखकर गौतमस्वामी का हृदय दया से पसीज गया। वे अधिक समय तक वहां नहीं ठहर सके। वे तत्काल आहार पानी लेकर पुनः उद्यान में आगए। उन्होंने भगवान महावीर को वन्दन किया और अपने द्वारा लाए हुए आहार पानी को उन्हें दिखाया। इसके पश्चात् वे भगवान महावीर से हाथ जोड़ कर अर्ज करने लगे कि हे भगवन! मैंने आज गोचरी को जाते हुए रास्ते में एक ऐसे पुरुष को देखा जो साक्षात नरक के समान दुख भोग रहा

था। हे भगवन् ! यह व्यक्ति पूर्व जन्म में कौन था ? इसने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से पाप कर्म किए जिनकी वजह से इसे यहां नारकीय जीवन भोगना पड़ रहा है ?

यह प्रश्न सुनते ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उसके समाधान में कहा कि हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी भारतवर्ष में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहां सुदर्शन नाम का राजा राज्य करता था। वह नृपति मलयाचल(मेरु)पर्वत के समान गुणों को धारण करने वाला था। उसी हस्तिनापुर नगर के मध्य में एक गौशाला थी जिसमें नगर के सनाथ तथा अनाथ पशु परवरिश पाते थे। वह दर्शनीय गौशाला थी। उसमें बहुत सी गाएँ भैंसे, बैल, सांड, पाडे तथा बछड़े, बछड़ियां रहते थे। वहां उन सब पशुओं को खाने के लिए घास तथा पीने के लिए जल का बहुत अच्छा इन्तजाम था। भाई ! पशुओं को जहां घास तथा पानी का आराम मिलता है वहां लोग जगह-जगह से पशु लाकर भरती करा देते हैं। तो इस प्रकार का अच्छा प्रबन्ध होने से वहां भी बहुत से पशु इकट्ठे हो गए थे। वहां वे सब सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें जीवन में किसी प्रकार का भय नहीं था।

उस समय उसी नगर में भीम नाम का कुडग्राही भी रहता था। वह अधर्म कार्यों में ही आनन्द मानता और आजीविका भी पाप कर्म करके उपार्जन करता था। उस अधर्मी कुडग्राही की भार्या का नाम ऊपला था। वह बड़ी रूपवती तथा कलाकौशल में प्रवीण थी। एक समय वह ऊपला गर्भवती हुई। जब उसे तीसरा मास चल रहा था तो उसे दोहला उत्पन्न हुआ। उसने अपने मन में एक दिन विचार किया कि "वे माताएं धन्य हैं जो इस गौशाला में रहने वाले सभी प्रकार के पशुओं के पीठ, स्तन स्कन्ध, आंख गर्दन अथवा शरीर के

दूसरे अवयवों का मांस काटकर तलकर, भूंजकर और मिर्च मसाला लगाकर स्वयं भी खाती हैं और दूसरों को खिलाती हैं। और इस प्रकार भोग भोगती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती है। मेरी भी यही हार्दिक इच्छा है कि मैं भी उक्त प्रकार के मांस को तलकर-भूंज कर खाऊँ और भोग-भोगकर अपने जीवन को सार्थक करूँ।

यद्यपि उसकी इच्छा की पूर्ति भी पुरुषार्थ के बिना पूर्ण नहीं हो सकती थी परन्तु वह पुरुषार्थ पाप कर्म का पोषक था। इससे उसका जीवन रसातल की ओर जाने वाला था। इस प्रकार की पाप मय विचार धारा उसे अपने गर्भस्थ पापी जीव के कारण उत्पन्न हुई। जब कोई पापी जीव गर्भ में आता है तो उसकी माता के मन में भी इसी प्रकार के दुष्ट विचार उत्पन्न हो जाते हैं चूंकि उपला के मन में भी पशुओं के मांस खाने की इच्छा हुई तो उसके गर्भ में भी पापी जीव ही आया था।

परन्तु जब उसे अपने दोहद के पूरे होने के आसार नजर नहीं आए तो वह विचारों ही विचारों में सूखने लगी। उसका सारा शरीर सूख गया, चेहरा फीका पड़ गया और सारी इन्द्रियां शिथिल तथा निस्तेज होगईं। वह मन, वचन तथा काया के योग से दीन हो गई। उसका मुख पीला पड़ गया।

जब उपला के पति ने उसकी ऐसी परिस्थिति देखी तो वह उसे मीठे शब्दों में कहने लगा कि हे प्रिये! आजकल तुम आर्त ध्यान में मग्न रहती हो और तुम्हारा शरीर भी निस्तेज हो गया है तो इसका कारण क्या है? तुम्हें क्या दुख हो रहा है? तुम्हें जो भी दुख चिन्ता हो वह मुझ से कहो! क्योंकि मन के भाव जाने बिना मैं तुम्हारे दुख का निवारण भी कैसे कर सकता हूँ। इसलिए जो भी दुख तुम्हें सता

रहा हो उसे कह सुनावो। मैं उस दुख को दूर करने का यथाशक्य प्रयत्न करूँगा।

अपने पति के मुख से उक्त शब्दों को सुनकर ऊपला ने कहा कि पतिदेव! मुझे गर्भ को रहे हुए तीन माह हो चुके हैं। इस अवसर पर मुझे गर्भ के प्रताप से यह दोहद उत्पन्न हुआ है कि मैं उक्त गौशाला में रहने वाले पशुओं के अवयवों का मांस तल भूंज कर खाऊँ। परन्तु मुझे इस प्रकार को इच्छा पूर्ण होते हुए नजर नहीं आ रही है। इसी कारण मेरे शरीर की यह दुर्दशा होती जा रही है। इसके अतिरिक्त मुझे कोई आर्तध्यान नहीं है।

जब उस भीम कुडग्राही ने अपनी पत्नि के उक्त विचार जाने तो उसने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि प्रिये! मैं वही कार्य करूँगा जिससे तेरा आर्तध्यान मिट सके और तेरा दोहला पूर्ण हो सके। तू अब अपने मन में समझ ले कि तेरा दोहला पूर्ण होने में कोई देर नहीं है। इस प्रकार के मनभावने वचनों को सुनकर वह ऊपला बड़ी प्रसन्न हुई।

अपनी स्त्री को उक्त आश्वासन देकर वह कुडग्राही अपने वचन के अनुसार कार्य करने को तैयार हो गया। एक दिन आधी रात्रि के समय वह अपने बिस्तर से उठा और छेदन-भेदन के हथियार लेकर अकेला ही हस्तिनापुर नगर के मध्य में होता हुआ उक्त गौशाला में पहुँच गया। उसने वहां पहुँच कर बड़ी होशियारी के साथ उन पशुओं के नाक, कान, आंख, स्तन, स्कन्ध आदि अवयवों के मांस काटे और उन्हें लेकर चुपचाप अपने घर पर लौट आया। वह जो जो मांस के टुकड़े लाया था उन्हें उसने अपनी पत्नि ऊपला के सामने रख दिये। उसने अपनी पत्नि से कहा कि प्रिये! तेरे कथनानुसार मैं मांस के

टुकड़े ले आया हूँ। अब तू इन्हें तेरी इच्छानुसार तल-भून कर खाले और अपने उत्पन्न दोहले को पूर्ण कर।

वह उत्पला उन पशुओं के मांस के टुकड़ों को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने उन्हें तला, भूंजा, और उनमें मिर्च मसाले डालकर स्वयं ने भी मदिरा सेवन करते हुए खाये और दूसरों को भी खिलाये। इस प्रकार दोहद की पूर्ति होजाने पर वह अतीव प्रसन्न हुई और सुख पूर्वक अपने गर्भ की प्रतिपालना करती हुई विचरण करने लगी। अब उसका शरीर भी बलवान होने लगा और चेहरे की निस्तेजता भी गायब होगई। इसके बाद नौ मास परिपूर्ण होजाने पर उसने अपने पुत्र को जन्म दिया। ज्यों ही वह गर्भस्थ जीव माता के पेट से बाहर निकला त्यों ही उसने मोटे मोटे शब्दों में रोना शुरू कर दिया। उसने इतने तीक्ष्ण दुस्स्वर में रुदन किया जो सुनने वालों के मन में भय का संचार करने वाला था। उसके भयावने रुदन को सुनकर उस गौशाला के तमाम छोटे मोटे पशुगण भयभीत होकर गौशाला से इधर उधर भाग निकले।

उस पुत्र के माता पिता ने पुत्र जन्म की खुशी में उसका दशोटन किया और बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत्त होकर उसका नाम गौत्रासिया रखा। इस प्रकार वह बालक दिन प्रति दिन सुख के झूले में झूलता हुआ बढ़ने लगा। जब उसने युवावस्था में प्रवेश किया तो उसका पिता भीम कुडग्राही काल धर्म को प्राप्त हो गया।

अपने पिता के निधन हो जाने पर उस गौत्रासिए ने कालों से अश्रुधारा बहाते हुए अपने कुटुम्बी जनों के साथ, उस समय के रीति रिवाज के मुताबिक उसकी अन्त्येष्टि क्रिया विधि सहित की। भाई! मृत व्यक्ति का अन्तिम संस्कार भी चार प्रकार से किया जाता है। कुछ लोग तो मृत व्यक्ति को जला देते हैं, कुछ उसे जमीन में दफना देते हैं, कुछ लोग नदी में शव को बहा देते हैं और कुछ लोग

मुर्दे को पशु-पक्षियों को खाने के लिए हवाले कर देते हैं। यह सब उक्त प्रकार की कार्यवाही अपने-अपने देश के वातावरण के अनुसार की जाती है। अर्थात्-जहां फालतू जमीन कम होती है तो वहां मृत व्यक्ति का दाह संस्कार किया जाता है। जहां ईंधन की कमी होती है और रेगिस्तानी इलाका होता है तो वहां के रहने वाले मुर्दे को जमीन में दफना देते हैं। परन्तु जहां जमीन और ईंधन दोनों की कमी होती है वहां के लोग शव को पशु-पक्षियों को सौंप देते हैं। और जहां के लोग नदियों के किनारों पर बसर करते हैं वे मृत व्यक्ति के शव को नदी में बहा कर अन्त्येष्ठि क्रिया कर्म कर लेते हैं।

तो उस गौत्रासिए ने भी उस समय के रिवाज के अनुसार अपने पिता के शव का अन्तिम संस्कार करके अपने काम-काज में व्यस्त हो गया। अब वह आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा। उसने भी पुरुषार्थ-परिश्रम करके अपना नाम प्रख्यात कर डाला। कालान्तर में उसकी होशियारी से प्रसन्न होकर वहां के राजा सुदर्शन ने उसे अपने यहां दूत के रूप में नियुक्त कर लिया।

परन्तु वह गौत्रासिया भी अपने पिता की तरह बड़ा अधर्मी था। वह भी अधर्म कार्य करके अपनी आजीविका उपार्जन करता था। वह भी अर्धरात्रि में अपने शयनागार से उठता और छेदन-भेदन के शस्त्र लेकर चुपचाप उक्त गौशाला में पहुँच जाता। वहां पहुंचकर बड़ी सावधानी के साथ वह उन विविध पशुओं के अनेक अवयव के मांस को काटता और वापिस शीघ्रगति से अपने घर आ जाता। वह फिर उक्त मांस के टुकड़ों को तलकर भूंजकर और मिर्च-मसाले मिलाकर मदिरा के साथ सेवन करता था।

इस प्रकार वह गौत्रासिया कुडग्राही तीव्र पाप कर्मों का संचय करके तथा पांच सौ वर्षों का उत्कृष्ट आयुष्य भोगकर यथा समय काल करके दूसरी नरक में तीन सागरोपम की स्थिति वाला नेरिया

बना। उक्त अवधि तक उसे नरक में नाना प्रकार की असह्य वेदनाएँ सहन करनी पड़ीं।

सज्जनों! आज यदि हम हमारी वर्तमान सरकार के कार्य-कलापों की ओर दीर्घ दृष्टि डालें तो हमें जानकारी होगी कि वह भी उस गौत्रासिए से कहीं अधिक हिंसात्मक प्रवृत्ति करके देश को पाप कर्म के बोझ से भारी बना रही है। जिस कांग्रेस की बुनियाद केवल अहिंसा और सत्य के ऊपर डाली गई थी वही कांग्रेस सरकार आज हिंसा के नए-नए तरीके अपना रही है। जबकि महात्मा गांधी ने स्वयं सत्य एवं अहिंसा का जीवन में पूर्ण रूप से पालन करते हुए अपने अनुयाइयों को भी उसी राह पर चलने का आदेश दिया था। परन्तु वे ही अनुयायी स्वतंत्र भारत में उच्च पदाधिकारी बनकर अपने राष्ट्र पिता के बताए हुए मंत्र को प्रायः भूल गए हैं। भाई! वह गौत्रासिया तो केवल अपने शरीर के पोषण के लिए ही पाप कर्म का आचरण करता था परन्तु आज की सरकार तो हिंसात्मक व्यापार ही करने लग गई है। जिस पवित्र भारत भूमि के निवासी किसी दिन आध्यात्मिकता का पाठ विदेशी लोगों को पढ़ाते थे वहीं आज विदेशों के साथ पशुओं की जबान, चमड़ा और मांस का व्यापार करने पर उतारू हो गए हैं। आज लाखों बन्दर पकड़वाकर अमेरिका आदि विदेशों में भेजे जा रहे हैं जहां वे मूक पशु दयनीय दशा में तरह-तरह के प्रयोग में काम में आने के बाद मरण को प्राप्त हो जाते हैं। तो आज पूर्व समय की अपेक्षा विशेष रूप से हिंसा बढ़ चुकी है। परन्तु याद रखना! कहीं यही हिंसामय प्रवृत्ति भारत के भाग्य को समुज्ज्वल बनाने के बजाय रसातल की ओर न पहुंचा दे।

भाई! जिस-जिस प्रान्त से चुनकर सदस्यगण असेम्बली में जाए हैं और जब केन्द्रीय विधान सभा में बैठकर इस हिंसात्मक बिल पेश किए जाते हैं और उसके समर्थन में उन सदस्यों के भी हाथ ऊँचे

पडते हैं तो समझलो कि वे दया धर्मी होने का दावा भी क्यों न करते हों परन्तु उस समर्थन में शरीक होने से वे भी पाप के भागी बन जाते हैं। मुझे कहते हुए बड़ी शर्म महसूस होती है कि आज की भारत सरकार मत्स्योत्पादन केन्द्र, मुर्गी पालन केन्द्र, बन्दरों का निर्यात केन्द्र और टिड्डी नाशक केन्द्र स्थापित कर हिंसात्मक प्रवृत्ति को बढ़ाने में प्रोत्साहन दे रही है। हमारे मन्त्रीगण यह समझ बैठे हैं कि हम उक्त केन्द्रों की स्थापना करके खाद्यान्न को समस्या को हल कर लेंगे। परन्तु इससे उन लोगों को समस्या हल होने के बजाय और बढ़ जाएगी। क्योंकि जहां हिंसा है वहां सर्व नाश है और अहिंसा है वहाँ सर्वांश में सुख समृद्धि का साम्राज्य है। तो मैं उन मन्त्री महोदयों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर देना चाहता हूँ कि यदि वे देश में सच्चे मायने में राम राज्य की स्थापना करना चाहते हैं तो महात्मा गांधी के बताए हुए पद-चिन्हों पर चलते हुए अहिंसक प्रवृत्ति करें। अहिंसा के द्वारा देश की प्रत्येक जटिल से जटिल समस्या का हल होना सम्भवित है।

आज देशवासियों की पुरजोर मांग है कि समस्त भारतवर्ष में गौवध निषेध कानून बनना चाहिए। परन्तु सरकार का अभी तक इस ओर लक्ष्य नहीं हो रहा है। आज हिन्दुस्तान के कत्लखानों में आए दिन मांस के लिए सैकड़ों गाएं काट दी जाती हैं। परन्तु इस प्रवृत्ति से भारत के भावी नौनिहालों के जीवन पर कितना बुरा असर पड़ेगा इसकी उन्हें चिन्ता नहीं हो रही है। अरे! दूध के अभाव में देश की सम्पत्ति रूप बालक क्षीणकाय, दुर्बल और निस्तेज हो जायेंगे। वे असमय में ही रोगों के शिकार बन कर काल के गाल में पहुँच जायेंगे। इसलिए देश की भावी संपत्ति की सुरक्षा के लिए यथा शीघ्र गौवध निषेध कानून पास करके पुण्य लाभ लेना चाहिए। क्योंकि इस थोड़ी सी जिन्दगी में पाप कर्म करके चाहे कितने ही

चांदी के टुकड़ों को जमा करलो परन्तु ये साथ में जाने वाले नहीं हैं। हां! तुम्हारे साथ तुम्हारे द्वारा किए हुए पाप कर्म अवश्य जायेंगे। आज जिन पाप कर्मों को तुम हंसते २ कर रहे हो वे ही पाप रो-रो कर भी भोगे बिना छूटने वाले नहीं हैं। इसलिए हिंसात्मक प्रवृत्ति से बचते हुए अहिंसा देवी के उपासक बनकर निर्भय बन जाओ।

हां! तो मैं कह रहा था कि वह गौत्रासिया हिंसात्मक प्रवृत्ति में अपने जीवन को समाप्त करके दूसरी नरक में तीन सागरोपम तक की स्थिति में दुख उठाने के लिए नेरिए के रूप में उत्पन्न होगया। वहां की असह्य वेदनाओं का वर्णन तो केवल ज्ञानी महापुरुष ही कर सकते हैं। उस घोर वेदना काल को पूर्ण करने के पश्चात वह यथा समय वहां से उद्वृत्त होकर वाणिज्य नगर में रहने वाले विजय सार्थवाह की धर्म पत्नि सुभद्रा की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। चूंकि आज तक उस सुभद्रा सार्थवाहिनी के उदर से मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते थे अतएव नौ मास पूर्ण होने पर जब उस गौत्रासिया-कुटग्राही का जन्म हुआ तो उसे जीवित दशा में देखने की कामना से उसने उस नवजात शिशु को उकरड़ी पर फिकवा कर पुनः मंगवा लिया।

भाई! बच्चे का मुँह देखने के लिये अथवा बच्चे की दीर्घायु के लिये एक माता सब कुछ करने को तैयार हो जाती है। वह बच्चे की कामना से भैरू, भवानी, पीर, पैगम्बर वगैरह के यहां जाकर सिर रगड़ती है, मिन्नतें करती है और भोपों द्वारा बताए हुए पाप कर्म करने को भी तैयार हो जाती है। वह अपने पुत्र की दीर्घायु देखने के लिये भैरू भवानी के आगे मूक पशुओं का बलिदान देने से भी नहीं हिचकिचाती। परन्तु उसे पता नहीं कि तेरे पापाचरण करने से क्या होने वाला है? इन पाप कर्मों का फल एक दिन तुझे ही भोगना पड़ेगा। तेरे द्वारा इन दुष्कर्मों के सेवन करने पर भी यदि

तेरे भाग्य में पुत्र का मुँह देखना नहीं लिखा है अथवा अल्पायु लेकर वह आत्मा आई है तो तेरे सारे उपाय व्यर्थ साबित होंगे। इसलिये अपने भाग्य पर भरोसा रखते हुए धर्म प्रवृत्ति में अपने जीवन को लगाओ।

तो सुभद्रा सार्थवाहिनी ने अपने पुत्र को ऊखेड़ी पर फिकवा कर पुनः मंगवा लिया। फिर माता पिता ने बच्चे का जन्म महोत्सव मनाया और बारहवें दिन उसका नाम संस्कार किया गया। उस पुत्र को ऊखेड़ी पर फिकवा देने के कारण उसका नाम उज्झित कुमार रखा गया। जैसे कि आजकल देवीलाल, (देवी का दिया हुआ) भैंरूलाल, (भैंरूजी की मानता से प्राप्त होने वाला) अथवा ढगलिया, मांगिया वगैरह वगैरह नाम बच्चों के रख दिये जाते हैं उसी प्रकार उस पुत्र का नाम भी उज्झित कुमार रख दिया गया।

अब उस उज्झित कुमार के पालन पोषण के लिये उसके माता-पिता ने पांच धाएँ नियुक्त कर दीं। वे सब अपना अपना पृथक कार्य करती हुई उस बालक को वृद्धिगत करने लगी। वह उज्झित कुमार उन धायों के संरक्षण में इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होने लगा जिस प्रकार किसी पर्वत की गुफा में चम्पा का झाड़ निर्विघ्नता पूर्वक फलता और फूलता है।

भाई! इस कथा को सुनकर आपको जीवन में बड़ी भारी शिक्षा प्राप्त होगी कि किस प्रकार असत कार्यों में पुरुषार्थ करने से यह आत्मा उन पाप कर्मों से भारी बनकर रसातल की ओर जाती है और महान कष्टों को भोगने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष सद् शिक्षा के रूप में कहते हैं कि:—

पाप कर्म करते रहो, जो सुख चाहो सेण।
[illegible] ॥

भाई ! आप यह सुनकर आश्चर्यान्वित होंगे कि महापुरुष भी क्या कभी ऐसा कह सकते हैं कि "पाप कर्म करते रहो" ? परन्तु जब आप उक्त वाक्य के भावों की गहराई में जायेंगे तो उनके कहने का अभिप्राय आपके मस्तिष्क में स्पष्टतया झलकने लगेगा। यदि आप 'रहो' शब्द का अर्थ भलिभांति समझलें तो फिर आपकी शंका निर्मूल हो जायेगी। यहां 'रहो' शब्द का अर्थ महापुरुषों ने 'ठहरो या रुको' किया है। अर्थात्—हे भव्यात्मा ! तुम पाप कर्म करते रुक जाओ। ऐसा करने से तुम्हें जीवन में सुख की प्राप्ति होगी। ये संत पुरुषों के वचन हैं अतएव इन वचनों को मानना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है। इस प्रकार उक्त दोहे में स्व० पूज्य खूबचन्दजी मा० ने जीवन सुधार की कुंजी बतादी है।

इस प्रकार उज्झित कुमार अपनी पाप धारों की संलग्नता में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। अब किस प्रकार उसके पूर्वोपार्जित पाप कर्म उसे दुख सागर में धकेलते हैं और किस प्रकार अनेक जन्म-जन्मान्तर करने के पश्चात् सत्पुरुषार्थ करने से उसकी आत्मा मोक्ष की अधिकारिणी बनती है यह सब कुछ आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा।

ऋषभ-भवन्तरी :-

अब मैं आपके समक्ष कुछ समय के लिए भगवान ऋषभदेव के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में प्रकाश डाल देना उचित समझता हूं।

भगवान ऋषभदेव की आत्मा ने भी अपने पूर्व भवों में तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने के लिए सत्पुरुषार्थ किया। उनकी आत्मा ने जीवानन्द वैद्य के भव में मुनिराज को औषधि दान दिया और उसमें उत्कृष्ट रसायन आने से उन्होंने तीर्थंकर गोत्र उपार्जित कर लिया।

वे अपने जीवानन्द वैद्य के भव को पूर्ण करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाकर तैंतीस सागरोपम की स्थिति वाले देव रूप में उत्पन्न

हुए। वहां के सुखों का उपभोग करने के पश्चात वे यथा समय च्यव-कर इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, कौशल देश है वहां अयोध्या नाम की नगरी में नाभि कुलकर की अर्धांगिनी माता मरुदेवी की कुक्षिका में आषाढ कृष्णा चतुर्थी को सर्वार्थ सिद्ध विमान से आकर अवतरित हुए। यह समय वह था जब कि तीसरे आरे में चौरासी लाख पूर्व और तीन वर्ष तथा साढे आठ महिने अवशिष्ट रह गए थे। उस समय नाभि नाम के पन्द्रहवें कुलकर शासन कर रहे थे वे बड़े सौभाग्यशाली कुलगुरु थे।

भगवान् ऋषभ की आत्मा जब माता मरुदेवी के गर्भ में आई तो माता को चौदह शुभ स्वप्न दिखाई दिए। यह अनादिकालीन नियम है कि जब-जब कोई भाग्यवान और पुण्यशाली आत्मा माता के गर्भ में आती है तो वह अपने शुभागमन की सूचना शुभ स्वप्नों के रूप में अवश्यमेव देती है। माता मरुदेवी ने सर्व प्रथम वृषभ का स्वप्न देखा। स्वप्न देखकर माता का हृदय अतीव प्रसन्न हुआ। वे अपने शयनागृह से उठकर अपने पतिदेव के पास गईं और उनसे मीठे शब्दों में शुभ स्वप्नों के फल के विषय में पूछा। नाभिकुलकर ने भी मरुदेवी के मुखारविन्द से शुभ स्वप्न सुनकर प्रसन्नता प्रकट की और स्वप्न फल के विषय में कहा कि भद्रे! तुम एक ऐसे परम भाग्य-वान पुत्र को प्रसव होगी जो संसार में सत्पुरुषार्थ के द्वारा अपना नाम उज्ज्वल करते हुए तुम्हें भी यशस्वी बना देगा।

इस प्रकार सवा नौ मास पूर्ण होने के पश्चात् चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन भगवान ऋषभदेव का शुभ मुहूर्त में जन्म हुआ। भगवान का शुभ जन्म होते ही तीर्थङ्कर नाम कर्म के उदय से सूचना मिलते ही चौसठ इन्द्रों ने उपस्थित होकर जन्म जात तीर्थङ्कर भगवान का मेरुगिरी पर्वत पर ले जाकर जन्म महोत्सव मनाया और छप्पन प्रकार की दिशाकुमारियों ने भगवान की सेवा में उप-

स्थित होकर समस्त जन्म संस्कार कर्म किए। भाई! यह लम्बा चौड़ा अधिकार यदि आप अद्योपान्त देखना चाहते हैं तो यह वर्णन आपको श्रीमद् जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र में अवलोकित हो सकता है।

यहां तो स्थानाभाव के कारण मैं सिर्फ इतना ही बता देना आवश्यक समझता हूँ कि तीर्थङ्कर भगवान के जन्म महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए भवन पतियों के बीस इन्द्र, वाण व्यंतरों के बत्तीस इन्द्र, ज्योतिषियों के दो इन्द्र और वैमानिकों के दस इन्द्र कुल मिलाकर चौसठ इन्द्र आते हैं। भाई! जब कोई तीर्थङ्कर भगवान दक्षिण भरत में अवतरित होते हैं तो उस समय बत्तीस लाख विमानों में से एक विमान में रहने वाला शक्रेन्द्र नाम का इन्द्र अपने अवधिज्ञान से जान लेता है कि अमुक नगर में भगवान का जन्म हुआ है। अतएव मेरा परम कर्तव्य है कि भगवान के शुभ जन्म की खुशी के समाचार सभी देवलोकों में पहुँचाऊँ और सभी देवी देवताओं के साथ भगवान का जन्म महोत्सव मनाऊँ। तो वह उक्त खुशी के समाचार की शुभ सूचना सुस्वर नाम के घण्टे को बजाकर सभी देवलोकों में पहुँचा देता है। भाई! उक्त घन्टे की ध्वनि सभी देवलोकों में आज के टेलीफोन की तरह पहुँच जाती है। उस मधुर ध्वनि से सभी देवी देवताओं को परिज्ञात हो जाता है कि अमुक स्थान पर तीर्थङ्कर भगवान का जन्म हुआ है अतएव हम सबको जन्म महोत्सव मनाने के लिए चलना चाहिए।

उक्त सूचना देने के पश्चात् शक्रेन्द्र महाराज लाख योजन वाले पालक नाम के विमान में सभी देवी देवताओं के साथ बैठकर इस मनुष्य लोक में आते हैं। उनका विमान ज्यों-ज्यों नीचे आता है त्यों-त्यों छोटा पड़ता जाता है। अपने विमान से उतरने के पश्चात शक्रेन्द्र महाराज सीधे तीर्थङ्कर की माता के पास पहुँचता है और उनके दर्शन कर हाथ जोड़ कर कहता है कि हे रत्न कुक्ष की धारिणी!

तुमने ऐसे अमूल्य रत्न को जन्म दिया है कि आज जिसके पुण्य से प्रेरित होकर प्रथम देवलोक का इन्द्र शक्रेन्द्र तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ है। हे जगज्जननी! तुम मुझे देखकर भयभीत मत होना। तत्पश्चात शक्रेन्द्र महाराज तीर्थङ्कर की माता को निद्रावस्था में सुला कर तथा उक्त पुत्र के अनुरूप ही दूसरा नकली पुत्र माता के पास रखकर और तीर्थङ्कर भगवान को अपनी गोद में लेकर बाहर आ जाते हैं। वे अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा अपने पांच रूप बनाते हैं और अपने हाथों में छत्र, चंवर, छड़ी वगैरह धारण करते हुए भगवान को मेरुगिरि पर्वत पर ले जाते हैं। वहां पहुंच कर वे पंडग बन में स्थित पृथ्वी शिला पर अपनी गोद में भगवान को लेकर बैठते हैं। उस समय बाकी के त्रेसठ इन्द्र भी देवी देवताओं के साथ भगवान का जन्म महोत्सव मनाने के लिए एकत्रित हो जाते हैं। उनमें से बारहवें देवलोक का इन्द्र भगवान की जन्म क्रिया करता है। उस जन्म क्रिया कर्म करने के लिए कई प्रकार का पानी तथा कई तीर्थों की पवित्र मिट्टी मंगाई जाती है। इसके बाद सर्व प्रथम त्रेसठ ही इन्द्र भगवान को एक हजार आठ स्वर्ण कलश से स्नान कराते हैं। बाद में शक्रेन्द्र महाराज का नम्बर आता है। वे वैक्रिय शक्ति से अपना वृषभ का रूप बनाकर अपने दोनों सींगों से पानी के फव्वारे छोड़ते हुए भगवान को स्नान कराते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जन्म क्रिया कर लेने के पश्चात शक्रेन्द्र महाराज पुनः तीर्थङ्कर भगवान को माता के पास लाकर सुला देते हैं और माता की मोहिनी निद्रा को हटा देते हैं। माता मरुदेवी अपने पुत्र के मुख कमल को देखकर हर्षित हो जाती है।

इसके पश्चात् शक्रेन्द्र महाराज राज्य के खजाने को वेश्रमण देव से कहकर अखुट रूप में भरवा देता है। वह दुनिया के लोगों को इस प्रकार आदेश देता है कि जो कोई इस माता का अनिष्ट सोचेगा, बुरा करेगा और किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाएगा तो उसे इन्द्र

समझ लेगा। अब भगवान की जन्म क्रिया करने के लिए छप्पन प्रकार की दिशा कुमारियां उपस्थित होती हैं। इनमें से कोई दिशा-कुमारी भगवान का नाला काटती है कोई प्रसूति कर्म करती है, कोई स्नान कराती है और कोई कोई गीत गाती हुई अपने जीवन को धन्य मानती हैं। इस प्रकार वे भी अपना-अपना कार्य करती हैं।

भाई! मेरुगिरि पर्वत पर भगवान का जन्म महोत्सव मनाकर वे सब देवी-देवता नंदीश्वर द्वीप में जाकर भगवान का अट्ठाई महोत्सव मनाते हैं वे सब आठ दिवस पर्यन्त वहां ठहरकर धूमधाम से विधि सहित महोत्सव मनाकर अपने स्थान को लौट जाते हैं। यह सारी क्रिया देवताओं द्वारा सपन्न होती है।

परन्तु फिर भगवान के माता पिता नगर निवासियों के साथ तीर्थङ्कर का बड़े धूम-धाम से जन्म महोत्सव मनाते हैं। बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत होकर भगवान का नाम संस्कार किया जाता है। चूंकि उनकी माता मरुदेवी ने सर्वप्रथम वृषभ का स्वप्न देखा था अतएव इनका शुभ नाम भी ऋषभदेव रखा गया। इसके बाद पांच धायों के संरक्षण में भगवान ऋषभदेव बालक रूप में वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

भाई! भगवान ऋषभदेव का मध्यम चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। क्योंकि जिस समय में जितना आयुष्य होता है उसके दरम्यान की उम्र तीर्थङ्कर भगवान की हुआ करती है। तीर्थङ्कर भगवान की जघन्य और उत्कृष्ट उम्र नहीं होती। तो उस समय में उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की जिंदगी थी। जिसमें भगवान का मध्यम चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। इनका कंचन वर्ण का शरीर था। अपने चौरासी लाख पूर्व के आयुष्य में से भगवान ऋषभदेव ने बीस लाख पूर्व तक तो कुमारावस्था में समय व्यतीत किया।

अब भगवान ने कुमारावस्था को उल्लंघन करके युवावस्था में प्रवेश किया तो उनकी सेवा में बार-बार इन्द्र-इन्द्राणियां उपस्थित होते रहे।

चूंकि यह युगलिक काल था अतएव दस प्रकार के कल्पवृक्ष उन युगलियों की आशा पूर्ण करते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों तीसरे आरे के पूर्ण होने का समय सन्निकट आने लगा त्यों-त्यों उन कल्पवृक्षों से वस्तुओं की प्राप्ति होने में कमी आने लगी। अब यहीं से अकर्म भूमि का समय समाप्त होकर कर्म भूमि का समय आने लगा। कर्म भूमि उसे कहते हैं जब कि पुरुषार्थ करके ही लोग अपनी आजीविका उपार्जित करते हैं। कर्म भूमि का समय आजाने पर वहां के लोगों में अव्यवस्था फैलने लगी। उन लोगों में अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपस में लड़ाई झगड़े होने लगे।

इस प्रकार की अव्यवस्थित हालत देखकर इन्द्र का शुभागमन हुआ। उन्होंने युगलियों को समझा कर भगवान ऋषभदेव को उनका राजा घोषित कर दिया। इन्द्र ने सब को आदेश दिया कि देखो! आज से तुम्हारे राजा नाभि कुलकर के पुत्र भगवान ऋषभदेव हैं। तुम अपनी तकलीफों की शिकायत अपने नव निर्मित राजा से करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करा सकते हो।

भाई! जैन सूत्रों में तो भगवान ऋषभदेव के जीवन का सविस्तृत वर्णन है ही परन्तु वैष्णव शास्त्रों में भी इन्हें आठवें अवतार के रूप में माना गया है। यही नहीं परन्तु मुस्लिम साहित्य में भी इन्हें बाबा आदम के नाम से माना गया है। तो गर्ज यह है कि सभी धर्म ग्रन्थों ने इन्हें किसी न किसी रूप में अपना धर्म नेता माना ही है।

जब युगलिए अपनी आवश्यकताओं के लिए आपस में लड़ने लगे और अराजकता फैल गई तो इन्द्र ने आकर उन्हें समझाया और कहा कि तुम आपस में क्यों लड़ते हो? तुम अपने राजा के पास जाकर अपने उज्ज्वल भविष्य के लिये उनसे पथ-प्रदर्शन कराओ। तब वे लोग मिलकर भगवान ऋषभदेव के पास आये और अपनी तकलीफें पेश करके उनसे मार्ग-दर्शन के लिये पूछा।

भगवान ऋषभदेव ने उन लोगों की तकलीफें सुनकर कहा—भाई! तुम आपस में लड़ो मत! मैं तुम्हें आजीविका उपार्जन करने के लिये असि, मसि और कृषि रूप तीन कर्म सिखाये देता हूँ। तुम लोग उक्त कर्म सीख कर अपने पैरों पर खड़े हो सकते हो। अर्थात्—जिसमें दूसरों की रक्षा करने का सामर्थ्य हो वह असि कर्म अर्थात् शस्त्र बनाने और उनके द्वारा रक्षा करने की विद्या सीख ले। जो व्यापार करना चाहता है वह मसि कर्म अर्थात स्याही से लिखने की विद्या सीख ले। और जो इस पृथ्वी से सोना निकालना चाहे वह कृषि कर्म अर्थात् खेती बाड़ी करके अन्न उपजाने की कला सीख ले। इन तीनों प्रकार के कर्म सीख कर तुम लोग सुख शांति पूर्वक आजीविका उपार्जन करने में समर्थ हो सकोगे। तो भगवान ऋषभदेव ने उन सब को अपनी अपनी योग्यतानुसार कर्म सिखा दिए। इस प्रकार तीनों कर्म सिखा कर भगवान ने जनता का कल्याण किया। भगवान ने स्वयं अपने हाथ में हल लिया और खेत में जुत कर अनाज उत्पन्न करना सिखाया। उन्होंने फर्माया कि देखो! यह जमीन सोना उगलती है परन्तु पुरुषार्थ के बिना यह सोना प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव सबको कर्मठता एवं पुरुषार्थी बनने का सुन्दर सबक सिखाया। यह सब कुछ कार्य भगवान ने केवल "जनहिताय" अर्थात्—जनता के कल्याण के लिए किया।

भाई! पुरुषार्थ के द्वारा मुश्किल से मुश्किल कार्य भी सरल हो जाता है। ऐसे तो पुरुषार्थ करने में शरीर को तकलीफ उठानी पड़ती है परन्तु जब उसका मीठा फल प्रत्यक्ष में आता है तो प्रत्येक मनुष्य उस कष्ट को भूल जाता है और अपने जीवन को धन्य धन्य मानता है। इस समय में किया गया सत्पुरुषार्थ ही भविष्य में भाग्य के रूप में बदल जाता है। इसी सत्पुरुषार्थ को पुण्य और असत्पुरुषार्थ को पाप कहते हैं। पुण्य का फल मीठा और पाप का फल कड़वा होता है।

अब मैं एक दृष्टान्त द्वारा यह समझाने का प्रयत्न करूँगा कि पुरुषार्थ के द्वारा मनुष्य किस प्रकार जीवन में सुखी बन सकता है।

देखो ! किसी गांव में एक किसान रहता था। उसके घर में धन-धान्य की किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उसके चार पुत्र थे। वे चारों ही पुत्र बड़े आज्ञाकारी थे। वे चारों ही अपने पिता के साम्राज्य में बिना महनत किए आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। परन्तु भाई ! यह प्रकृति का अटल सिद्धांत है कि जिसने संसार में जन्म लिया है उसे एक दिन मरना अवश्यंभावी है। तो इसी सिद्धान्त के अनुसार जब वह किसान बुड्ढा होगया, रोग से ग्रसित हो गया तथा मृत्युशैया पर पड़ा पड़ा मौत की घड़ियां गिनने लगा तो उसने अपने चारों बेटों को बुलाकर कहा कि बेटो ! तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि इस संसार में कोई भी अमर पट्टा लिखा कर नहीं लाया है। यहां से सभी को अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु को छोड़कर एक दिन जाना अवश्य है। तो उसी नियम के अनुसार मैं भी यहां चन्द घन्टों का ही महमान हूँ। अतएव मैं तुम लोगों को अंतिम शिक्षा के रूप में इतना ही कह देना उचित समझता हूँ कि तुम चारों भाई संगठित रूप में रहना और मेरी तरह पुरुषार्थ करके तुम भी अपने कुटुम्ब का पालन पोषण करना। क्योंकि आज के जमाने में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से काम चलने वाला नहीं है। तुम पुरुषार्थ करने में जितना मन लगाओगे उतना ही अपने जीवन को भविष्य में सुखी बना सकोगे।

उस मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए वृद्ध किसान की शिक्षा को उन चारों पुत्रों ने बड़े ध्यान से सुनी। उन्होंने अपने पिता को अश्वासन देते हुए कहा कि पिताजी ! आप हमारी तरफ से बिलकुल निश्चिन्त रहें।

हम आपकी शिक्षा का अक्षरशः पालन करेंगे। हम आपस में संगठित रूप में रहते हुए खूब तन तोड़ कर परिश्रम करेंगे। परन्तु

पिताजी ! एक शंका का समाधान कर लेना भी हम उचित समझते हैं। और वह शंका यह है कि यदि आपने कहीं कुछ धन गाड़ रखा हो तो हमें बताने की कृपा करें। क्योंकि आपके मरने के बाद वह गड़ा हुआ धन वहीं का वहीं रह जायेगा और हम लोगों के सदुपयोग में भी नहीं आ सकेगा। अतएव यदि आप उचित समझें तो उस विषय में भी हमें सूचना दे दें।

अपने चारों पुत्रों की शंका का समाधान करते हुए उस वृद्ध किसान ने कहा कि बेटों ! मैं तुम्हें इस छिपे हुए धन के सम्बन्ध में भी बता देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैंने अपनी तमाम सम्पत्ति को खेत में गाड़ दी है ! तुम्हें उस धन राशि की जब कभी जरूरत पड़े तो तुम वहां से खोद कर निकाल लेना और अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेना। इतना कहते हुए उस वृद्ध किसान ने अपनी जबान हमेशा के लिए बन्द करली।

अपने पिता के निधन हो जाने के पश्चात् उन चारों पुत्रों ने जी खोलकर अपने पिता का अन्त्येष्टि क्रिया कर्म किया। उन्हें पूर्ण रूप से विश्वास था कि हमारे पिता हमारे लिए एक बड़ी धनराशि पीछे छोड़ गए हैं। अतएव उन्होंने कर्ज लेकर भी अपने पिता का मौसर किया और गांव वालों को मिष्टान्न जिमाया।

इस प्रकार पिता को मरे हुए काफी दिन हो गए और कर्ज मांगने वाले भी रोजाना आकर द्वार खटखटाने लगे तब उन चारों पुत्रों की आंख खुली। भाई ! कर्ज लेते समय तो वर्तमान ही नजर आता है परन्तु जब कर्ज चुकाने का समय आता है तब आंखों के सामने भविष्य में आने वाले दुखद परिणामों के बादल मंडराने लगते हैं। जब सभी कर्ज मांगने वाले उन्हें तंग करने लगे तो उन्होंने एक दिन मन्त्रणा की कि भाई ! अब उस गड़े हुए धन को निकालने का समय आ पहुँचा है। अब हमें उस धन को निकाल कर इन कर्ज

मांगने वालों की जबान बन्द कर देनी चाहिए। अन्यथा हमारे घर की एक-एक वस्तु नीलाम हो जायेगी और हम बदनाम हो जायेंगे। जब उन चारों भाइयों की एक राय हो गई तो वे चारों अपनी स्त्रियों के साथ उक्त खेत में पहुंचे। उन्होंने गेंतियों के द्वारा सारे खेत को पोलगा बना दिया परन्तु उन्हें अपने पिता के कथनानुसार किसी भी जगह से गडा हुआ धन प्राप्त न हो सका। वे पुरुषार्थ करके काफी थक चुके थे। और धन नहीं निकलने के कारण उनके जीवन में नैराश्यता छा गई। वे निराश तथा अन्यमनस्क होकर घर में बैठ गए।

एक दिन किसी समझदार व्यक्ति ने उनकी निराशता का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि भाई! हमारे पिताजी ने मरते समय कहा था कि मैंने अपनी सारी संपत्ति खेत में गाड रखी है अतएव तुम आवश्यकता होने पर उसे निकाल लेना। परन्तु हमारे जी तोड कर पुरुषार्थ करने पर भी कहीं से कोई धन प्राप्त नहीं हो सका। अब आप ही बताइए कि क्या पिताजी ने हमारे साथ धोखा नहीं किया और झूठ नहीं बोला?

यह सुन कर उस आगन्तुक व्यक्ति ने कहा कि बेटो! तुम अभी तक नादान हो। तुम अपने पिता के बताए हुए रहस्य को नहीं समझ सके। उनके कहने का यही आशय था कि यदि तुम संगठित रूप में रह कर पुरुषार्थ करोगे तो खेत के चप्पे-चप्पे से तुम्हें गडा हुआ धन प्राप्त हो जाएगा। बेटो! तुमने उनके कथनानुसार महनत करने में तो कोई कसर नहीं रखी परन्तु अब एक बात मेरी भी ध्यान से सुनो। देखो! निकट भविष्य में बारिश होने वाली है अतएव तुम लोग अभी से इस खोदे हुए खेत में बीज बो दो। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ ही महीनों बाद खेत में एक लहलहाती हुई फसल तैयार हो जाएगी। बच्चों! तुम्हारे द्वारा किया गया सत्पुरुषार्थ कभी भी व्यर्थ जाने वाला नहीं है। तुम पुरुषार्थ के फलस्वरूप समय पर

तुम्हारे घर पर धान्य का ढेर हो जायगा और तुम्हारा सारा दुख दूर हो जायगा।

उस सज्जन व्यक्ति के समझाने पर उन चारों की आत्मा बड़ी प्रसन्न हुई। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि वास्तव में उनके पिता ने गडे हुए धन को खेत में से निकालने की बड़ी अच्छी तरकीब बताई थी। यदि हम अब खोदे हुए खेत में बीज बो देंगे तो भविष्य में हम मालोमाल हो जायेंगे।

अतएव उन्होंने उक्त व्यक्ति के द्वारा बताई हुई नेक सलाह को शिरोधार्य करके खेत में कहीं उधार लाकर भी अनाज बो दिया। समय पर अच्छी बारिश हुई और कुछ ही दिनों बाद लहलहाती हुई खेती नजर आने लगी। वे अपने द्वारा किए हुए पुरुषार्थ पर बड़े प्रसन्न होने लगे। परन्तु एक दिन वह भी निकट भविष्य में आ पहुंचा जबकि उनका पुरुषार्थ अपना मीठा फल चखाने को तैयार हो गया। जब फसल पक कर तैयार हो गई तो उसे देखकर उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे अपने खेत से गाडियां भर कर धान्य के रूप में धन खोदकर घर पर लाए। उस धान्य को मन्डी में बेंचने से उन्हें काफी धन प्राप्त हुआ जिससे उन्होंने सारा कर्ज अदा कर दिया। अब वे आनन्दपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

देखो! अब वे पुरुषार्थ के गूढ़ रहस्य को समझ चुके थे अतएव चारों भाई संगठित रूप में खूब महनत करने लगे। उन्हें अब जमीन में से मन चाहा धन प्राप्त होने लगा। तो कहने का अभिप्राय यही है कि पुरुषार्थ करने से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। संसार में तो पुरुषार्थी पुरुष सुखी बन ही जाता है परन्तु मोक्ष मार्ग में पुरुषार्थ करने पर वह एक दिन अक्षय सुख को प्राप्त कर अजर-अमर बन जाता है।

तो भगवान ऋषभदेव ने प्रजा के लोगों को खेती करना, कुम्हार की कला, वस्त्र बनाने की कला और इसी प्रकार से जीवनोपयोगी तमाम कलाएं सिखाई। उन्होंने जनता को बहोत्तर कलाओं की शिक्षा दी। चूंकि भगवान गर्भ काल से ही तीन ज्ञान वाले होते हैं अतएव दुनिया भर की सारी कलाएँ उनके ज्ञान में प्रतिभासित हो रही थी। इन सारी कलाओं को सिखाने का उनका एकमात्र ध्येय यही था कि मानव समाज आनन्द पूर्वक जीवन यापन कर सके और हमेशा के लिए आपस के झगड़े शान्त हो जांय। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव एक राजा के रूप में अपनी प्रजा को सब प्रकार से सभ्य नागरिक बनाने का प्रयत्न करते हुए राज्य का संचालन करने लगे।

अब किस प्रकार समय आने पर वे राज्य का परित्याग करके भगवती दीक्षा अंगीकार करेंगे और धर्मोपदेश देंगे यह सब कुछ आगे सुनने से ज्ञात होगा।

इस प्रकार जो भव्यात्मा अपने जीवन में सत्पुरुषार्थ करेगा वह इस लोक तथा परलोक में सौभाग्यशाली बन सकेगा। इत्यलम्,

---

अखण्ड शान्ति सप्ताह

सज्जनों! आज से आप लोग भगवान शान्तिनाथ का अखंड शान्ति सप्ताह मनाने जा रहे हैं। मुझे यह जानकर अपार खुशी होती है कि आप लोगों के हृदय में धर्म भावना के बीज अंकुरित हो चुके हैं। मैं अन्तःकरण से चाहता हूँ कि आप लोग शान्ति सप्ताह को बड़े ही आनन्द और उत्साह के साथ मनाएँ।

भाई! भगवान के नाम में बड़ी जबर्दस्त शक्ति रही हुई है। जो मानव शुद्ध अन्तःकरण से भगवान शान्तिनाथ के नाम का स्मरण करता है उसके सारे संकट क्षण मात्र में दूर हो जाते हैं। वह

तन, मन और धन से मालदार बन जाता है। इसलिये प्रत्येक सुखाभिलाषी आत्मा को भगवान शान्तिनाथ का स्मरण अवश्यमेव करते रहना चाहिए।

भगवान शान्तिनाथ जिस समय महारानी अचलादेवी के गर्भ में आए उस समय इसी भारतवर्ष में यत्र-तत्र-सर्वत्र मृगी एवं महामारी की भयंकर बीमारी फैल रही थी। उस बीमारी के कारण भारतवर्ष की जनता बड़ी चिंतित हो चुकी थी। भाई! देश में जब जब हिंसा का प्राबल्य हो जाता है, अन्याय अनीति बढ़ जाते हैं तथा महामारी जैसे भयंकर रोगों का प्रकोप छा जाता है उस समय कोई न कोई अवतारी पुरुष. इस भूतल पर अवतरित होता ही है। तो जब उक्त मृगी की बीमारी समस्त आर्य देश में फैल गई उस समय भगवान शान्तिनाथ देवलोक से च्यव कर महारानी के गर्भ में आकर उत्पन्न हुए। महाराज विश्वसेन तथा महारानी अचलादेवी अपने प्रजा की संकटकालीन परिस्थिति को देखकर बड़े व्याकुल हो चुके थे। उन्होंने प्रजा को इस संकट से छुड़ाने के लिए भरसक प्रयत्न किए परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई।

एक दिन महारानी अचलादेवी वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर महल की छत पर नगर की रौनक देखने को गई। उस गर्भस्थ पुण्यशाली आत्मा की प्रेरणा से ज्योंही उन्होंने अपने नगर के चारों तरफ शान्ति भरी दृष्टि से देखा त्यों ही नगर में सर्वत्र शान्ति ही शान्ति व्याप्त हो गई। बिना किसी उपचार के ही वह भयंकर बीमारी जड़ मूल से नष्ट हो गई। सारे देश में सुख शान्ति के बादल छा गए नगर की सुख शान्ति के समाचार जब राजा तथा महारानी के कानों में पड़े तो वे भी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने आपस में मन्त्रणा की कि यह सारा चमत्कार एक मात्र गर्भस्थ पुण्यशाली आत्मा का ही हो

सकता है। उसके अतिरिक्त किसी में शक्ति नहीं जो क्षण मात्र में ऐसी भयंकर बीमारी को उपशान्त करने में समर्थ हो सके।

भाई! जब भगवान शांतिनाथ का सवा नौ मास पूर्ण होने पर माता अचला देवी के गर्भ से जन्म हुआ तो चारों तरफ खुशी के गीत गाए जाने लगे। घर घर पुत्र जन्म की खुशी में बधाइयां बंटने लगीं। बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत्त होने पर भगवान का गुण निष्पन्न 'शान्तिनाथ' नाम रखा गया। चूंकि इनके गर्भ में आते ही देश में मृगी रोग का अन्त हो गया और सर्वत्र शान्ति व्याप्त हो गई अतएव उनका नाम भी उसी दृष्टिकोण से शान्तिनाथ रखा गया।

भगवान शान्तिनाथ को इस भूतल पर अवतरित हुए लाखों ही वर्ष व्यतीत हो चुके हैं परन्तु भगवान के नाम में आज भी वही चमत्कारी शक्ति मौजूद है जो उनके गर्भ में आते ही प्रकट हो चुकी थी। तो इस सिद्धान्त से भगवान शान्तिनाथ का नाम भूतकाल में भी प्राणी मात्र के लिए शान्तिदायक था, वर्तमान में है और भविष्य में सुख शान्ति का प्रदायक रहेगा। देखो! जब-जब भी संसार के प्राणियों पर असह्य दुःख के बादल मंडराने लगते हैं। जैसे—अग्नि-कांड, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, मृगी, दुश्मन का आक्रमण या अनेक प्रकार के शारीरिक या मानसिक दुःख छा जाते हैं तो उस समय यदि भगवान शान्तिनाथ का स्मरण किया जाता है तो सारे दुःख के बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सर्वत्र सुख शान्ति का प्रसार हो जाता है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में शास्त्रकारों ने भगवान शान्तिनाथ की महिमा में कहा है कि:—

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संति-संति करे लोए, पत्तो गई मणुत्तरं॥

उक्त तीर्थङ्कर भगवान के वचन हैं। भगवान शान्तिनाथ इसी भारत भूमि में अवतरित हुए थे। वे पच्चीस हजार वर्ष पर्यन्त कुमारावस्था में रहे। फिर उन्होंने पच्चास हजार वर्ष तक राज्य किया छः खण्ड का। परन्तु संपूर्ण छः खण्ड का राज्य मिल जाने पर भी उन्होंने राज्य के अन्दर रहते हुए आत्मा का वास्तविक सुख और आनन्द का अनुभव नहीं किया। वे सदैव अमूर्छित भाव से राज्य का संचालन करते रहे। अन्त में छः खंड के चक्रवर्ती शासन को छोड़ कर उन्होंने साधु अवस्था को धारण कर ली। इस प्रकार पच्चीस हजार वर्ष पर्यन्त चारित्र धर्म का पालन करके सिद्ध गति मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

उन्हीं मोक्षगामी भगवान शांतिनाथ के नाम स्मरण में पहिले भी शक्ति थी, आज भी वही शक्ति विद्यमान है और भविष्य में भी शांतिनाथ भगवान का नाम वही चमत्कार दिखाता रहेगा। चूंकि भगवान शांतिनाथ ने गर्भकाल में रहते हुए भी सम्पूर्ण लोक में सुख शांति की स्थापना करदी थी अतएव आज भी हम भगवान को बार-बार याद करते हैं। भगवान को अशांत वातावरण में शांति लाने के लिए ही स्मरण किया जाता है।

और जो यहां की बहिनों ने अखंड शांति सप्ताह मनाने का विचार किया है तथा शांति जाप प्रारंभ भी कर दिया है तो उसकी पूर्णाहुति पर बहिनों का यह परम कर्तव्य है कि जैसे भगवान शान्तिनाथ ने छः खण्ड के शासन का परित्याग करके ही वास्तविक सुख शांति का अनुभव किया वैसे ही आप बहिनें भी उक्त पूर्णाहुति दिवस पर यथाशक्ति त्याग अवश्य करें ताकि आपको भी सच्ची शांति प्राप्त हो सके। क्योंकि तीर्थङ्कर भगवान ने त्याग में ही वास्तविक सुख-

शान्ति की अनुभूति की है और वही त्याग का सिद्धान्त दुनिया के लोगों के सामने भी रखा है।

तो भगवान शांतिनाथ का बार-बार नाम स्मरण करने से अपने जीवन में भी सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है। और सच्चे हृदय से भगवान का नाम लेने से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में भी सर्वत्र शान्ति ही शांति व्याप्त हो सकती है। अतएव आप लोग शांति सप्ताह को परम उत्साह के साथ मनाएँ और अपने जीवन में वास्तविक शांति लाने का प्रयत्न करें।

ओम् शांति-शांति-शांति

बैंगलोर (केन्टोन्मेन्ट)
ता०१०-८-५६
सोमवार



:: कुसंगति का दुष्परिणाम ::

त्वामयव्यं विभुमचिंत्य मसंख्य माद्यं,
ब्रह्माणमीश्वर मनंत मनंग केतुम् ।
योगीश्वरं विदित योगमनेक मेकं,
ज्ञानस्वरूप ममल प्रवदंति संतः ॥

卐

भाइयों ! अक्सर देखा और सुना जाता है कि मनुष्य शरीफ खानदान में जन्म लेने के बावजूद भी कुसंगति के जाल में फंसकर अपना जीवन बर्बाद कर बैठता है। वह अपने आपके जीवन को तो रसातल में पहुँचाता ही है परन्तु अपने सात पीढ़ी से चले आने वाले उज्ज्वल यश पर भी अपने गन्दे कारनामों के द्वारा कालिमा पोतकर बदनाम कर देता है। इसमें कुछ तो अपराध उसके अभिभावकों का होता है और शेष अपराध उसकी निरंकुशता, स्वच्छन्दता तथा दुसंगति का है। यदि उसके अभिभावक बाल्यावस्था से ही उस पर अनुशासन करते और उसे स्वच्छन्द नहीं होने देते तो उसका भी जीवन दूषित होने से बच जाता और माता-पिता को भी अपयश का भागी नहीं बनना पड़ता। प्रत्येक अभिभावक का परम कर्त्तव्य और धर्म है कि वह अपने पुत्र को बचपन से ही गलत कदम उठाने से रोकता रहे ताकि भविष्य में दुष्परिणाम देखने को

नौबत ही नहीं आ सके। अपने बच्चे को सदैव सत्-संगति में रखने का ध्यान रखना चाहिए। सत-संगति में रहने से बालक योग्य सदाचारी तथा धार्मिक भावना वाला बनता है। जबकि कुसंगति में रहने से वह चोर, जुआरी, डाकू, वैश्यागामी, पर स्त्री गामी, शिकारी, मांसाहारी, शराबी तथा अपने कुटुम्ब को अपमानित करने वाला बन जाता है। इसलिए कुसंगति के भयंकर दुष्परिणामों को मद्दे नजर रखते हुए अपने बालक को सन्त समागम में रखकर चारित्रशील और यशस्वी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। ताकि बालक जाति समाज तथा देश का नेता बनकर परलोक में भी सुख शान्ति का उत्तराधिकारी बन सके। सुज्ञेषु किं बहुना।

भगवान ऋषभदेव के शुभ गुणों का बखान करते हुए भक्तामर स्तोत्र के उक्त चौबीसवें श्लोक में आचार्य श्री मानतुंग फर्मा रहे हैं कि हे भगवन्! सन्त पुरुष आपको अक्षय (तीन काल में क्षय नहीं होने वाला) ऐश्वर्यवान, चिन्तवन में नहीं आने वाले, असंख्य (गुण युक्त) ही नहीं परन्तु अनन्त गुणों से युक्त आदि (तीर्थङ्कर) पवित्रात्मा, सकल कर्मों से रहित सर्व देवों के ईश्वर, अनन्त (चतुष्टय सहित) कामदेव को नाश करने के लिए केतु स्वरूप, योगीश्वर, आठ प्रकार के योगों के ज्ञाता (गुण पर्याय की अपेक्षा) अनेक रूप (जीव द्रव्य की अपेक्षा) और एक केवलज्ञान स्वरूप और चिद्रूप कहते हैं।

यहां आचार्य श्री के कहने का यही महत्व है कि तीर्थङ्कर भगवान एक नहीं परन्तु अनन्त गुणों के धारक होते हैं। योगी पुरुष भी सदैव ऐसे अनन्त गुण युक्त तीर्थङ्कर भगवान को ध्यान में ध्याते रहते हैं। वे आठ प्रकार के साधनों को अपनाते हुए अपने मन, वचन और काया का निरूंधन करते हैं। एक कवि ने आठ प्रकार के योग का उल्लेख करते हुए अपनी भाषा में कहा है कि:—

यम, नियम, आसन अरु, प्राणायाम प्रत्याहार।
धारणा, ध्यान, समाधि, ये योग अंग अठ धार ॥

अर्थात्---कवि महोदय ने सर्व प्रथम यम पर जोर दिया है। पाँच प्रकार के महाव्रतों को धारण करने को यम कहते हैं। अपने मन को वशीभूत करने के लिए जीवन में सबसे पहिले त्याग की भावना आनी चाहिए। जिस मानव के जीवन में त्याग भावना का संचार हो जाता है वही अपने मन को वश में कर सकता है। मन जिसके वश में हो जाता है वही योग की साधना कर सकता है। योग की साधना कर लेने के पश्चात् नियम, आसन, प्राणिधान, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि अंग का नम्बर आता है। उक्त आठ प्रकार के साधनों को करते रहने से परमात्म स्वरूप की जानकारी हो जाती है। बिना योग की साधना के कोई भी साधक परमात्मा को नहीं पहिचान सकता। यों तो हर कोई अपने शरीर तथा वचन पर नियंत्रण रख सकता है परन्तु मनको हरेक आसानी से वश में नहीं कर सकता। इसी मन को वशीभूत करने के लिए साधक योग के उक्त आठ प्रकार के साधनों को अपनाता है और सतत अभ्यास के द्वारा वह एक दिन अपनी मन्जिल तक पहुँच भी जाता है। भगवान से साक्षात्कार करने के लिए ही योग साधना करनी पड़ती है। यदि योग साधना कठिन नहीं होकर सरल होती तो किसी को भी उसे प्राप्त करने में विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती। परन्तु सतत अभ्यास से यही मुश्किलात भी आसान हो जाती है।

इसी योग साधना को आसान बनाने के लिए योग शास्त्रियों ने चौरासी प्रकार के आसनों का निरूपण किया है। आप जैन मन्दिरों में देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि वहां पर स्थापित मूर्तिएं पद्मासन में निर्माण की हुई हैं और अन्यत्र भी आपको मूर्तिएं पद्मासन

या अर्ध पद्मासन में स्थापित की हुई मिलेगी। इन मूर्तियों को पद्मासन या अर्ध पद्मासन में निर्माण करने का एक मात्र यही कारण है कि भक्त लोगों को भी उसी आसन से बैठकर ध्यान और योग साधना करनी चाहिए। उक्त प्रकार के आसन से बैठकर ध्यान करने से काया शुद्ध हो जाती है। ऐसा भी उल्लेख किया गया है कि जो साधक सदैव तीन घंटे पर्यन्त उक्त आसन से बैठकर सतत अभ्यास करेगा उसकी निश्चित रूप से काया शुद्ध हो जायेगी। इस प्रकार उक्त आसन से बैठने से रीढ की हड्डी सीधी रहती है। ऊपर से नाडियां आगे बढ़ती हैं और अंदर से अमृत झरने लगता है। इससे उस साधक की आयुष्य में वृद्धि होती है तथा बुद्धि निर्मल रहती है। और निरन्तर इस प्रकार प्रयोग करते रहने से एक दिन उसे केवलज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है।

तो आचार्य महाराज कह रहे हैं कि हे भगवन्! आपको प्राप्त करने के लिए योगी पुरुष भी अथक शारीरिक श्रम करते रहते हैं। वे योगी पुरुष अनवरत अभ्यास करते हुए आपके स्वरूप को पहिचान लेते हैं। और स्वयं भी केवलज्ञानी के रूप में नजर आने लगते हैं। तो प्रत्येक आत्मा को भगवान के अनन्त गुणों को इसलिए चिन्तवन करना चाहिए ताकि उसमें भी वे गुण प्रकट हो जांय। भगवान तीर्थङ्करदेव की स्तुति शुद्ध अंतःकरण से करने पर आत्मा में क्या गुण प्रकट होता है इसी आशय को प्रकट करते हुए स्व० जैनदिवाकर श्री चौथमलजी म० ने अपनी भाव पूर्ण कविता में कहा है कि—

लोह का सोना बने, पारस के परसंग से।
लट की भंवरी होती है, सत्संग के परताप से।।

भाई! यह जगत् विख्यात नियम है कि पारस मणि के स्पर्श मात्र से लोहा सोने के रूप में परिवर्तित हो जाता है और लट भी

भंवरे की संगति के कारण भंवरी के रूप में तबदील हो जाती है। तो लोहे का सोना और लट की भंवरी कैसे बन गए ? यह प्रश्न भी विचारणीय है। परन्तु उत्तर इनका स्पष्ट है कि लोहे ने पारस पत्थर की सत्संगति की और लट ने भंवरे के घर में प्रवेश करके उसके मुंह से महामंत्र श्रवण किया जिसके प्रभाव से वे सोना और भंवरी बन गए। तो सत्संगति का कितना भारी महात्म्य है। अरे ! जबकि ये चीजें भी सोना और भंवरी की शक्ल में परिवर्तित हो सकते हैं तो क्या कारण है कि मानव आत्मा से परमात्मा नहीं बन सकता ? अवश्यमेव बन सकता है। क्योंकि जब छोटी से छोटी वस्तु भी प्रसंग वशात् दूसरे रूप में बदल सकती है तब एक मानव तो सब प्रकार की योग्यता का धारक होने से आत्मा से परमात्मा बन सकता है। हां ! आवश्यकता इस बात की है कि उसके विचार सुदृढ़ और उन्नत बन जांय और सतत परिश्रम करनेकी आदत पड़ जाय। अपना लक्ष्य निश्चित हो जाने पर सत्संगति द्वारा सब कुछ प्राप्त हो सकता है। बिना लक्ष्य निर्धारित हुए कुछ भी बनने वाला नहीं है।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि सर्व प्रथम मानव को लक्ष्य निर्धारण करना चाहिए। भाई ! आत्मा का एकमात्र लक्ष्य सिद्ध स्थान पर पहुँचने का है। अब उसे अपने लक्ष्य पर पहुंचने के लिए उक्त योग साधनों को अपनाना चाहिए। उन साधनों में से एक साधन यह भी है कि साधक सदैव सुदृढ़ आसन से बैठकर ध्यान में परमात्मा के गुणों की प्रशंसा करे। इस प्रकार साधना करते-करते यह आत्मा भी एक दिन भगवान स्वरूप बन जायेगी। ऐसे अनन्त गुणों के धारक भगवान ऋषभदेव थे। उन्हीं को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

दुख-विपाक-सूत्र वर्णन

उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान ने जगज्जीवों के कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया। उनके द्वारा फर्माए हुए उपदेश को गणधरों व आचार्यों ने सूत्र रूप में संग्रहित किया। वही उपदेश आज हमारे सामने द्वादशांगी वाणी के रूप में मौजूद है। आज उसी परम पवित्र वाणी को आश्रय लेकर संत मुनिराज यत्र तत्र पैदल विचरण करते हुए भव्यात्माओं को सन्मार्ग दिखाने की कोशिश करते हैं।

तो आज मैं भी आपके समक्ष ग्यारहवें अंग में दुख विपाक सूत्र के दूसरे अध्ययन के भाव रखने जा रहा हूँ। आशा है आप लोग उस परम पवित्र तीर्थङ्कर भगवान की वाणी को श्रवण कर आत्म कल्याण करेंगे।

हां, तो उस विजय सार्थवाह और सुभद्रा सार्थवाहिनी से उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम उज्भित कुमार रखा गया। उस नवजात शिशु के पालन पोषण के लिये उसके माता पिता ने पांच धाएँ नियुक्त कर दीं। इस प्रकार वह उन धायों के संरक्षण में वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

एक समय विजय सार्थवाह ने जहाजी रास्ते से विदेश में व्यापार के निमित्त जाने का दृढ़ संकल्प किया। उसने अपने साथ चलने के लिये कई नगर निवासियों को आमंत्रित किया। इस प्रकार वह सार्थवाह जहाज में चार प्रकार का किराना रख कर व्यापार के लिये रवाना हुआ। मैं यहां आपको चार प्रकार के किराने के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझता हूं। उस विजय सार्थवाह ने प्रथम तो गिनती रूप में अर्थात् गिनती से बिकने वाले पदार्थ जैसे:-नारियल, केले, आम वगैरह, दूसरे तोलने रूप में अर्थात तुल कर

बिकने वाले पदार्थ जैसे गेहूँ, जौ, चना, गुड़, तेल, शक्कर, चांवल, हलदी, धना वगैरह, तीसरे नापने रूप में अर्थात् नाप कर बिकने वाले पदार्थ जैसे कपड़ा वगैरह और चौथे परीक्षा रूप में अर्थात् परीक्षा करके बिकने वाले पदार्थ जैसे हीरा, पन्ना, माणक, मोती वगैरह जवाहिरात रूप चार प्रकार का किराना अपने साथ ले लिया। भाई, संसार के बाजार में जितने भी पदार्थ बिकने के लिये आते हैं वे सब चार प्रकार के किरानों में गर्भित हो जाते हैं। इस प्रकार चार किरानों से बाहर दुनियां की कोई चीज़ नहीं है। तो वह सार्थवाह भी इन चार प्रकार के किरानों को बोरियों, गांठों, बरतनों और डिबियों में रखकर अपनी विदेश यात्रा को रवाना हुआ।

भाई! मानव विचार तो कुछ करता है परन्तु भाग्य को कुछ और ही मंजूर होता है। मनुष्य नापना तो सौ गज चाहता है परन्तु भाग्यवशात् एक गज भी नहीं फाड़ सकता। परन्तु इसके विपरीत सभी कार्यों में सफलता तभी प्राप्त होती है जब कि मनुष्य का भाग्य उसके अनुकूल हो। वह विजय सार्थवाह अपने मन में अनेक आकांक्षाएँ लेकर रवाना हुआ था कि मैं इस प्रकार विदेश में व्यापार करके वहां से अत्यधिक धन कमाकर लौटूंगा। परन्तु विधाता को यह हर्गिज मंजूर नहीं था कि वह सुरक्षित हालत में भी घर पर पहुँच सके।

तो ज्यों ही उसका जहाज समुद्र के बीच में पहुंचा त्यों ही समुद्र में जोरदार तूफान उठ खड़ा हुआ। उसका जहाज तूफान में फँस कर टूट कर समाप्त हो गया। और विजय सार्थवाह अपने साथियों सहित समुद्र में डूब कर मर गया। कहिये! वह अपने मन में कल्पना करके तो इस प्रकार निकला होगा कि जिस स्थिति में वह घर से रवाना हो रहा है उससे दुगुनी चौगुनी हालत सुधार कर

वापिस लौटेगा। परन्तु भाई! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। ये कर्म मनुष्य की भावना को साकार होने में कभी कभी रुकावट डाल देते हैं। यदि शुभ कर्म का उदय होता है तब तो मनुष्य के विचार फलीभूत हो जाते हैं अन्यथा अशुभ कर्म का उदय होने पर सारी इच्छाओं पर पानी फिर जाता है। तो विजय सार्थवाह के मनोरथ भी पूर्ण नहीं हो सके और पुनः अपने स्त्री बच्चों से मिलने में भी नाकामयाब रहा।

जब उक्त जहाज डूब जाने के समाचार नगर में फैल गये तो उसका बहुत सा धन जो अमानत के रूप में युवराज, कोतवाल, या बड़े बड़े पदवीधारी सेठों के पास रखा हुआ था वह उन लोगों के पास ही दबा हुआ रह गया। किसी ने भी यह विचार नहीं किया कि यदि हम सार्थवाह की धरोहर को नहीं लौटायेंगे तो उसके स्त्री बच्चों की क्या दुर्दशा होगी। परन्तु भाई! उक्त सुन्दर विचार तो कोई धर्मात्मा ही ला सकता है। जिसकी नीयत खराब होती है और जो धरोहर को दबा जाने में ही आनन्द की अनुभूति करता है वह किसी की दुर्दशा या भयंकर परिस्थिति के विषय में क्या खाक सोच सकता है।

भाई! सोजत रोड में मैंने जब चातुर्मास किया था तो श्रीमान् मिश्रीलालजी ने मुझ से एक दिन कहा था कि महाराज! हम तो यहां मारवाड़ में इतना परिश्रम करके कमाते हैं परन्तु फिर भी ऊँचे पैमाने पर नहीं पहुंच पाते। जबकि परदेश में जाकर लोग बहुत जल्दी पैसे वाले बन जाते हैं? उक्त सेठजी के प्रश्नोत्तर में मैंने कहा कि सेठजी! आपका इस प्रकार कहना यथार्थ है। परन्तु परदेश में जाकर कुछ ही वर्षों में मालदार बन जाने के कई कारण भी हैं। जैसे किसी व्यक्ति ने किसी के यहां धरोहर रख दी और वह पुण्य-क्षीण हो जाने से असमय में ही मर गया तो उसकी अमानत उन

सेठजी के यहाँ दबी हुई रह जाती है। दूसरे वे लोग ब्याज भी अधिक मात्रा में लेते हैं जिससे भी उनके पास लक्ष्मी बढ़ जाती है। तो यही कारण है कि वे लोग जल्दी से लोगों की आँखों में मालदार के रूप में नजर आने लगते हैं। जबकि इधर के लोग परिश्रम करके धन कमाते हैं। वह धन उतनी ही मात्रा में कमाया जा सकता है जितने में उनका और उनके कुटुम्ब का अच्छी तरह भरण पोषण हो सके। और इसी कारण इधर के लोग जल्दी मालदार नहीं बन पाते। परन्तु भाई! कुछ भी हो! बिना परिश्रम से कमाया हुआ लाखों का धन भी कारगर नहीं होता और परिश्रम पूर्वक कमाया हुआ थोड़ा सा धन भी आत्मा को सन्तोष देने वाला होता है। पाप कर्म करके जो धन उपार्जित किया है उससे अल्प काल के लिए मन में प्रसन्नता अवश्य हो जाती है परन्तु उस पाप के फल को भविष्य में भोगना मुश्किल हो जाता है। इसलिए ईमानदारी और परिश्रम पूर्वक कमाए हुए धन पर ही आत्म संतोष मानना चाहिए।

तो उस विजय सार्थवाह का कितना ही धन युवराज, कोतवाल या पदवीधारी आदि वग में रह गया। और इस मौके से लाभ उठाने में उसके मुनीम भी वंचित नहीं रह सके। उन्होंने भी अपने मृत मालिक से गद्दारी करके बहुत सा धन गुप्त रूप से अपने घरों में पहुँचा दिया। वे मुनीम भी अब सेठ बन कर बैठ गए। आप लोगों को यह अच्छी तरह विदित ही है कि वर्तमान में जिन सेठों का दीवाला आउट होता है तो उनके पीछे कई मुनीम, गुमारते अपना घर बना लेते हैं। भाई! जिस सेठ का वर्षों से उन कर्मचारियों ने नमक खाया है परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में भी वे गद्दार लोग अपने मालिक को धोखा देने से नहीं चूकते।

उस विजय सार्थवाह के डूब कर मर जाने के समाचार जब उसकी पत्नि सुभद्रा ने सुने तो वह एकदम चिंतातुर होकर मूर्च्छित अवस्था में हो गई। परन्तु उपचार किए जाने पर वह सावधान हुई और रंजीदा होकर अपने कुटुम्बियों के साथ आंखों में से आंसू डालती हुई विलापात करने लगी। उसके पुत्र उज्भित कुमार ने रोते हुए अपने कुटुम्बियों के साथ अपने पिता के पीछे अन्त्येष्ठि क्रिया कर्म किया।

इस दुखद परिस्थिति में सुभद्रा सेठानी को व पिछली बातें रह रह कर याद आने लगी। वह अपने पति के समुद्र में डूब कर मर जाने, लक्ष्मी के बिनाश हो जाने, जिन जिन के पास उसकी अमानत थी तो उनके नट जाने और मुनीम लोगों क द्वारा भी धन हड़प कर जाने की बातों को याद कर करके कभी फूट फूट कर रोती, कभी जोर जोर से चिल्लाती, कभी सिर पीटती और इस प्रकार दुख स व्यथित होकर मूर्च्छित भी हो जाती। जब वह पुन: होश में आती तो अपने आप बोल उठती कि हे भगवन्! क्या तूने मुझे यही दुख के दिन देखने के लिए जिंदा रख रखा है? मेरे पति आनन्द पूर्वक मुझ से मिल कर गए थे परन्तु इसके बाद यही दुखद समाचार सुनने को मिला कि समुद्र में उल्कापात हो गया और तूफान में जहाज टूट जाने से मेरे पति हमेशा के लिए मुझ से विदा होकर समुद्र की शरण में चले गए! हे प्रभो! मैं उनका वापिस मुंह भी नहीं देख सकी! इस प्रकार बार बार विलापात करते हुए वह चिंता ही चिंता में घुल-घुल कर एक दिन मर भी गई। अब उस उज्भित कुमार के सिर से अपनी एकाकी माता का साया भी उठ गया। वह अब अनाथ हो चुका था। एक एक पैसे के लिए वह मोहताज था। परन्तु फिर भी जैसे तैसे उसने इधर उधर से उधार लाकर अपनी माता के शव का अग्नि संस्कार किया। अब उस अनाथ बालक को सांत्वना देने वाला

भी कोई नहीं था। उस पर दिन पर दिन कर्ज का भार बढ़ता ही गया। वह कर्ज चुकाने में भी असमर्थ था क्योंकि उसके पास आमदनी का कोई जरिया नहीं था। जब वह किसी रूप में भी कर्जा नहीं चुका सका तो एक दिन कर्ज मांगने वाले कुडकी लेकर भी उसके घर पर आगए। उस अनाथ बालक ने बहुत अनुनय विनय किया कि मुझ गरीब पर रहम करो और मेरा घर न छुडाओ। परन्तु उस गरीब की पुकार को सुनने वाला भी कोई न था। उन कर्ज मांगने वालों ने कोतवाल की जेब गरम करके उसके मकान और बचे खुचे सामान को कुडक करवा लिया। इस पर भी उन जालिमों को संतोष नहीं हुआ परन्तु उन्होंने उज्झित कुमार को घर से ही धक्के दिलवा कर निकलवा दिया। अब वह उज्झित कुमार बे सहारा और बे घर बार होकर अनाथ के रूप में इधर उधर भटकने लगा। जहां कहीं से उसे मांगने पर कुछ मिल जाता तो उसे खा-पीकर पृथ्वी शैय्या पर आसमान की चादर ओढ कर सो जाता। इस प्रकार उसके पाप कर्मों ने उसे श्रेष्ठिकुमार से दर दर का भिखारी बना दिया।

जब वह निरंकुश और स्वच्छन्द होकर इधर-उधर घूमने लगा तो उसके जीवन का बहाव कुसंगति की ओर हो गया। चूंकि अब उसे कोई सत्संगति की ओर लेजाने वाला मददगार नहीं था अतएव वह बुरे रास्ते पर चलने को आमादा हो गया। वह बालक जिसका कोई संरक्षक नहीं था तो वह अनाथ, आवारा और निरंकुश हाथी की तरह जहां-तहां घूमने लगा और मन चाहे दुष्कर्म करने लगा। यदि कोई उस पर तरस खाकर और उसकी पूर्व स्थिति को याद करके कभी कुछ कहने का साहस भी करता तो वह उसे फटकार देता और कहता कि "तुम मुझसे कहने वाले कौन होते हो! मैं वही करूंगा जो मेरी मरजी होगी।" इस

प्रकार का जवाब सुनकर लोग भी सोचते कि इससे माथापच्ची करना व्यर्थ है। यह किसी की नेक सलाह अब मानने वाला नहीं है। अब इससे अपने को क्या लेना देना है। देखो! कोई भी व्यक्ति सत्संगति में आने के बाद अपनी बुरी आदतों को भी छोड़कर सदाचारी बन जाता है और इसके विपरीत कुसंगति में फंस जाने के बाद एक शरीफ खानदानी व्यक्ति भी बिगड़ जाता है। उसी उज्झित कुमार का भी यही हाल हुआ। वह चौराहे पर जुआरियों की कुसंगति में बैठकर जुआ खेलने लगा। भाई! यदि किसी को किसी से वैर निकालना है तो वह उसे जुआ खेलना सिखादे। जिस व्यक्ति में जुआ खेलने की आदत पड़गई तो समझलो उसमें सारे कुव्यसन समावेश हो जाते हैं। यदि सर्वनाश की कोई जड़ है तो वह एकमात्र जुआ है। जब जीवन में जुए का व्यसन घुस जाता है तो समझलो उसका सर्वनाश सन्निकट है। इस जुए को ज्ञानी पुरुषों ने सातों व्यसनों का सरदार माना है। तो उज्झित कुमार जुआरी बनने के बाद चोरी भी करने लगा। चोर बन जाने के बाद वह शराबी, मांसाहारी, शिकारी, वैश्यागामी, परस्त्री गामी और दूसरों की जेबें भी काटने लगा। इस प्रकार उसमें सातों व्यसन प्रवेश कर गए। परन्तु भाई! जिस आत्मा में उक्त सातों व्यसन प्रवेश कर जाते हैं तो वह निश्चित रूप से नरक में जाकर उत्पन्न होता है।

वह उज्झित कुमार चोरी करके और जुआ खेलकर पैसा कमाने लगा। परन्तु जो पैसा पाप कर्म करके कमाया जाता है उसका दुरुपयोग भी खोटे रास्ते पर ही होता है। वह अब उस कामध्वजा नाम की वैश्या के चंगुल में फंसगया। वह हमेशा चोरी करके पैसा लाता और उसे वैश्या को देकर अपनी कामवासना की तृप्ति करने लगा। इस प्रकार वह उस वैश्या के यहाँ कामभोग सेवन करता हुआ रहने लगा।

एक समय उसी नगर के मित्र नाम के राजा की महारानी श्री देवी के गुप्तस्थान में शूल की बीमारी हो गई। राजा ने उसका बहुत इलाज कराया परन्तु किसी प्रकार भी ठीक न हो सकी। चूंकि महा-रानी के अस्वस्थ हो जाने से राजा उसके साथ ऐशोआराम करने में असमर्थ हो गया था अतएव उसने उक्त वैश्या के यहां जाकर अपनी कामवासना की पूर्ति करने का निश्चय किया। एक दिन राजा ज्योंही अचानक उस वैश्या के यहां पहुँचा तो उसने उज्झितकुमार को उस वैश्या के साथ भोग भोगते हुए देख लिया। यह देख राजा क्रोधित हो गया और उसने अपने सिपाहियों के द्वारा उस उज्झित कुमार को वैश्या के घर से धक्के देकर निकलवा दिया। अब राजा ने उस वैश्या को किसी गुप्त स्थान पर रख दिया और उसके साथ भोग भोगने लगा।

वह उज्झित कुमार उस वैश्या के मोह में मूर्च्छित बना हुआ उसे इधर-उधर तलाश करने लगा। उसे इधर उधर भटकते हुए कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई। वह धैर्य खो बैठा और पागल की तरह रोता हुआ, गवेषणा करता हुआ उसे प्राप्त करने के लिए सब कुछ अर्पण करता हुआ, भावना भाता हुआ और उसे क्षणमात्र के लिए भी नहीं भूलता हुआ इधर उधर उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने लगा। वह राजा के इस प्रकार जबर्दस्ती करने पर उसके प्रति रौद्र ध्यान ध्याने लगा। वह मन में विचारने लगा कि देखो! राजा ने मुझे तो धक्के देकर निकलवा दिया परन्तु स्वयं उसे गुप्त स्थान पर रख कर उसके साथ मनुष्य संबन्धी भोग रहा है अतएव वह मुझ से भी अधिक बदमाश है। परन्तु राजा से मुकाबला करना उसकी शक्ति से बाहर था। अतएव वह वैश्या की तलाश करता हुआ फिरने लगा। आखिर उसे एक दिन वैश्या के रहने के स्थान का भी पता चल गया। अब वह उसी फिराक में रहने लगा कि कब मुझे मौका मिले और कब मैं उस वैश्या

से मिलूं। परन्तु आप जानते हैं कि जिसके प्रति अत्यन्त मोह होता है और उससे मिलने की उत्कट इच्छा होती है तो कभी न कभी तो उससे मिलने का मौका मिल ही जाता है। इसी नियम के अनुसार उज्झित कुमार को भी एकदिन उस वेश्या से मिलने का मौका मिल ही गया। वह उस वेश्या के पास गया और गुप्त रूप से उसके साथ भोग भोगता हुआ वहीं रहने लगा। परन्तु पाप कभी भी छिपा हुआ नहीं रह सकता है। वह तो एक न एक दिन अपने आप प्रकट हो ही जाता है।

भाई! एक दिन ऐसा ही इत्तिफाक हुआ कि जब वह उज्झित-कुमार उस वेश्या के साथ भोग भोग रहा था कि इतने में ही मित्र राजा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने सिपाहियों के साथ वहां मौके पर पहुँच गया। उसने उन दोनों को पुनः भोग भोगते हुए देख लिया। यह देखते ही राजा को अत्यन्त क्रोध हो आया। उसने क्रोधित होकर अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इस बदमाश को पकड़ो, इसे अच्छी तरह पीटो और इसके शरीर का दही की तरह मंथन कर डालो। राजा का हुक्म होते ही उसके सिपाहियों ने उसके साथ वैसा ही कुत्सित व्यवहार किया और उसे लेजाकर जेल में बन्द कर दिया। दूसरे दिन राजा ने उज्झितकुमार को मरवाने का हुक्म दे दिया। भाई! मनुष्य पाप कर्म करते हुए तो कुछ विचार नहीं करता परन्तु जब उन पाप कर्मों का फल भोगना पड़ता है तो फिर उसकी आंखें खुलती है। वह उस समय विचार करता है कि हाय! हाय! मैंने कुसंगति में फंसकर अपने जीवन को बरबाद कर डाला। यदि मैं सतसंगति में जाता और अपने जीवन को पवित्र बना लेता तो आज ये दुःख के दिन नहीं देखने पड़ते।

तो श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी अपने शिष्य भगवान् गौतम स्वामी से फर्मा रहे हैं कि हे गौतम! तू जिस पुरुष को अपनी

आंखों से नारकीय दुःखों को भोगते हुए देखकर आया है यह वही वैश्यागामी उज्झितकुमार है जिसे कि राजा ने मरवाने का हुक्म दे दिया है। यह अपने पूर्व जन्म के दुष्कृत्यों का फल भोगता हुआ कष्ट पा रहा है।

इस प्रकार अपने द्वारा किए हुए प्रश्न का जब समाधान हो हो गया तो भगवान गौतम स्वामी ने एक बार पुनः भगवान महावीर से प्रश्न किया कि हे भगवन् ! यह उज्झितकुमार यहां से काल करके कहां जायेगा ?

तब भगवान महावीर ने गौतमस्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए फर्माया कि हे गौतम ! उक्त उज्झितकुमार यहां पच्चीस वर्ष का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके आज सूर्यास्त के समय काल करके रत्नप्रभा नाम की पहली नरक में जाकर नेरिया रूप में उत्पन्न होगा। फिर वहां की स्थिति को पूर्ण करके यह इसी भारतवर्ष के वैताढ्य पर्वत पर बन्दर रूप में उत्पन्न होगा। उस योनि में भी यह बन्दरियों के साथ भोग भोगते हुए तथा दूसरे बन्दरों को मारता हुआ महान पाप कर्मों का उपार्जन करेगा। वहां से आयुष्य पूर्ण करके यह इसी भारत देश में इन्द्रपुर नगर में गणिका के यहां पुत्र रूप में उत्पन्न होगा। परन्तु उसकी माता उसके पुरुष चिन्ह छेदा कर उसे नपुंसक बनवा देगी। बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत्त होकर इसका नाम प्रियसेन नपुंसक रखा जायेगा। जब यह बड़ा होगा तो इसे नपुंसकों की कुचेष्टाएं तथा कुकर्म सेवन करने की तालीम दी जायेगी। इसकी बुद्धि तीव्र होने से यह युवावस्था में बड़ा बुद्धिमान हो जायेगा। यह विज्ञान प्राप्त करेगा और वाकपटु हो जायेगा। एक नपुंसक में जितनी कलाएं होनी चाहिए उन सब में यह निपुण हो जायेगा। चूंकि यह अपनी कुशाग्रता से मन्त्रवादी, तन्त्रवादी और ज्ञानवान भी था

अतएव इन्द्रपुर के राजा, सेठ, सेनापति वगैरह बड़े-बड़े लोग इसे आदर सहित इलाज कराने को बुलायेंगे। यह नपुंसक होने के कारण हरेक के घर में आ जा सकता था। वह बहुत प्रकार की विद्याओं का प्रयोग करके, मन्त्रों और तन्त्रों का प्रयोग करके बहुत लोगों के कष्ट निवारण करने में सहायक बनेगा। भाई! विद्या उसे कहते हैं जिसके आधीनस्थदेवी होती है और मन्त्र उसे कहते हैं जिसके आधीन देवता रहता है। तो इसने विद्या और मन्त्रों की साधना करके देवी देवता को भी वश में कर लिया था और उनके सहारे यह दूसरों के दुःख दूर कर देता था। यह कई प्रकार के चूर्ण भी जानता था जिनसे स्त्रियां वश में की जा सकती थीं। तो कहने का मतलब यह है कि यह अपनी होशियारी से सबको आराम पहुँचा कर मन-माना द्रव्य उपार्जन कर लेता था। इस प्रकार इसके पास काफी धन इकट्ठा हो गया था। इतना धन एकत्रित हो जाने पर भी यह बड़ा कृपण था। भाई! एक कृपण पुरुष के विषय में कोई कवि कहता है कि—

कृपण दान देवे नहीं, जीवत यश नहिं लेत।
जैसे अड़वा खेत को, खावे न खावा देत॥

जैसे किसान लोग अपने खेत की सुरक्षा के लिए अड़वा खड़ा कर देते हैं तो वह स्वयं भी अनाज को नहीं खाता है और न ही दूसरे पक्षियों को खाने देता है। इसी प्रकार कन्जूस आदमी लक्ष्मीपति हो जाने पर भी वह अपनी लक्ष्मी का न स्वयं ही उपभोग कर सकता है और न दूसरों को खिलाता है। वह कंजूस सिर्फ लक्ष्मी की पहरेदारी ही करता है।

तो उस प्रियसेन नपुंसक ने कृपणता के कारण बहुत सा धन कमाने पर भी न तो स्वयं ने ही उपभोग किया और न दूसरों को

खिलाया। इस प्रकार वह बहुत से आदमियों से नौकर चाकर की तरह काम कराते हुए और मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए विचरण करने लगा। इसके बाद वह बहुत से गुप्त पाप करके और कृपणता से उत्कृष्ट एक सौ इक्कीस वर्ष का आयुष्य भोग कर पुनः पहली नरक में नेरिया बनेगा।

फिर प्रथम नरक के असह्य कष्टों को भोग कर और वहां उवट्टित होकर यह सिंह जाति में उत्पन्न होगा। इसके बाद जैसे आपने मृगापुत्र की आत्मा का जिक्र सुना है उसी प्रकार यह भी पशु बनेगा और फिर नरक में कर्म फल भोगने को जाएगा। नरक का आयुष्य पूर्ण करके यह हवा, पानी अग्नि और वनस्पतिकाय में उत्पन्न होगा। इतनी योनियों में भ्रमण करने के बाद यह जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र में चंपानगरी में भैंसा बनेगा। परन्तु इस योनि में भी यह सुख पूर्वक नहीं रह सकेगा। और एक दिन बहुत से दोस्त मिलकर उस भैंस को खरीदेंगे और इसे मार कर खा जाएँगे।

इसके बाद यहां से मर कर उसी नगरी में एक सेठ के यहां पुत्र रूप में उत्पन्न होगा। जब यह बाल्यावस्था का उल्लंघन करके युवावस्था में प्रविष्ठ होगा तो इसे तथागत साधुओं के दर्शन का लाभ होगा। यह उनकी वाणी सुनकर परम वैराग्य लाकर दीक्षित हो जायेगा। यह साधुवेश में संयम का दृढता पूर्वक पालन करेगा और शुभ करनी करके वहां से मर कर प्रथम देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होगा। इसके बाद सारा अधिकार मृगा पुत्र की तरह समझना चाहिये। अर्थात प्रथम, तीसरे, पांचवे, सातवें, नवें देवलोकों में जन्म-मरण करते हुए अंत में इसकी आत्मा सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होगी। वहां के सुखों का उपभोग करने के बाद इसकी आत्मा महाविदेह क्षेत्र में भरे हुए घर में जन्म लेगी। इसके जन्म

लेते ही इसके माता पिता धर्म करनी करने में दृढ हो जाएँगे। अतएव इसका नाम दढ़्ढपइएणे रखा जाएगा। जब यह युवक बनेगा तो इसे संत महापुरुषों के दर्शन होंगे। यह वैराग्य भावना लाकर उनके समीप भगवती दीक्षा अंगीकार करेगा। साधु अवस्था में यह ऐसी उच्च करनी करेगा कि उसी भव में समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष में चला जायगा।

इस द्वितीय अध्ययन को सुनकर भव्यात्माएं पाप कर्मों से डरती हुई धर्म करनी करने में प्रवृत्त होंगी। कुसंगति से अपने जीवन को बचाते हुए प्रत्येक मानव को सत्संगति में अपने जीवन को लगाना चाहिये।

ऋषभ भवन्तरी

भाई ! यहां बात में भगवान ऋषभदेव के जीवन में बताने का प्रयत्न करूंगा। भगवान ऋषभदेव के जीव ने अपने पूर्व भवों में सत्संगति में जीवन व्यतीत किया और तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया।

तो भगवान ऋषभदेव का जन्म चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन हुआ था। वे बीस लाख पूर्व की अवस्था तक कुमारावस्था को आनन्द पूर्वक भोगते रहे। इसके बाद वे इन्द्र के द्वारा राजा बनाए गए। इन्होंने राजा बन कर अपनी प्रजा को सुख-शांति में रखने के लिए असि, मसि और कृषि रूप तीन कर्म सिखाए। इस प्रकार इन्होंने प्रजा में होने वाली अराजकता को निवारण किया।

कुछ समय बाद इन्द्र का पुनः आगमन हुआ। इस बार उसने स्वयं पुरोहित बन कर भगवान ऋषभदेव का सुमंगला और सुनन्दा के साथ पाणि-ग्रहण करवा दिया। इस प्रकार भगवान उनके साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ काल व्यतीत हो जाने के बाद सुमंगला और सुनन्दा ने क्रमशः युगल रूप में भरतजी और ब्राह्मीजी तथा बाहुबलीजी और सुन्दरीजी को जन्म दिया। ये चारों भाई-बहिन देवलोक से च्यवकर भगवान के पुत्र पुत्रियों के रूप में उत्पन्न हुए। तदन्तर सुमंगला महारानी के गर्भ से उन पचास युगल पुत्र और उत्पन्न हुए। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के कुल सौ पुत्र और दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं। उन्होंने इस प्रकार त्रेसठ लाख पूर्व तक अपनी प्रजा पर निर्विघ्नता पूर्वक शासन किया।

जब तेरासी लाख पूर्व समाप्त हो गए और सिर्फ एक लाख पूर्व का समय शेष रह गया तो उस समय इन्होंने समस्त राज्य का परित्याग करके साधु बनने का विचार किया। उस समय भगवान ने अपने सम्पूर्ण राज्य का विभाग कर दिया। अर्थात्—अपने बड़े बेटे भरतजी को तो राज्य गद्दी पर आसीन करा दिया और बाकी के निन्यानवें पुत्रों से अलग अलग हिस्सों में जागीरें बांट दीं। यह सब कुछ उन्होंने अपने सामने इसलिए किया जिससे भविष्य में इनमें आपस में झगड़े फिसाद न हो सकें।

इस प्रकार सब कुछ बंटवारा करने के पश्चात् जब भगवान का दीक्षा लेने का विचार हुआ तो उस समय नौ प्रकार के लौकान्तिक देव सेवा में आकर उपस्थित हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर भगवान को प्रतिबोध दिया कि हे भगवन! अब संसार का परित्याग कर आप धर्म की प्रवृत्ति करें। क्योंकि जब भगवान ऋषभदेव इस भूमंडल पर

अवतरित हुए थे तब यहां अकर्म भूमि का समय था और युगलिए ही निवास करते थे। भाई! युगलियों को अपने पुण्य के प्रताप से कुछ भी आरंभ-समारंभ के कार्य नहीं करने पड़ते। उनका परम पवित्र जीवन होता है। और वे मर कर सीधे देवलोक में ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु अब कर्म भूमि का समय आगया था अतएव भगवान ने सबको कर्म करना सिखाया। चूंकि कर्म करने वाली आत्मा चारों ही गतियों में जा सकती है अतएव कर्म भूमि का समय आ जाने पर चारों ही गतियों के द्वार खुल गए। अब मानव समाज अपनी अपनी करनी के अनुसार मर कर देव, मनुष्य तिर्यंच और नारक गति में जाने लगे। परन्तु फिर भी अभी तक मोक्ष गति में कोई नहीं जारहा था तो उस गति के दरवाजे को खोलने के लिए भगवान ऋषभदेव ने सर्व प्रथम दीक्षा लेने का विचार किया।

जब लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान को प्रतिबोध दिया तो भगवान ने दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया। भाई! यह निश्चित सिद्धान्त है कि जब कोई तीर्थङ्कर भगवान संसार को छोड़ कर भगवती दीक्षा लेने का विचार करते हैं तो उससे पहिले उन्हें एक वर्ष पर्यन्त वर्षी दान के रूप में हमेशा एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राएं दान में देनी होती हैं। तो इस कार्य के लिए शक्रेन्द्र महाराज वैश्रमण नाम के धनपति देवता को आज्ञा देते हैं कि—"जाओ! और राज्य भंडार को स्वर्ण मुद्राओं से परिपूर्ण कर दो।" वह वैश्रमण देवता अपने इन्द्र की आज्ञानुसार जहां कहीं भी गडा हुआ धन होता है उसे लाकर खजाने में भर देता है। इस प्रकार जब खजाना पूर्ण रूप से भर जाता है तो भगवान प्रति दिन मुक्तहस्त से उक्त स्वर्ण मुद्राएं दान में दे देते हैं। इस प्रकार यह कार्य-क्रम एक वर्ष पर्यन्त चलता रहता है। भगवान ऋषभदेव ने भी उसी नियम के अनुसार एक वर्ष तक तीन अरब इठ्ठासी करोड़ अस्सी लाख सौनैये

आर्य अनार्य सनाथ अनाथ प्रजा को दान देकर दान देने का प्रजा को सबक सिखाया।

जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तो भगवान ऋषभदेव ने अपनी आत्मा को समस्त कर्म बन्धनों से छुड़ाने के लिए अपनी माता मरुदेवी से दीक्षा अंगीकार करने की आज्ञा मांगी। माता मरुदेवी की आज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद उन्होंने सबके बीच में ऐलान किया कि हे सभ्य नागरिकों! मैं अपने आपको तथा संसार के लोगों को कर्म रोग से मुक्त कराने के लिए साधु बन रहा हूँ अतएव जो लोग अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहें वे मेरे साथ भगवती दीक्षा अंगीकार करने को तैयार हो जांय। भगवान के मुखारविन्द से उक्त आदेश को सुनकर चार हजार भव्यात्माओं ने साधु बनने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार चार हजार वैरागियों के साथ भगवान का जलूस दीक्षा स्थल पर पहुंचा और सगडमुख उद्यान में इन्द्र ने भगवान का दीक्षा महोत्सव मनाया। वहां देवताओं का समाज तरह-तरह के वाद्यन्त्र बजाने में तल्लीन था। परन्तु इन्द्र का इशारा होते ही सब स्तब्ध हो गए और भगवान की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे।

इसके बाद भगवान ऋषभदेव ने वस्त्राभूषणों का त्याग किया और साधु वेष को धारण किया। फिर उन्होंने अनन्त सिद्ध भगवानों को नमस्कार करके पंचमुष्टि लोचन करके भगवती दीक्षा धारण कर ली। इस प्रकार भगवान ने चैत्र कृष्णा नवमी के शुभ दिन सभी सावद्य योगों का त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और तभी से मौन व्रत धारण कर लिया।

भाई! पूर्वोपार्जित कर्म बन्धनों को तोड़ने के लिए वचन का त्याग भी करना आवश्यक है। तो भगवान ने मौन व्रत स्वीकार करते हुए वहां से विहार कर दिया। जब भगवान ने विहार किया

तो उनके साथ-साथ भरत, बाहुबली आदि सौ ही पुत्र बहुत दूर तक गए। परन्तु जब भगवान ने संकेत किया कि अब हमारे साथ चलने में कोई फायदा नहीं तो वे सब लौटकर अपने स्थान पर आ गए। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव अपनी शिष्य मण्डली सहित एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विचरण करते हुए जाने लगे। वे रात्रि में एक स्थान पर विश्राम करते हैं और सूर्योदय होने के साथ २ वे पुनः विचरण करने लगते हैं। इस प्रकार विचरण करते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गए। चूंकि अभी तक कोई गृहस्थ साधु के आचार-व्यवहार को नहीं जानता था अतएव कहीं से भी भगवान को सूझता आहार पानी नहीं मिल सका। कई दिवस से आहार-पानी की योगवाई नहीं मिलने के कारण बाकी के साधुगण अपने मनमें सोचने लगे कि भगवान तो बोलते भी नहीं हैं और हमारे खाने-पीने का भी प्रबन्ध नहीं है तो इस प्रकार हम इनके साथ किस प्रकार रह सकते हैं? हम तो भूख के कारण अधिक दिन जीवित भी नहीं रह सकेंगे? अतएव भूख से व्यथित होकर सभी भगवान को छोड़ कर चलते बने। अब भगवान ऋषभदेव एकाकी रूप में विचरण करने लगे। इस प्रकार भगवान को अन्न-पानी के बिना मौन व्रत में रहते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। भगवान जिस किसी के यहां आहार पानी के लिए जाते हैं परन्तु वे लोग भगवान को अपना राजा समझकर उनके सामने हाथी, घोड़ा, पालकी, छत्र, चँवर जवाहिरात और अपनी सुन्दर कन्या को सोलह शृंगार से सुसज्जित करके को उपस्थित करते हैं परन्तु आहार पानी के लिए कोई भी आमंत्रित नहीं करता। क्योंकि वे लोग भगवान ऋषभदेव को अभीतक एक राजा के रूप में ही स्वीकार किए हुए थे। वे साध्वाचार के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। अतएव वे दान देने के विषय में कल्पना भी कैसे कर सकते थे।

यद्यपि भगवान ऋषभदेव को दीक्षा लेते ही चौथा मनः पर्यव
ज्ञान भी प्रकट हो चुका था और वे उस ज्ञान के द्वारा लोगों के मनो-
गत भावों को अच्छी तरह जानते थे परन्तु फिर भी पुरुषार्थ करने
से जी नहीं चुराते थे। इस प्रकार नित्यप्रति वे भिक्षा के लिए बस्ती
में जाते और भोजन पानी नहीं प्राप्त होने पर समभाव में रमण करते
थे। यही उनकी दैनिक जीवन चर्या थी।

इस प्रकार जब बारह मास पूर्ण होने के पश्चात वैशाख शुक्ला
तृतीया का शुभदिन आया तो पिछली रात्रि में भगवान ऋषभ देव के
प्रपौत्र श्रेयांस कुंवर ने सुप्तावस्था में एक स्वप्न देखा। उन्होंने स्वप्न
में यह देखा कि कल्पवृक्ष पानी नहीं मिलने के कारण मुरझा रहा है।
परन्तु उसके द्वारा सींचे जाने के बाद वह हरा-भरा हो गया है। यह
विचित्र स्वप्न देखते ही उनकी निद्रा भंग हो गई। वे विचार करने
लगे कि स्वप्न तो श्रेष्ठ देखा है परन्तु सबकी आशा पूर्ण करने वाला
कल्प वृक्ष कैसे मुरझा रहा है। इसी विचार ही विचार में प्रातःकाल
हो गया। उन्होंने झरोखे में बैठे हुए भगवान ऋषभदेव को अपनी
ओर आते हुए देखा। भाई ! यही श्रेयांस कुंवर पूर्व जन्म में स्वयं-
प्रभा और सारथी के रूप में भगवान के साथ रह चुका है। तो ज्यों
ही श्रेयांसकुंवर की दृष्टि भगवान पर पड़ी तो उन्हें जाति स्मरण
ज्ञान हो गया और उन्होंने जान लिया कि यही वे कल्पवृक्ष के रूप में
हैं जिन्हें बारह महीने से अन्न पानी नहीं मिला है। इसी कारण ये
उसके अभाव में कुम्हला रहे हैं।

अब वे अपने स्थान से उठकर भगवान के सामने गए और
तिक्खुत्तो के पाठ से सविधि वन्दन नमस्कार करके वे भगवान को
अपने घर पर लाए। उस समय उनके यहां एक सौ आठ घड़े सेलड़ी
के रस से भरे हुए रखे थे। अतएव उन्होंने भक्ति भाव पूर्वक भगवान

को उक्त सेलड़ी का रस बहरा कर भगवान को वर्षीतप का पारणा कराया। भगवान का पारणा होते ही आकाश से देवताओं के द्वारा श्रेयांसकुंवर के घर पर पांच द्रव्यों की वृष्टि हुई और आकाश में देव दुंदुभि बजाकर घोषित किया कि 'अहोदानं! अहोदानं!' अर्थात श्रेयांसकुंवर को धन्य है जिसने भगवान को अपने हाथों से दान देकर संसार परत कर लिया। इस प्रकार का माजरा देखकर अन्य लोग भी आपस में बातें करने लगे कि हम को भी ऐसा मालूम होता तो हम भी भगवान को अपने हाथों से आहार देकर कृतकृत्य हो जाते। परन्तु यह पुण्य कर्म भी किसी-किसी पुण्यवान जीव के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

तो मैं कह रहा था कि भगवान ऋषभदेव का पारणा श्रेयांस कुमार के हाथ से सुख शान्ति पूर्वक हो गया। भाई! भगवान के पारणे के साथ-साथ उस सेलड़ी का नाम भी अमर हो गया! आज भगवान के गुणों की तारीफ करते हुए उक्त सेलड़ी की प्रशंसा के भी गीत गाए जाते हैं। भाई! यह भी सत्संगति का परिणाम है कि एक अदनासी सेलड़ी का नाम भी भगवान के नाम के साथ आदर पूर्वक लिया जाता है। इसी सम्बन्ध में एक कवि सेलड़ी को संबोधन करते हुए कहता है कि:—

म्हारी रस सेलड़ी, आदिजिनेश्वर कियो पारणो।

हे सेलड़ी! तेरे रस के द्वारा भगवान ऋषभदेव का पारणा हुआ अतएव तू भी संसार में अमर हो गई और तभी से आज तक यह रिवाज चला आ रहा है कि प्रति वर्ष सैंकड़ों की संख्या में वर्षी-तप के पारणे होते हैं तो पारणे में सर्व प्रथम सेलड़ी का रस ही लिया जाता है। तो अक्षय तृतीया के दिन सेलड़ी के रस का विशेष महत्व माना गया है।

इस प्रकार भगवान आदिनाथ ने इस काल में सर्व प्रथम दीक्षा धारण की और सबसे पहिले दातार श्रेयांसकुमार ने उन्हें इक्षुक रस से पारणा कराया। पारणा करने के पश्चात् भगवान ने अन्य जनपदों के लिए विहार कर दिया। वे एक हजार वर्ष पर्यन्त छद्म-स्थावस्था में समभाव पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे। उनके साथ दीक्षित होने वाले चार हजार ही शिष्य क्षुधा परिषह सहन नहीं कर सकने के कारण तितर-बितर हो गए। उनमें से किसी ने कोई मत और किसी ने कोई मत स्थापित कर लिया और तभी से आज तक संसार में तीन सौ त्रैसठ मत मतान्तर फैल चुके हैं।

देखो! भगवान ऋषभदेव ने कितने शान्त भाव से अपने पूर्वोपार्जित कर्म के फल को बारह मास पर्यन्त भोजन पानी के अभाव में सहन किया। हम लोगों को भी भगवान के इस आदर्श जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि पुरुषार्थ करने में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए और समभाव पूर्वक आए हुए कष्टों को सहन करने में दृढ़ता दिखानी चाहिए।

अब किस प्रकार भगवान ऋषभदेव को एक हजार वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में रहने के पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति होती है और किस प्रकार भगवान धर्मोपदेश देते हैं यह सब कुछ आगे सुनने से अवगत हो सकेगा। इस प्रकार जो भव्यात्मा कुसंगति के दुष्परिणाम को सोचते हुए सत्संगति में विचरण करेंगे वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलोर (केन्टोन्मेन्ट)
ता० ११-८-५९
मंगलवार